अभिनव सिद्धचक्र महार्चना

रचयिता

आचार्य वसुनंदी मुनि

प्रकाशक

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

जिनशासन नायक भगवान् महावीर स्वामी के 2550वें निर्वाण महोत्सव पर परम पूज्य राष्ट्र हितैषी संत, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा वी. नि. सं. 2550-2551 (सन् नव. 2023-नव. 2024) को **"अहिंसकाहार वर्ष"** के रूप में उद्घोषित किया गया। इसी **"अहिंसकाहार वर्ष"** के उपलक्ष्य में प्रकाशित

कृति : अभिनव सिद्धचक्र महार्चना

मंगल आशीर्वाद : परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

कृतिकार : आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन : मुनि प्रज्ञानंद

संस्करण : प्रथम (सन् 2024)
द्वितीय (सन् 2024)

प्रतियाँ : 5000

ISBN : **978-93-94199-73-6**

मूल्य : 110/- (Not for Sale)

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.)

प्राप्ति स्थल : C/117, बेसमेंट, सेक्टर 51, नोएडा-201301
मो. 9971548889, 9867557668, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली
मो. 9312401976

Visit us @ www.acharyavasunandi.com
www.shreevasuvidya.com

संपादकीय

येनात्माऽबुध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्तबोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः॥1॥ समाधितंत्र

जिसके द्वारा आत्मा आत्मरूप से ही जाना गया है और अन्य को–कर्म जनित मनुष्यादि पर्यायरूप पुद्गल को पर रूप से ही जाना गया है उस अविनाशी अनन्तज्ञानस्वरूप सिद्धात्मा को नमस्कार हो।

सम्यक् श्रद्धा के क्षीरसागरीय, मधुरिम, शीतल, निर्वद्य, धवल जल से ही चेतना को अभिषिक्त किया जा सकता है। चित्त में प्रकट हुई भक्ति के परिणामों से शांतिधारा कर उसे स्फटिक के समान अत्यंत निर्मलता प्रदान की जा सकती है। अभिनव सिद्धचक्र महार्चना चैतन्य विकारों को परिमार्जन करने, अनादिकालीन अभिनय को मिटाने एवं अभिरुचिपूर्वक स्वात्मोपलब्धि हेतु अविरामी पुण्य की प्रक्रिया को प्रकट करने का उत्तम अभियान है।

भक्ति से अभिषिक्त आत्मा अभिवंदनीय तो होती ही है साथ ही परम अभ्युदय को प्राप्त करने में भी नियम से समर्थ होती है। सिद्धार्चना करने का भाव उसी भव्यात्मा में प्रकट होना शक्य है जिसे निकट भविष्य में सिद्धत्व पर्याय को उपलब्ध होना है। शक्तिरूपेण सिद्धस्वरूपी आत्मा बिना निमित्तों के अपनी शुद्ध पर्याय को प्रकट करने में उसी प्रकार असमर्थ होती है जिस प्रकार सधवा स्त्री पति के बिना वंशवृद्धि में असमर्थ होती है।

''अभिनव सिद्धचक्र महार्चना'' पुरातन संस्कारों का विनाश एवं मोक्षमार्ग के नूतन संस्कारों को विकसित करने की प्रधान साधिका है। 'अभिनव' शब्द जीवन में नवऊर्जा, उत्साह, उल्लास, उमंग और आनंद का प्रेरक भी है। सिद्धसमूह की अर्चना चेतना के अनंत, अखंड चिन्मय पिंड की जन्मदात्री है। 'महार्चन' महाव्रत एवं आत्मा की सर्वोत्कृष्ट अवस्था को प्रकट करने वाला जनक है।

सिद्धचक्र अर्चना के अतिरिक्त अन्य किसी भी देवता की अर्चना असिद्ध अर्चना होती है। असिद्ध देवताओं की अर्चना मोक्षमार्गी तो बनाती है किंतु मोक्ष की प्रत्यक्ष कारिका सिद्धोपासना ही है। सिद्धों की अर्चना का तात्कालिक अनुभव नि:सीम, शब्दातीत, विषयातीत, कषायातीत, निरवद्य, अखंड व परम मंगल प्राप्त करने में है।

नई खूबी नई रंगत नए अरमान पैदा कर।
बनना चाहे सिद्ध तो अभिनव सिद्ध महा अर्चना कर॥

सिद्धों का चर्चन, सिद्धों की चर्चा, सिद्ध गुणों का चिंतन एवं सिद्धों की अत्यंत निकटवर्ती भूतपर्याय की चर्या करने में वही समर्थ होते हैं जो कारण समयसार एवं कार्य समयसार के अनुभवी ज्ञाता होते हैं। अर्चना शब्द का अर्थ अपने इष्ट आराध्य के प्रति एकमेक होना है। यह अनुभूति में उस पर्याय के प्रति अभिरुचि, संस्पर्श एवं शुद्धात्मानुभूति की विशिष्ट प्रक्रिया है। व्यवहार में उपास्य, उपासक, उपासना व उपासना फा फल पृथक्-पृथक् ज्ञान में आते हैं किन्तु शुद्ध निश्चयनयावलंबी योगी अभेद रूप में ही चारों का अनुभव करता है। उस दशा में ध्यान, ध्याता, ध्येय व ध्यान के फल की व्याख्या पृथक्-पृथक् संभव नहीं।

छोटा बालक मिठाई का नाम सुनकर वा मनोवांछित वस्तु प्राप्त कर वा अपनी जननी की गोदी प्राप्तकर जिस प्रकार आनंदित होता है उस प्रकार आसन्न भव्यजीव सिद्धों का नामोच्चारण, गुणानुराग, स्वभावचिंतन, सिद्धत्व की प्रक्रिया एवं पूजा, भक्ति, वंदना, स्तुति, उपासना में गूंगे के गुड़ के स्वाद की तरह उत्कृष्ट आनंद युत परम दशा को प्राप्त हो जाता है।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य भगवन् गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज की लेखनी से प्रसूत प्रस्तुत ''अभिनव

सिद्धचक्र महार्चना'' उनकी सिद्धों के प्रति गहन श्रद्धा का प्रतीक है। जिनशासन व जैन-संस्कृति के संवर्द्धन व संरक्षण हेतु पूज्य गुरुदेव ने अनेक आगम ग्रन्थों का लेखन अनुवाद व संपादन कर मात्र जैन साहित्य जगत् पर नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व पर महान् उपकार किया है।

पूज्य गुरुदेव ने आबालवृद्ध, सद्गृहस्थ श्रावक, श्रमण आदि के मंगलमय जीवन व कल्याण के लिए साहित्य की रचना कर सभी को अमूल्य उपहार ही प्रदान किया है। कहा भी जाता है कि सद्साहित्य व्यक्ति का सबसे अच्छा मित्र है और वह भी वो साहित्य जो एक निःस्पृह लोक-कल्याण की भावना से अनुस्यूत एक साधक की लेखनी से प्रसूत है। पूज्य गुरुदेव ने नय, न्याय, सिद्धान्त, राजनैतिक, सामाजिक, राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यादि विषयों पर लगभग 55 से अधिक प्राकृत ग्रन्थों का लेखन कर सम्पूर्ण विश्व को विस्मित कर दिया है। दिगम्बर परम्परा में प्राकृत भाषा में अभी तक का सबसे वृहद ''अशोक रोहिणी चरित्र'' नामक महाकाव्य रचकर उन्होंने साहित्य को समृद्ध करते हुए काव्य परम्परा को जीवंतता प्रदान की।

आचार्य गुरुदेव के इस महान् साहित्य को देखकर विद्वत् जगत् भी आश्चर्य में पड़कर पूछते हैं कि संपूर्ण साधना, धर्म प्रभावना आदि करते हुए आचार्य श्री कब लेखन करते हैं। किन्तु पूज्य गुरुदेव की असाधारण बौद्धिक क्षमता व आत्मबल का अंदाजा लगाना भी संभव नहीं। सभी साधुगणों की भावना थी कि पूज्य गुरुदेव के माध्यम से सिद्धचक्र अर्चना का उद्गम हो। जनवरी 2024 में स्वास्थ्य की प्रतिकूलता में भी गुरुवर श्री ने जिस प्रकार इस महार्चना का सृजन किया वह बहुत ही अद्भुत है एवं उनकी प्रतिसमय आत्मविशुद्धि व गहन आत्मबल का द्योतक है।

इस विधान में कुल नवपूजन व आठ कोष्ठ हैं। इसमें प्रथम कोष्ठ में क्षायिकलब्धि व वस्तुत्वादि गुणों से युक्त सिद्धपरमेष्ठि के 24 अर्घ्य हैं, द्वितीय कोष्ठ में अरिहंतों के 46 मूलगुणों के भोक्ता सिद्धों के 48 अर्घ्य हैं। तृतीय कोष्ठ में आत्मशक्ति से संयुक्त सिद्धों के 61 अर्घ्य हैं। चतुर्थ कोष्ठ में ऋद्धियों के परमफल को प्राप्त सिद्धों के 92 अर्घ्य हैं। पंचम कोष्ठ में जीवा–जीवाधिकरण से मुक्त सिद्धों के 123 अर्घ्य हैं। षष्ठ कोष्ठ में सर्वकर्म प्रकृतियों से रहित सिद्धों के 148 अर्घ्य हैं। सातवें कोष्ठ में विशिष्ट वा परम गुणों से युक्त सिद्धों के 260 अर्घ्य हैं एवं आठवें कोष्ठ में सिद्धों के नाम व अन्य गुणों से युक्त सिद्धों के 576 अर्घ्य हैं। इस प्रकार इस विधान में कुल 24 + 48 + 61 + 92 + 123 + 148 + 260 + 576 = 1,332 अर्घ्य हैं। जिनका कुल जोड़ (1 + 3 + 3 + 2) 9 है। पूज्य गुरुदेव के ग्रन्थों में यह विशेषता मिलती है कि उनके काव्यों का जोड़ मुख्यता से 3 अथवा 6 वा 9 दृष्टिगोचर होता है। वही समानता इस विधान में भी देखने को मिलती है।

इस महार्चना में काव्यछंद शास्त्र के ज्ञाता आचार्य गुरुदेव ने लगभग 66 छंदों का प्रयोग किया जो बहुत ही अद्भुत है। गुरुदेव का यह उपकार सिद्धों की उपासना करने वाले श्रमण समाज वा श्रावक कभी भी विस्मृत नहीं कर पाएँगे। हम सभी भावना भाते हैं कि पूज्य गुरुदेव का स्वास्थ्य अतिशीघ्र उत्तम हो एवं इसी प्रकार उनके माध्यम से साहित्य का ये अमूल्य उपहार हम सदैव प्राप्त करते रहें।

यह हमारा परम सौभाग्य है कि इस सिद्धचक्र महार्चना के संपादन का कार्य हमें प्राप्त हुआ है। इस विधान के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ के द्वारा जो त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन उसे संशोधित करके पढ़ें और हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से अच्छाइयों को परम पूज्य गुरुवर

श्री का आशीर्वाद समझकर ग्रहण करें। इस विधान की पाण्डुलिपि तैयार करने में संघस्थ समस्त त्यागी–व्रतियों का प्रशंसनीय सहयोग प्राप्त हुआ व प्रकाशन में सहयोगी महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ उन सभी को पूज्य गुरुदेव का मंगलमय शुभाशीष।

हम स्वयं को गौरवशाली मानते हैं व परम सौभाग्यशाली समझते हैं कि संयम प्रदाता, बोधिमार्ग प्रदर्शक ऐसे महान् आचार्य गुरुवर के पावन चरण सान्निध्य में रहकर अध्ययन करने एवं उनकी लेखनी से प्रसूत आगम सम्मत ग्रंथ हमें प्राप्त हो रहे हैं। जैन वाङ्मयरूपी महोदधि के संवर्धक पूर्णेन्दु सदृश परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज का पावन मंगलमय आशीर्वाद समस्त मानवजाति को युग–युगान्तर तक प्राप्त होता रहे और उनके आशीष की छत्रछाया में भव्यजीव संयम से पुष्पित, पल्लवित एवं फलित होते रहें। इसी पुण्य भावना के साथ परम पूज्य गुरुवर के श्री चरणों में अनन्तशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!

इति शुभम् भूयात्

जैनम् जयतु शासनम् **विश्वकल्याण कारकम्**

शुभमिति फाल्गुन शुक्ल पंचमी
वीर निर्वाण संवत् 2550
गुरुवार 14.मार्च.2024
बलवीर नगर, दिल्ली

ॐ ह्री नमः
गुरु चरणाम्बुज चंचरीक
मुनि प्रज्ञानंद

पुरोवाक्

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।12।।

–(***समाधि भक्ति, आ. पूज्यपाद स्वामी***)

अष्टकर्मों से पूर्ण रहित, मुक्ति लक्ष्मी के घर तथा सम्यग्दर्शन आदि गुणों से युक्त सिद्ध परमेष्ठियों के समूह को मैं नमस्कार करता हूँ।

जिस प्रकार शरीर की जीवंतता के लिए पौष्टिक आहार, जल, प्राणवायु आदि की आवश्यकता होती है, किसी पादप की जीवंतता के लिए खाद, जलादि की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार स्वयं के सिद्धत्व के प्रकटीकरण के लिए अभिनव सिद्धचक्र महार्चना जैसे भक्ति रस से समन्वित आध्यात्मिक विद्या के दिव्य प्रकाश की आवश्यकता होती है। आध्यात्मिक विद्या में जब भक्ति रस का दिव्य संगीत मिल जाता है तब आध्यात्मिक विद्या जीवंत और बलवती हो जाती है।

सिद्धों की साक्षी में एवं भावी सिद्धों (आचार्य, उपाध्याय, साधु) के सान्निध्य, मार्गदर्शन वा आशीर्वाद से निराकुल चित्त से सिद्धों की उपासना की जाती है तो वह चित्त में उसी प्रकार आनंद को प्रस्फुटित करती है जिस प्रकार सूर्य का प्रचंड ताप पुष्पों में पराग, फलों में मिठास व भूमि में उर्वरा शक्ति को करने वाला होता है।

सिद्धोपासना आत्मा से कर्म को दूर कर उसी प्रकार परमात्मा बना देता है जिस प्रकार अग्नि शैत्य बाधा को दूरकर अपक्वता

को भी परिपक्वता में बदल देती है। सिद्ध समूह की अर्चना जब सम्यक् श्रद्धा से मिश्रित अत्यंत भक्ति व समर्पण के साथ की जाती है तब वह पाप पंक की अवशोषक दिवाकर की दिव्य रश्मियों के समान महत्ता को प्राप्त होती है। साकार परमेष्ठी व उनके बिंब आसन्न भव्य को प्रारंभ में अत्यंत आवश्यक हैं किन्तु सिद्धचक्र की अर्चना, उपासना स्वकीय शुद्ध स्वरूप के सन्मुख हुआ संसार, शरीर, भोगों से अत्यंत विरक्त संवेगी श्रावक, श्राविका वा आत्मानुभव रूपी पुष्प-पराग में अनुरक्त भ्रमरवत् योगी ही उसे संपन्न कर पाता है। सिद्धोपासक ही अध्यात्म विद्या के रत्न शिखर पर पहुँच सकता है।

प्रस्तुत ''अभिनव सिद्धचक्र महार्चना'' परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा अध्यात्मिकता से अनुस्यूत निराकार सिद्धों के प्रति भक्ति उद्‌गारों का शाब्दिक रूप है। यूँ तो भक्तिभावों को व्यक्त नहीं किया जा सकता फिर भी उन भावों को शब्दों में पिरोकर हम तक पहुँचाने का आचार्य गुरुवर ने जो उपकार किया है उसके लिए हम सभी कृतज्ञ हैं एवं उस कृतज्ञता को ज्ञापित करने हेतु निःशब्द भी। आचार्य गुरुवर ने जो साहित्य संपूर्ण जैन जगत् ही नहीं अपितु समस्त विश्व को प्रदान किया है उसके लिए ये विश्व युगों युगों तक उनका ऋणी रहेगा।

आचार्य गुरुवर ने मात्र कुछ ग्रंथों तक सीमित पुरातन प्राकृत भाषा का 55 से अधिक प्राकृत ग्रंथों की रचना कर वर्तमान में जो संरक्षण व संवर्द्धन किया है वह सभी को विस्मित करने वाला है। निरंतर ज्ञान में संलग्न आचार्य गुरुवर ने अनेक

प्रतिकूलताओं में भी भव्य जीवों के लिए श्रुत का संवर्द्धन किया है। वर्तमानकालीन आचार्य गुरुवर की देहिक स्थिति से कोई अपरिचित नहीं, उस प्रतिकूल समय में भी आचार्य गुरुवर ने, पूर्व में किए गए शिष्यों के निवेदन पर श्री अभिनव सिद्धचक्र महार्चना का लेखन किया।

इस महार्चना का एक एक शब्द आत्मा की विशुद्धि को संवर्द्धित करने वाला सोपान ही है। कई स्थानों पर तो शब्दों का आलंबन पाकर उत्पन्न हुआ भक्ति का आवेग अश्रु बनकर नयनों में झलक उठता है। जितनी बार इन काव्यों को पढ़ें उतनी बार आलौकिक दिव्य आनंद की अनुभूति होती है। इन शब्दों का आलंबन लेकर सिद्धों की उपासना की जो अनुभूति चित्त में होती है वह अवर्णनीय है।

पूज्य आचार्य गुरुवर के द्वारा रचित इस अभिनव सिद्धचक्र महार्चना के संपादन का महनीय कार्य पूज्य श्रमण श्री प्रज्ञानंद जी मुनिराज द्वारा किया गया है। मुनि श्री का स्वयं काव्य संयोजन एवं काव्य संपादन की कला श्लाघनीय है। मुनि श्री द्वारा भी कई विधानों का लेखन अब तक किया जा चुका है। एवं उन्होंने पूज्य गुरुदेव द्वारा रचित श्री सर्वतोभद्र महार्चना आदि कई विधानों का संपादन भी बहुत कुशलता से किया है। पूज्य आचार्य गुरुदेव का काव्य छंद का ज्ञान अलौकिक है जिसका प्रमाण हमें उनके प्राकृत के महाकाव्यादि एवं विधानादि के माध्यम से प्राप्त होता है। सर्वतोभद्र महार्चना में तो 95 से अधिक छंदों का प्रयोगकर उन्होंने काव्य जगत् को ही विस्मित कर दिया। इस सिद्धचक्र महार्चना में भी लगभग 66 छंदों का प्रयोग आचार्य गुरुवर ने किया है।

तब पूज्य गुरुदेव की प्रतिपल छाया में रहने वाले पूज्य मुनि श्री प्रज्ञानंद जी महाराज का छंद ज्ञान भी कम कैसे हो सकता है। पूज्य आचार्य गुरुदेव के शुभ संस्कारों से सिंचित मुनि श्री भी सदैव ज्ञान- ध्यान में संलग्न रहते हैं।

सर्वप्रथम इस अभिनव सिद्धचक्र महार्चना के रचनाकार परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, राष्ट्र हितैषी संत परमोपकारी आचार्य भगवन् गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित नमोस्तु करती हूँ एवं आराध्य देव से प्रार्थना करती हूँ कि गुरुवर श्री का स्वास्थ्य अतिशीघ्र उत्तम हो एवं मोक्ष पर्यंत उनकी छत्रछाया हमें प्राप्त हो। पुनः पूज्य श्रमण श्री प्रज्ञानंद जी मुनिराज के चरणों में नमोस्तु करते हुए उनके उज्ज्वल संयममय जीवन की कामना करती हूँ।

–आर्यिका वर्धस्व नंदनी

अभिनव सिद्धचक्र महार्चना में प्रयुक्त छंद

पुष्पों से सुसज्जित पुष्पहार, रत्नों से अलंकृत रत्नाभरण, नाना प्रकार के पुष्पों से समन्वित उद्यान, अनुशासनबद्ध राजकर्मचारी व प्रजा, मर्यादा में रहने वाला राजा, शील व कुलाचार की उभय सीमा में प्रवाहमान सरिता की तरह से सुशोभित नारी, गुणों से मंडित विद्वान्, ज्ञान, ध्यान व संयम से सुशोभित साधक जिस तरह शोभा को प्राप्त होते हैं उसी तरह छंदोबद्ध अक्षर विभिन्न रसों से परिपूरित होकर भव्यजनों के लिए आनंद का स्रोत बनते हैं।

अनेक अनुशासित वा व्यवस्थित तंतु वस्त्र वा परिधान बनकर सज्जनों के शरीर का संरक्षण वा सौन्दर्य-वृद्धिकरण करते हैं। अनेक तिनकों को जोड़कर पक्षी अपने घोंसले का निर्माण करते हैं। नाना प्रकार की खाद्य सामग्री से महिलाएँ स्वादिष्ट व रुचिकर व्यंजनों को बनाकर आनंद का अनुभव करती हैं। शब्द अनेक प्रकार की सामर्थ्य से युक्त होते हैं। उनमें मुख्यतः नवरस और मुख्य नवभावों को प्रादुर्भूत करने की सामर्थ्य होती है। उत्तरभेदों की संख्या गणनातीत है। शब्दों को अनुशासित रखने से मंगलमय संगीत प्रादुर्भूत होता है जो सुमधुरगान का रूप लेकर आरोग्य, आनंद, बल का वर्द्धक होता है।

भक्ति रस से समन्वित शब्दों का सुनियोजित चयन अनादिकाल से कल्याण करने में समर्थ है। अनुशासित शब्दों का ज्ञान संगीत बन जाता है, अनुशासनहीन शब्द शोरगुल का रूप ले लेते हैं। व्यवस्थित विद्यार्थी कक्षा में विद्या ग्रहण करने में समर्थ होते हैं और यदि वही मर्यादा का उल्लंघन कर दे तो समाज, धर्म, नीति आदि के विध्वंसक हो जाते हैं। इक्षुदंडों को पेलने पर ही मधुरता प्राप्त

होती है, पुष्पों को दूर से देखने वा नासिका बंद कर छूने से नहीं अपितु उसे सूंघने से गंध आती है।

सुनियोजित व व्यवस्थित शब्द ही कर्णप्रिय होते हैं। प्रस्तुत भक्तिकाव्य ''अभिनव सिद्धचक्र महार्चना'' केवल प्रभु परमात्मा की उपासना का स्तुतिपरक ग्रंथ नहीं है। इसमें कहीं अध्यात्म विद्या की नवकलिकाएँ भी प्रस्फुटित होती दिखाई देती हैं तो कहीं जैनवाङ्मय के मूलसिद्धान्तों का सम्मेलन भी दृष्टिगोचर होता है।

भक्तिरस का आनंद लेते हुए वह भक्त तत्काल में संसार, शरीर, भोगों से विरक्ति का अनुभव करता है। इतना ही नहीं कषायों का शमन और पाप प्रवृत्तियों का त्यजन सहज ही होने लगता है। ये भक्ति के शब्द रूपी शबनम की बूँदे भव्य के हृदय कमल पर मुक्ता के समान प्रतिभासित होंगी। भक्ति के दिव्य प्रकाश में ही चेतना के दिव्य रत्न मिथ्यात्व, अज्ञान व असंयम के अंधकार को वैसे ही तिरोहित कर देते हैं जैसे तीव्र मारुत् का वेग सघन श्याम घन को।

जलेबी वा इमरती जैसे मिष्ठानों में भरा रस बाहर से दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु सेवन करने पर ही मिठास को देता है उसी प्रकार अभिनव सिद्धचक्र महार्चना में निबद्ध काव्य बाहर से आनंद नहीं देते अपितु पूजा भक्ति में तल्लीन होने पर ही अपने स्वाद को वैसे उलेड़ देते हैं जैसे रत्नाकर रत्नों को व पुष्पवाटिका अपनी सुगंधित बहार को।

अस्तु प्रस्तुत 'अभिनव सिद्धचक्र महार्चना' का यह पुष्प गुच्छक हमारे व आपके चित्त में आनंद की वृद्धि करे इस हेतु इस महार्चना में प्रयुक्त छंद व काव्यों का परिचय कराना चाहते हैं–

1. अडिल्ल छंद–इस छंद में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 21-21 मात्राएँ होती हैं।

2. अनुकूल छंद–इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में एक भगण (ऽ।।), एक तगण (ऽऽ।), एक नगण (।।।), 2 गुरु होते हैं।

3. अशोक पुष्प मंजरी छंद–इस छंद में 31 वर्ण होते हैं। प्रत्येक वर्णक्रम से एक गुरू व एक लघु होता है।

4. आँचलीबद्ध चौपाई छंद–इस छंद में चार चरण होते हैं प्रत्येक चरण में 15 मात्राएँ होती हैं। इसके साथ द्विपदी दुम भी होती है।

5. अरिल्य छंद–यह मात्रिक छंद है। इसमें कुल चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 16–16 मात्रा होती हैं। चरणांत यगण (।ऽऽ) अथवा कहीं–कहीं भगण (ऽ।।) भी स्वीकार किया है।

6. आँसू छंद–यह मात्रिक छंद है। इसमें 28 मात्राएँ होती हैं एवं 14–14 मात्राओं पर यति होती है। पदान्त में मगण (ऽऽऽ) या यगण (।ऽऽ) होता है।

7. उभयलाघव छंद–यह मात्रिक छंद है। इस छंद के प्रत्येक चरण में 16–16 मात्राएँ होती हैं एवं अंत में दो लघु होते हैं।

8. उल्लाला छंद–यह अर्ध सममात्रिक छंद है। इसमें 28 मात्राएँ होती हैं। जिसमें पहले व तीसरे चरण में 15–15 व दूसरे व चौथे चरण में 13–13 मात्राएँ होती हैं।

9. किरीट छंद–यह वर्णिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 24–24 वर्ण होते हैं एवं सर्व 8 भगण (ऽ।।) होते हैं।

10. कुण्डलिया छंद–यह छंद दोहा + रोला से मिलकर बनता है। कुल मात्राएँ 144 होती हैं। विशेषता यह है कि दोहे का अंतिम चरण, रोला का आदि चरण होता है तथा रोला के अंतिम चरण (छंदान्त) में प्रायः वही शब्द आने चाहिए जो छंद के प्रारंभ में आते हैं।

11. गीतिका छंद–इस छंद में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 14–12 पर यति होती है। कुल 26 मात्राएँ होती हैं। अंत में क्रमशः लघु–गुरू (।ऽ) होता है।

12. चउबोला छंद—इस छंद में 30 मात्राएँ होती हैं। 16, 14 पर यति होती है। इस छंद में कहीं दो व कहीं चार पंक्तियाँ मानी गई हैं।

13. चौपाई छंद—इसके प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होती हैं। चरण के अंत में जगण (।ऽ।) या तगण (ऽऽ।) कभी भी नहीं रखने चाहिए और दो गुरु ही होने चाहिए।

14. टप्पा चाल—

15. डिल्ला छंद—इस छंद के प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होती हैं एवं अंत में भगण (ऽ।।) होता है।

16. तरलनयन छंद—इस छंद के प्रत्येक चरण में 12-12 वर्ण होते हैं एवं चार नगण (।।।) अर्थात् सभी वर्ण लघु ही होते हैं।

17. तोमर छंद—यह एक मात्रिक छंद है जिसके प्रत्येक चरण में 12 मात्राएँ होती हैं। अंत में एक गुरू व एक लघु होना अनिवार्य है।

18. त्रिभंगी छंद—इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 32 मात्राएँ होती हैं। 10, 8, 8, 6 पर यति होती है। अन्त में गुरू वर्ण होता है व प्रत्येक चरण के आदि में जगण (।ऽ।) का होना वर्जित है।

19. दोहा छंद—यह सर्व प्रसिद्ध छंद है। इस छंद में चार चरण होते हैं। इसके पहले व तीसरे चरण में 13-13 व दूसरे और चौथे चरण में 11-11 मात्राएँ होती हैं।

20. द्रुतमध्य छंद—इसमें चार चरण होते हैं। प्रथम-तृतीय चरण में 11 तथा द्वितीय-चतुर्थ चरण में 12 वर्ण होते हैं।

21. द्रुत विलंबित छंद—इस छंद में चार चरण होते हैं। यह वर्णिक छंद है। प्रत्येक चरण में 12 वर्ण, एक नगण (।।।), दो भगण (ऽ।।) तथा एक रगण (ऽ।ऽ) होते हैं।

22. द्रुमिल छंद—यह एक वर्णिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 24 वर्ण होते हैं। इसमें आठों ही सगण (।।ऽ) होते हैं। इसे 'चंद्रकला' भी कहते हैं।

23. नरेन्द्र छंद—नरेन्द्र छंद के प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ होती हैं। तथा प्रत्येक चरण में 16-12 मात्राओं पर यति होती है।

24. नलिन छंद—नलिन छंद में 26 मात्राएँ होती हैं। 14-12 पर यति होती है।

25. पद्धरी छंद—यह मात्रिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होती हैं। अंत में लघु होना आवश्यक है।

26. पादाकुलक छंद—इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होती हैं। आदि में द्विकल अनिवार्य है।

27. पायत्ता छंद—इस छंद में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 14-14 मात्राएँ होती हैं व अंत में दो गुरू होते हैं।

28. पीयूषवर्ष छंद—यह 19 मात्राओं का समपदमात्रिक छंद है। 10-9 पर यति और 3, 10, 17 वीं मात्रा लघु होना अनिवार्य है।

29. पुष्पिताग्रा छंद—इस छंद के प्रथम व तृतीय चरण में क्रमशः नगण (।।।), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ) तथा यगण (।ऽऽ) और द्वितीय व चतुर्थ चरण में क्रमशः नगण (।।।), जगण (।ऽ।), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) तथा एक गुरू होता है।

30. प्रभव छंद—इस छंद में चार चरण होते हैं। प्रथम व तृतीय चरण में 12-12 मात्राएँ एवं द्वितीय व चतुर्थ चरण में 14-14 मात्राएँ होती हैं।

31. प्रमानिका छंद—चार चरण वाले इस छंद के प्रत्येक चरण में 8 वर्ण एक जगण (।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ), एक लघु, एक गुरू होता है।

32. बरवै छंद—इसमें चार चरण होते हैं। पहले व तीसरे में 12-12 मात्राएँ और दूसरे व चौथे में 7-7 मात्राएँ होती हैं। इसके

दूसरे व चौथे चरण के अंत में जगण (।ऽ।) या तगण (ऽऽ।) आकर छंद को सुरीला बना देता है।

33. बसन्ततिलका छंद—इस छंद में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 14 वर्ण एक तगण (ऽऽ।), एक भगण (ऽ।।), दो जगण (।ऽ।) व दो गुरू होते हैं।

34. भुजंगप्रयात छंद—जिस छंद में चार चरण होते हैं एवं प्रत्येक चरण में चारों ही यगण (।ऽऽ) हों उसे भुजंगप्रयात छंद कहते हैं। इसमें वर्ण 12 होते हैं।

35. भुजंगी छंद—इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 11 वर्ण तीन यगण (।ऽऽ), लघु, गुरू होते हैं।

36. मत्त समक छंद—यह चौपाई छंद का एक भेद है। जिसमें नवीं मात्रा अवश्य लघु होती है।

37. मद अवलिप्त कपोल छंद—इस छंद के प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं। 11–13 पर यति होती है।

38. मदन छंद—इस छंद में 24 मात्राएँ होती हैं। 14–10 पर यति होती है और पदान्त गुरू-लघु से होता है।

39. मधुमालती छंद—यह एक मात्रिक छंद है। इसमें 14 मात्राएँ होती हैं। 7–7 मात्राओं पर यति तथा पदांत रगण (ऽ।ऽ) से होना अनिवार्य है।

40. मनहरण छंद—यह 31 वर्णों का छंद है। इसमें 16–15 पर यति होती है। इसमें चार चरण होते हैं।

41. मनोरमा छंद—इस छंद में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 10 वर्ण एक नगण (।।।), एक रगण (ऽ।ऽ), एक जगण (।ऽ।), एक गुरू होता है।

42. मुकुलोत्तर छंद—यह मात्रिक छंद है। प्रत्येक चरण में 16–16 मात्राएँ होती हैं एवं द्विपदी दुम भी होती है।

43. रथोद्धता छंद—इस छंद के प्रत्येक चरण में 11 वर्ण क्रमशः एक रगण (ऽ।ऽ), एक नगण (।।।), एक रगण (ऽ।ऽ), एक लघु व एक गुरू होते हैं।

44. राधिका छंद—यह एक मात्रिक छंद है। इसमें 22 मात्राएँ होती हैं। 13, 9 पर यति होती है।

45. रोला छंद—इसके प्रत्येक चरण में 23 मात्राएँ होती हैं। 11, 12 पर यति होती है। कहीं कहीं 24 मात्राएँ भी मानी गई हैं।

46. लक्ष्मीधरा छंद—यह वर्णिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में चार-चार रगण (ऽ।ऽ) होते हैं।

47. लावनी छंद—यह सम-पदमात्रिक छंद है। इसमें 4 पद होते हैं, जिनमें प्रतिपद में 30 मात्राएँ होती हैं। प्रत्येक पद दो चरण में बँटा होता है जिनकी यति 16-14 पर निर्धारित होती है।

48. लोलतरंग छंद—इस छंद में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 11 वर्ण, तीन भगण (ऽ।।), दो गुरू (ऽऽ) होते हैं।

49. वनवासिका छंद—यह एक मात्रिक छंद है। प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होती हैं। 9/12 मात्रा लघु होती हैं।

50. विदित छंद—इस छंद के प्रथम व तृतीय चरण में 13 मात्राएँ एवं द्वितीय व चतुर्थ चरण में 10 मात्राएँ होती हैं।

51. विधाता छंद—इसमें चार चरण होते हैं। यह मात्रिक छंद है। इसमें 28 मात्राएँ होती हैं। 14-14 पर यति होती है।

52. विष्णुपद छंद—इस छंद के प्रत्येक चरण में 26 मात्राएँ होती हैं। 16-10 मात्राओं पर यति होती है। अंत में दो गुरु (ऽऽ) का होना अनिवार्य है।

53. वीर छंद—वीर छंद दो पदों के चार चरणों में रचा जाता है, जिसमें 16-15 मात्रा पर यति होती है। छंद में विषम चरण का अंत गुरू (ऽ) या 2 लघु (।) या लघुगुरू (।ऽ) या गुरु लघु (ऽ।) से होता है।

54. शंभु छंद—इसमें चार चरण होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में 32 मात्राएँ होती हैं। 8, 8, 16 पर यति होती है।

55. शार्दूलविक्रीडित छंद—यह वर्णिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 19 वर्ण एक मगण (ऽऽऽ), एक सगण (।।ऽ), एक जगण (।ऽ।), एक सगण (।।ऽ), दो तगण (ऽऽ।), एक गुरू होते हैं।

56. शालिनी छंद—यह एक वर्णिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 11-11 वर्ण होते हैं। जिसमें एक मगण (ऽऽऽ), दो तगण (ऽऽ।), दो गुरू होते हैं।

57. शिखरिणी छंद—इस छंद में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 17-17 वर्ण होते हैं। एक यगण (।ऽऽ), एक भगण (ऽ।।), एक नगण (।।।), एक सगण (।।ऽ), एक लघु व एक गुरू होते हैं। और प्रत्येक चरण में 11 मात्रा के बाद यति आती है।

58. शेर चाल

59. श्री नंदी छंद—इस छंद के प्रत्येक चरण में 19-19 मात्राएँ होती हैं एवं यह छंद अत्यन्त ही माधुर्य को लिए हुए हैं।

60. सरसी छंद—इस छंद में चार चरण और दो पद होते हैं। इसके विषम चरणों में 16-16 मात्राएँ और सम चरणों में 11-11 मात्राएँ होती हैं। इस तरह इसमें 27 मात्राओं के 2 पद होते हैं।

61. सवैया छंद—इसमें चार चरण होते हैं। इस छंद में 31 मात्राएँ होती हैं। 16-15 पर यति होती है।

62. सारंगी छंद—चार चरण वाले जिस छंद के प्रत्येक चरण में पाँच-पाँच मगण (ऽऽऽ) हों उसे सारंगी छंद कहते हैं।

63. सिंहविलोकित छंद—इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होती हैं एवं अन्त में लघु गुरू (।ऽ) होते हैं।

64. सोरठा छंद—यह दोहा छंद का उलटा होता है। इसके प्रथम-तृतीय चरण में 11-11 व द्वितीय-चतुर्थ चरण में 13-13 मात्राएँ होती हैं।

65. हरिगीतिका छंद—इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 28 मात्रा होती हैं एवं यति 16, 12 पर होती है। अंत में लघु, गुरु या नगण आवश्यक है। इसकी गति को ठीक रखने के लिए प्रत्येक चरण की 5वीं, 12वीं, 19वीं व 26वीं मात्राओं को लघु रखना चाहिए।

66. हुल्लास छंद—यह छंद चौपाई और त्रिभंगी के योग से बनता है और इसमें कुल मात्राएँ 192 होती हैं।

महाकवि अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज का छंद विज्ञान सभी को विस्मित करने वाला है। प्राकृत महाकाव्य वा हिन्दी काव्यों में आचार्य गुरुवर द्वारा विभिन्न प्रकार के छंदों का प्रयोग चित्त को आह्लादित कर देता है। जैन शासन के विभिन्न विषयों का तलस्पर्शी ज्ञान रखने वाले आचार्य गुरुवर का सान्निध्य पा ऐसा प्रतीत होता है जैसे साक्षात् श्रुतकेवली का पादमूल ही प्राप्त कर लिया हो। आचार्य भगवन् की लेखनी से प्रसूत साहित्य समूचे विश्व के लिए अमूल्य धरोहर है। आचार्य गुरुदेव का संयम, ज्ञान, तप शुक्ल पक्ष में निरंतर संवर्धित जलाम्बुधि के समान वृद्धि को प्राप्त होता रहे। पूज्य गुरुदेव को आरोग्य लाभ की प्राप्ति हो एवं चंद्रमा के समान आपकी सुख-शांति व शीतलतादायक छांव युगों-युगों तक भव्यजीवों को प्राप्त होती रहे। परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, राष्ट्र हितैषी संत आचार्य भगवन् श्री वसुनंदी जी गुरुदेव के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमन....

—आर्यिका वर्चस्व नंदनी

प्राक्कथन

—पं. सनत कुमार विनोद कुमार जैन, रजवांस

निरस्त कर्म सम्बन्धं सूक्ष्मं नित्यं निरामयम्।
वन्देऽहं परमात्मानममूर्तमनुपद्रवम्॥

अर्थात् कर्मबन्धन से रहित अशरीरी होने के कारण सूक्ष्म, जन्म-मरणादि रहित होने से नित्य, शारीरिक तथा मानसिक आधि- व्याधियों से रहित होने कारण निरामय, निरोग, पुद्गल का संबंध न होने के कारण अमूर्त तथा सांसारिक संबंध न होने से उपद्रव रहित सिद्ध परमात्मा को नमस्कार करता हूँ।

मानव सिद्धत्व का बीज है, जिस प्रकार बीज में अंकुरित होकर वृक्ष बनने, पुष्पित एवं फलित होने की क्षमता होती है उसी प्रकार मानव पर्याय में ही संयम, त्याग एवं तपस्या का आधार लेकर साधुत्व को प्राप्त कर क्रमशः पुष्पित, फलित होकर केवलत्व एवं मोक्ष को प्राप्त करने की योग्यता है।

कार्य की सफलता, संकल्पशक्ति सम्यक् पुरुषार्थ एवं सम्यक् आचरण पर निर्भर होती है। अनन्त मेधा एवं ऊर्जा के संवाहक तीर्थंकर भगवन्तों ने जिस आचरण प्रक्रिया से केवलत्व को प्राप्त किया है, वह आगम में वर्णित की है। आचार्यों ने मूल एवं टीका के द्वारा श्रावक और मुनिचर्या का मार्ग प्रशस्त किया है। उत्कृष्ट मुनिचर्या की सामर्थ्य न होने पर सद्गृहस्थ के व्रत नियमपूर्वक आचरण परम्परा से मोक्ष का कारण बनता है।

श्रावक के षट् कर्तव्यों में देवपूजा मुख्य कर्तव्य है, जिसे अनेक आचार्यों ने विभिन्न ग्रन्थों में उल्लिखित किया है।

देवोपासना के लिए संयमपूर्वक भक्ति एवं साधना को ही प्रशस्त माना गया है। जिनेन्द्रार्चना के विभिन्न अवलम्बनों में महापूजा, विधान, अनुष्ठानपूर्वक पुण्यार्जन कर कर्मक्षय करने का उपदेश परम्परा से प्राप्त हो।

जिनेन्द्रार्चना में सिद्धों की आराधना का प्रमुख स्थान है। सिद्धचक्र विधान सम्पूर्ण समाज में बहुत बहुमान व श्रद्धा से किया जाता है। इसे वर्ष की तीनों अष्टाह्निका पर्व में करने की परम्परा बन गई है। सिद्धचक्रविधान की रचना भट्टारक शुभचन्द्र जी, भट्टारक ललितकीर्ति ने संस्कृत में की है। इसका पद्यानुवाद नकुड़, जिला सहारनपुर निवासी पं श्री संतलाल जी ने किया है। इसके उपरान्त आर्यिका 105 ज्ञानमति माताजी, आर्यिका स्वस्तिभूषण माताजी आदि अनेक साधुओं ने भी हिन्दी पद्य में सिद्धचक्रविधान लिखा है। इन सबमें 8 से प्रारम्भ कर दुगुण-दुगुण विस्तार करते हुए 1024 तक अर्घ्य दिए गए हैं। जिसे वर्तमान में समयाभाव के कारण उन्हें दो-तीन भागों में बाँटकर विधान करने लगे हैं। जो उचित प्रतीत नहीं होता है।

आचार्य प्रवर 108 श्री वसुनन्दी जी महाराज ने ''अभिनव सिद्धचक्र विधान'' की रचना करके भक्तजनों का परमोपकार किया है। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री बहुमुखी प्रतिभा के धनी तो हैं ही साथ ही उन्हें अनेक विधाओं का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त है। आपने प्राकृत भाषा में अनेक ग्रन्थों का सृजन कर प्राकृत साहित्य भंडार को समृद्ध करते हुए श्रमण संस्कृति का संरक्षण भी किया है। इसी श्रृंखला में आपने अपने चिन्तन से अभिनव सिद्धचक विधान की रचना की है। इसमें आठ दिन की आठ पूजाएँ हैं। प्रथम पूजा में सिद्ध परमात्मा

के क्षायिकलब्धि एवं वस्तुत्वादि 24 गुणों की आराधना है। द्वितीय पूजा में अरिहंत के 46 मूलगुणों के 48 अर्घ्य हैं। तृतीय पूजा में आत्मा की शक्तियों के 61 अर्घ्य हैं। चतुर्थ पूजा में ऋद्धियों के 92 अर्घ्य हैं। पंचम पूजा में जीवाधिकरण और अजीवाधिकरण से रहित सिद्धात्मा के 123 अर्घ्य हैं। षष्ठ पूजा में सर्व कर्म प्रकृति से रहित 148 अर्घ्य हैं। सातवीं पूजा में सिद्धात्मा के विशेष गुणों के 260 अर्घ्य हैं और अष्टम पूजा में सिद्धों के नाम एवं गुणों के 576 अर्घ्य हैं। इस प्रकार आठ पूजाओं में कुल 1332 अर्घ्य हैं। इस विधान में द्विगुण-द्विगुण अर्घ्यों के विस्तार क्रम को न रखकर एवं अर्घ्यों की संख्या को भी कम किया है, साथ ही ऋद्धि के भेद-प्रभेद करके 48 से 64 और 64 से 92 तक भेद किये हैं। इससे पूजक को समय और भावार्थ समझने में सुविधा प्राप्त होती रहेगी। उक्त विधान में प्राचीन सिद्धचक्र विधानों के अर्घ्यों के विषयों की परम्परा को यथावत् रखा गया है। जिस प्रकार ऋद्धियों, कर्मप्रकृतियों, आस्रव के भेद, सहस्रनाम आदि का अनुसरण प्रसंशनीय है। इन सभी विषयों की प्रस्तुति सहज, सुबोध शैली में किया है जो दृष्टव्य है। प्रथम पूजा में द्रव्य के सामान्य गुणों का कथन है।

ज्ञान चेतना जीवद्रव्य की, गुण विशेष अनुपम ख्याता।
हो निगोदिया या शिववासी, ज्ञान मुख्य है विख्याता॥17॥

सर्व द्रव्य का गुण प्रधान है, अस्तिवाची अस्तित्व महा।
सिद्ध प्रभो अस्तित्व शुद्ध है, मेरा भी हो शुद्ध अहा॥10॥

द्रव्य कभी कूटस्थ न होता, गुण पर्याय प्रकट होती।
गुण द्रव्यत्व सर्व द्रव्यों की मानो यह चिन्मय ज्योति॥12॥

उक्त छन्दों में द्रव्यत्व के सामान्य गुणों का सरलता से उल्लेख किया गया है। आगम के गूढ़ रहस्यों को खोलकर सरल बनाकर परोसा गया है।

भगवान की संगति से वृक्ष भी अशोक होता है।

सुखद संगति अनल पाकर, काष्ठ भी वह्नि हो जाता।
शरण जिन की तरू पाकर, अशोका नाम सुभ पाता।।35।।

तीर्थंकर प्रभु की संगति ही आत्महितकारक है इसे प्रस्तुत किया है। तीर्थंकर के समवसरण में उपस्थित होने मात्र से विशुद्धि बढ़ जाती है। भाषा का श्रृंगार अलंकारों से होता है। इस विधान में अनेक स्थानों पर अलंकारों की अनुपम छटा देखी जा सकती है।

तत्त्वशक्ति से युक्त चेतना च्युत स्वभाव ना होवे।
अच्युत, अकल, अखण्ड, अरूपी कर्म कालिमा धोवे।।31।।

–(*पूजा 3*)

इस छन्द में अनुप्रास अलंकार की शोभा है।

होवे सदा सुतप से शुभ प्राप्त ऋद्धि।
देती महा अतिशयी निषकांक्ष सिद्धी।

–(*स्थापना चतुर्थपूजा*)

इस पद में ऋद्धि उत्पत्ति का हेतु बताया है और वह निष्कांक्ष सिद्धि भी प्रदान करती है।

जीव आस्रव को दो आधारों से करता है–जीवाधिकरण और अजीवाधिकरण। इस विधान की पंचम पूजा में इसे सरलता से स्पष्ट किया है।

पुद्गल से रचना वस्तू की, निर्वर्तन कहलाती।
आस्रव में अधिकरण अजीवा, आतम हित प्रतिघाती।।4।।

आस्रव में राग-द्वेष की प्रमुखता से दिखाया गया है।

जब जब असद्काय की चेष्टा, राग द्वेषमय होती।
भववर्द्धक कर्मों की खेती, बीज अनेकों बोती।।12।।

जब तक मन में विद्यमान है राग द्वेष मद मोहा।
तब तक द्रव्य साधना उसकी, करे न आतम सोहा।।14।।

जब तक जीव का उपयोग राग-द्वेषमय है तब तक उसकी आत्मा शुद्धता प्राप्त नहीं कर सकती है।

छठवीं पूजा में कर्म प्रकृतियों का स्वरूप कथन करते हुए उनसे छूटने का उपाय भी बताया गया है।

जितनी अशुभ हैं वर्गणा सब, अशुभ देह निमित्त हैं।
उसको विनाशा स्वात्मबल से पा जिनिंद निमित्त है।।135।।

जिनेन्द्र भगवान की भक्ति, पूजा, ध्यान आदि के निमित्त से अशुभ प्रकृतियों को नष्ट किया जाता है।

सातवीं पूजा में संसार परिभ्रमण का कारण और उसका निराकरण का सरल भाषा में प्रतिपादन किया है।

जीव भ्रमण जग में करे, मिथ्यात्वादिक हेतु।
अर्हन् जिन की शरण ले, भव नशि पा शिव सेतु।।101।।

पंच अक्ष के अश्व को, देते कठिन लगाम।
स्वातम गुण में लीन हों, पावें चिद् विश्राम।।110।।

अर्थात् पंचेन्द्रिय के घोड़े को कठिन लगाम देकर अपने

वश में करके अपने आत्मगुणों में लीन होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

आठवीं पूजा में सिद्धों की आराधना से सिद्धत्व को प्राप्त होने की सूचना दी गई है।

अनुपम गुण मंडित स्वातम रसखान,
जिन उर बसते वे भावी शिवजान।
सिद्धों की अर्चा देती गुण धाम,
सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।22।

सिद्ध भगवान् को हृदय में धारण कर आत्म चिन्तन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सातवीं पूजा में सिंद्ध भगवान् से एकत्व प्रदर्शित किया है।

तुम मुझसे और मैं तुमसे बिल्कुल भी अलग नहीं हूँ।
वसु कर्म कालिमा मेटूँ मैं भी फिर सिद्ध सही हूँ।।15।। जयमाला

सिद्ध भगवान् जैसा ही हमारा स्वरूप है। भगवान् को देखकर अपने स्वभाव, स्वरूप को समझकर आत्मा में अपने परिणामों में स्थिरता कर सिद्धत्व को प्राप्त किया जा सकता है। हममें और भगवान् में मात्र अष्ट कर्मों का ही अन्तर है। इन अष्टकर्मों को नष्ट करने का उद्देश्य ही सिद्धों की आराधना है।

सिद्धत्व हमारी अन्तिम अवस्था है, इसे प्राप्त करने के लिए हमें सिद्धों की निरन्तर आराधना करते रहना चाहिए। इसी भावना से आचार्य प्रवर वसुनन्दी जी महाराज ने श्रावकों के व्यस्ततम जीवन शैली को देखते हुए प्राचीन विधान परम्परा का निर्वहन करते हुए कहीं अर्घ्यों की वृद्धि कर और कहीं अर्घ्यों

को सीमित कर अल्प समयावधि में ही सिद्धों के स्वरूप को समझकर, उनकी आराधना करने के उद्देश्य से इस अभिनव सिद्धचक महार्चना विधान का सृजन किया है। आचार्य श्री वसुनन्दी जी महाराज की तपःपूत लेखनी से निःसृत आगम, सिद्धान्त, दर्शन एवं धर्म का मर्म प्रकट हुआ है। प्रत्येक आत्मार्थी को इस विधान को अवश्य करना चाहिए। इससे पूजन के साथ स्वाध्याय भी अनायास ही हो जावेगा। यह विधान मोक्षार्थियों के पथ का पाथेय बने ऐसी भावना है।

प्राकृत भाषा चक्रवर्ती आचार्यश्री वसुनंदी मुनि महाराज
द्वारा विरचित

अभिनव सिद्धचक्र महार्चना-निर्मल भावों की सरिता

-डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ़

कर्ममल कलंक से निष्कलंक आत्मा सिद्ध परमेष्ठी हैं। उन सिद्ध परमेष्ठी के गुणगान करने से और उनकी आराधना करने से हम भी सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर सकेंगे, ऐसी भावों की भावाञ्जलियों को लेकर श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान का आयोजन करते हैं और अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी भगवान की महार्चना करते हैं। श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान की रचना संस्कृत भाषा में अत्यंत भावों को विभोर करने वाली है, उसी सिद्धचक्र महामण्डल विधान की अर्चना हम हिन्दी भाषा में पंडितश्री संतलाल जी द्वारा रचित रचना के रूप में करते हैं। इसकी महिमा अचिन्तन्य है। इसी क्रम में, प्राकृत मार्तण्ड, बहु- भाषाविद्, ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तः, न्यायकला में निपुण आचार्यप्रवर श्री 108 वसुनंदी मुनि महाराज द्वारा सिद्धचक्र महार्चना की रचना की गई है। जो कि संतप्त जनों के लिए शीतलता प्रदान करने वाली है।

आचार्यश्री ने प्राकृत भाषा में ही सिद्धभक्ति की रचना की। इसे पुस्तक के प्रारंभ में लिखा गया। तत्पश्चात् चैत्यभक्ति और पंच महागुरुभक्ति की भी प्राकृत भाषा में रचना आपके द्वारा ही की गई। इसकी जो चूलिका है, वह पूर्ववत् ही है। इससे

आचार्यश्री की नवीन रचना के साथ-साथ महान् आचार्यों की लेखनी के प्रति कृतज्ञता और लघुता का भाव प्रकट रूप से स्पष्ट झलक रहा है।

हम पंडित श्री संतलालजी के सिद्धचक्र महामण्डल विधान को करते हैं जिसमें 8 + 16 + 32 + 64 + 128 + 256 + 512 + 1024 = 2040 अर्घ्य हैं। आचार्यश्री वसुनंदी जी महाराज ने 24 + 48 + 61 + 92 + 123 + 148 + 260 + 576 = 1332 अर्घ्य दिए हैं। इसमें पूज्यश्री ने आठ कोष्ठों पर 1332 अर्घ्य समर्पित करने के लिए आठ पूजाएँ दी हैं। बहुत ही व्यवस्थित रूप से सिद्ध भगवान् के विविध गुणों को पृथक्-पृथक् रूप से गाया है। जिसमें क्रम से देखें-प्रथम पूजा में क्षायिकलब्धि और वस्तुत्व आदि गुणों से युक्त 24 अर्घ्य, द्वितीय पूजा में अरिहंतों के मूलगुण 48 अर्घ्य, तृतीय पूजा में आत्मशक्ति से संयुक्तसिद्ध 61 अर्घ्य, चतुर्थ पूजा में ऋद्धियों के परमफल 92 अर्घ्य, पंचम पूजा में जीवाजीवाधिकरण से मुक्तसिद्ध 123 अर्घ्य, षष्ठम पूजा में सर्वकर्म प्रकृतियों से मुक्त 148 अर्घ्य, सप्तम पूजा में विशिष्ट व परम गुण 260 अर्घ्य, अष्टम पूजा में सिद्ध भगवान् के नाम एवं अन्य विशिष्ट गुण 576; इस प्रकार से 1332 अर्घ्य में महार्चना की गई है। इसमें लगभग 66 हिन्दी छंदों का प्रयोग किया गया है। इस कृति का सम्पादन परम पूज्य मुनिश्री प्रज्ञानंद जी महाराज द्वारा किया गया है। संक्षिप्त रूप से हम यहाँ पर पूजा के वैशिष्ट्य को समझते हैं-

प्रथम पूजा की स्थापना में आचार्यश्री ने सम्पूर्ण पूजा के भावों को स्पष्ट रूप से लिख दिया है, स्थापना को ही ठीक

से पढ़ने से हमें ज्ञात हो जाता है कि सिद्धचक्र महार्चना के भाव और उनका फल आराधना द्वारा हमें परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति कराने का सामर्थ्य रखता है। कहा है–

जैसे सुमन में सुखद सौरभ, नंद संवर्द्धित करे,
त्यों सु–मन युत भवि मनुज को तव, नाम शुभ गुण से भरे।
बहु विघ्ननाशक कार्यसाधक, नाम तव विख्यात है,
जो भव्य चित में धारता होता निरोगी गात है।।3।।

चूँकि भावों की निर्मलता में आगे बढ़ते हुए आचार्यश्री ने अक्षत को समर्पित करते हुए ऐसे नवीन उदाहरणों का समावेश किया है, जो आनंददायक है और विषय को समझने के लिए अधिक श्रेष्ठ हैं। वे लिखते हैं–

श्रेष्ठ सीप के उत्तम मुक्ता, वा पूनम का चंदा।
क्षीरोदधि के धवल फेन सम, ले अक्षत आनंदा।।

द्वितीय पूजा में अरिहंत भगवान् के 48 मूलगुणों का विवेचन करते हुए भावना भायी है, कि उद्देश्य तो सिद्धत्व ही है, जिसको पाना है। इसी भाव को संजोते हुए पूजन की जयमाला में आचार्यश्री लिखते हैं–

मैं रहूँ सदा तव गुण प्यासा, तव भक्त बने नित पद दासा।
जीवन में एक रहे आशा, हो मेरा सिद्ध चरण वासा।।8।।

तृतीय पूजा में आत्मशक्ति से संयुक्त सिद्ध भगवान् के गुणों का गान किया है। ये गुण प्रत्येक आत्म में प्रकट हो सकते हैं, उनकी सत्ता है, बस कर्ममल कलंक से रहित होने की देरी है। इस विषय को स्पष्ट करते हुए यहाँ आचार्य भगवन् लिखते हैं–

आत्मशक्ति प्रकटाय सर्वदा, हे जिनेन्द्र तुम नित्य शर्मदा।
आप सा भविक आप भक्ति से, हो विवाह वर वाम मुक्ति से।।2।।

चतुर्थ पूजा में ऋद्धियों के फल के विषय में कहा गया है। तप बल से ऋद्धियाँ मुनि महाराजों को स्वयमेव प्रकट हो जाती हैं। मुनि महाराज के चारों ओर ऋद्धियों का वास होता है, लेकिन मुनि महाराज इन ऋद्धियों के प्रति उदासीन होते हैं, उनका कोई प्रयोजन नहीं होता है। उनके लिए उनका मोक्षमार्ग ही उपादेय है, शेष अप्रयोजनीय और अनुपादेय है। आचार्य भगवन् लिखते हैं–

पूरव भव में विनय भाव से, श्रुताभ्यास करके।
ज्ञान क्षयोपशम भव्य पावें, मिथ्या तम हरके।।

हम श्रुतका अभ्यास करें, विनय रखें जिससे हम भी सिद्ध परमेष्ठी बन सकें। ऐसी भावना समाहित करके हम अपने जीवन को कृतकृत्य बना सकते हैं।

पाँचवीं पूजन में आचार्यश्री ने जीवाजीवाधिकरण से मुक्तसिद्ध की चर्चा की है। इसमें 123 अर्घ्य हैं। बस यही कामना हम सिद्ध भगवान् से करते हैं–

आया तव पद श्रेष्ठ जान के, एकाधार तुम्हें मान के।
भव सागर से मुझे तार दो, मेरे चित् को जिन सुधार दो।।9।।

छट्ठी पूजन में सर्वकर्म प्रकृतियों से मुक्त की आराधना की गई है। इसमें 148 अर्घ्य समाहित हैं।

इक बार कर्म जो नाशे, ना हो फिर भव में आना।
इसलिए सिद्ध जिन तुम सम, मुझको भी शिवपद पाना।।13।।

सातवीं पूजन में सिद्ध परमेष्ठी के विशिष्ट गुणों की चर्चा है। इसमें 260 अर्घ्य हैं।

वेदवासना जीत आपने, कामदेव को मारा।
निज आतम का वैभव निज में, प्रकट किया है सारा।।
स्वातम वैभव पाने को हम, तव पद शीश झुकाएँ।
जिनपद पद्म पुष्प पर अलिवत्, नित्य नित्य मंडराएँ।।231।।

आठवीं पूजन में सिद्ध परमेष्ठी के विविध नामों और अन्य श्रेष्ठ गुणों की चर्चा की है। इसमें 576 अर्घ्य हैं।

मिथ्यात्रय के वशीभूत हो, जीव लोक में भटका,
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित को, धार कर्म को झटका।
शुभ शुभतर शुभतम व क्रमशः शुद्ध भाव भवि करके,
नित्य निरंजन पंचम गति को प्राप्त किया विधि हरके।।1।।

इस प्रकार से आचार्य श्री वसुनंदी जी महाराज ने श्री सिद्धचक्र महार्चना के माध्यम से सिद्ध परमेष्ठी भगवान् की महान् आराधना करके स्व-पर दोनों के कल्याण के उपक्रम को साधा है। हम धन्य हैं! ऐसे पूज्य गुरुदेव हैं, जिनकी लेखनी से जिनवाणी का नीर टपकता है, हम अपनी पात्रता से जितना ग्रहण करना चाहे, कर सकते हैं। मैं तो कहूँगा कि हमें जिनवाणी के इस अमृत-नीर को पीकर सिद्धत्व-अमरत्व को प्राप्त करना चाहिए।

अनुक्रमणिका

1. मङ्गलाष्टक 1
2. विधान की प्रारंभिक क्रियाएँ 3
3. अभिषेक पाठ (संस्कृत) 9
4. जलाभिषेक वा प्रक्षाल पाठ 15
5. श्री शांतिधारा 19
6. विनयपाठ 24
7. मंगलपाठ 26
8. पूजन पीठिका 27
9. नवदेवता पूजन (आ० श्री वसुनंदी जी मुनि कृत)..... 32
10. नंदीश्वर पूजन 37
11. अर्घावली 43
12. परम्पराचार्य अर्घ्यावली 47
13. सिद्धचक्र पूजन अर्घ्यावली 49
14. श्री सिद्ध भक्ति 52
15. श्री चैत्य भक्ति 54
16. पंच महागुरु भक्ति 56
17. श्री अभिनव सिद्धचक्र महार्चना.......................... 58
18. प्रथम पूजन 61
19. द्वितीय पूजन 73

20. तृतीय पूजन.. 87
21. चतुर्थ पूजन.. 102
22. पंचम पूजन.. 128
23. षष्टम पूजन.. 156
24. सप्तम पूजन.. 188
25. अष्टम पूजन.. 237
26. समुच्चय महार्घ्य.. 345
27. शांतिपाठ.. 347
28. विसर्जन पाठ.. 349
29. सिद्धचक्र आरती.. 350
30. हवन विधि.. 351
31. भजन.. 360

मङ्गलाष्टकम्

(शार्दूलविक्रीड़ितम् छन्द)

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्याः जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्त-सुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते (मे) मंगलम्।।1।।

श्रीमन्नम्र - सुरासुरेन्द्र - मुकुट - प्रद्योत - रत्नप्रभा-
भास्वत्पाद-नखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते (मे) मंगलम्।।2।।

सम्यग्दर्शन - बोध - वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्तिश्री - नगराधिनाथ - जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्र्यालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते (मे) मंगलम्।।3।।

नाभेयादि - जिनाधिपास्त्रिभुवन ख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वर - प्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लांगलधराः सप्तोत्तरा विंशतिः,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते (मे) मंगलम्।।4।।

ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगताः पञ्च ये,
ये चाष्टांग - महानिमित्त - कुशलायेऽष्टौ - वियच्चारिणः।
पंचज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः कुर्वन्तु ते (मे) मंगलम्।।5।।

कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते (मे) मंगलम्।।6।।

ज्योतिर्व्यन्तर - भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्य-शाखिषु तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते (मे) मंगलम्।।7।।

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संपादितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वन्तु ते (मे) मंगलम्।।8।।

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवाः यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते (मे) मंगलम्।।9।।

इत्थं श्रीजिन-मंगलाष्टकमिदं सौभाग्य - सम्पत्करम्,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैः धर्मार्थ-कामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय-रहिता निर्वाण-लक्ष्मीरपि।।10।।

।।इति श्री मंगलाष्टकस्तोत्रम्।।

विधान की प्रारम्भिक क्रियाएँ

अमृतस्नान मन्त्र

ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृत-वर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं सं झ्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

(अंजुलि में जल लेकर शरीर पर छिड़कें)

तिलक मन्त्र

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः मम/यजमानस्य सर्वांगशुद्धि- हेतवे नव तिलकं करोम्यहम्॥

(1. शिखा 2. मस्तक 3. ग्रीवा 4. हृदय 5. दोनों भुजाएँ 6. पीठ 7. कान 8. नाभि 9. हाथ। (इन नौ स्थानों पर तिलक लगायें)।

दिग्बन्धन मन्त्र

ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां पूर्वदिशः आगत-विघ्नान् निवारय- निवारय सर्वान् रक्ष रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा।

(बंद मुट्ठी से पूर्व दिशा में पुष्प क्षेपण करें)

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं दक्षिणदिशः आगत विघ्नान् निवारय- निवारय सर्वान् रक्ष रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा।

(बंद मुट्ठी से दक्षिण दिशा में पुष्प क्षेपण करें)

ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ह्रूं पश्चिमदिशः आगत विघ्नान् निवारय- निवारय सर्वान् रक्ष रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा।

(बंद मुट्ठी से पश्चिम दिशा में पुष्प क्षेपण करें)

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं उत्तरदिशः आगत विघ्नान् निवारय- निवारय सर्वान् रक्ष रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा।

(बंद मुट्ठी से उत्तर दिशा में पुष्प क्षेपण करें)

ॐ ह्रः णमो लोएसव्वसाहूणं ह्रः सर्वदिशः आगत विघ्नान् निवारय- निवारय सर्वान् रक्ष रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा।

(बंद मुट्ठी से सभी दिशा में पुष्प क्षेपण करें)

परिचारक मन्त्र

ॐ नमोऽर्हते रक्ष रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा।

(सात बार पुष्प क्षेपण करें)

रक्षा-मन्त्र

ॐ ह्रूं क्ष्रूं फट् किरिटिं किरिटिं घातय घातय परविघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्रखण्डान् कुरु कुरु परमुद्रां छिन्दि छिन्दि परमंत्रान् भिन्दि भिन्दि वाः वाः क्षः क्षः ह्रूं फट् स्वाहा।

(तीन बार पढ़कर पुष्प क्षेपण करें)

शान्ति मन्त्र

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोष-कल्मषाय दिव्य-तेजो-मूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय, सर्व-रोगापमृत्यु विनाशनाय सर्वपरकृच्छुद्रोपद्रव-नाशनाय सर्वक्षाम-डामर-विनाशनाय सर्वारिष्ट शान्तिकराय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः सर्वशान्तिं तुष्टिं पुष्टिं च कुरु कुरु स्वाहा।

(सात बार पढ़कर पात्रों पर पुष्प क्षेपण करें)

भूमि शुद्धि मन्त्र

ॐ शोधयामि भूभागं, जिनधर्माभिरुत्सवे।
काल-धौतोज्ज्वल स्थूलं, कलशापूर्ण वारिणी॥

ॐ ह्रीं नमः सर्वज्ञाय सर्वलोकनाथाय धर्मतीर्थनाथाय श्रीशान्तिनाथाय परमपवित्रेभ्यः शुद्धेभ्यः नमः पवित्रजलेन भूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा।

पात्र शुद्धि मन्त्र

शोधये सर्वपात्राणि, पूजार्थानपि वारिभिः।
समाहितो यथाम्नायं, करोमि सकलीक्रियाम्।।

ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा पवित्रतरजलेन पात्रशुद्धिं करोमि स्वाहा।

(पूजा के सभी बर्तन मंत्रित जल के छीटें लगाकर शुद्ध करें)

द्रव्यशुद्धि मन्त्र

ॐ ह्रीं अर्हं झ्रौं झ्रौं वं मं हं सं तं पं झ्वीं क्ष्वीं हं सः अ सि आ उ सा समस्ततीर्थपवित्रजलेन शुद्धपात्र-निक्षिप्त-पूजाद्रव्याणि शोधयामि स्वाहा।

(पूजा द्रव्य को मंत्रित जल से शुद्ध करें)

सकलीकरण

(अंगुलियों में पंच परमेष्ठी की स्थापना करना)

ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः।

ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः।

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं अनामिकाभ्यां नमः।

ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः करतालाभ्यां नमः।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः करपृष्ठाभ्यां नमः।

अंगशुद्धि

(दोनों हाथों से अंग स्पर्श करें)

ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां मम शीर्षं रक्ष रक्ष स्वाहा।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं मम वदनं रक्ष रक्ष स्वाहा।

ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ह्रूं मम हृदयं रक्ष रक्ष स्वाहा।

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं मम नाभिं रक्ष रक्ष स्वाहा।

ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः मम पादौ रक्ष रक्ष स्वाहा।

शरीर पर पुष्पक्षेपण करें।

ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

वस्त्र पर पुष्पक्षेपण करें।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं मम वस्त्रं रक्ष रक्ष स्वाहा।

पूजन द्रव्य पर पुष्पक्षेपण करें।

ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं ह्रूं मम पूजाद्रव्यं रक्ष रक्ष स्वाहा।

स्थान निरीक्षण करें।

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं मम पूजा स्थलं रक्ष रक्ष स्वाहा।

सर्वजगत की रक्षा के लिए जल सिञ्चन करें।

ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः सर्वजगत् रक्ष रक्ष स्वाहा।

दाहिने हाथ में रक्षासूत्र बाँधें।

ॐ नमोऽर्हते सर्व रक्ष रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा।

यज्ञोपवीत धारण

ॐ नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकरणायाहं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।

नियम

सप्त व्यसनों का त्याग, अष्ट मूलगुणों को धारण करना।

जलशुद्धि

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पद्म महापद्म-तिगिंच्छकेसरि - पुण्डरीक - महापुण्डरीक - गंगासिन्धु - रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता-सीता-सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्णरूप्यकूला रक्ता रक्तोदा क्षीराम्भोनिधि जलं सुवर्णघटं प्रक्षिप्तं- सर्वगन्धपुष्पाढ्य - ममोदकं पवित्रं कुरु कुरु झं झं झौं झौं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं सः स्वाहा।

(पीले सरसों अथवा लवंग से जल शुद्ध करना)

मंगल कलश में सुपारी, हल्दी रखने का मन्त्र

ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः मंगलकलशे पुंगादिफलानि प्रभृति वस्तूनि प्रक्षिपामीति स्वाहा।

मंगल कलश के ऊपर श्रीफल रखने का मन्त्र

ॐ क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते सर्वं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।

मंगल कलश स्थापना

ॐ अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादि ब्रह्मणे मतेऽस्मिन् विधीयमाने कर्माणि वीरनिर्वाणसंवत्सरे .... मासे .... पक्षे ....तिथौ......................... वासरे .... प्रशस्तलग्ने नवरत्नगन्धपुष्पाक्षतबीजपूरादिशोभितं .... कार्यस्य निर्विघ्नसम्पन्नार्थं मंगलकलशस्थापनं करोम्यहं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

(मंडल के ईशान कोण में कलश स्थापित करें)

दीपक स्थापित करने हेतु

रुचिरदीप्तिकरं शुभदीपकं, सकललोकसुखाकरमुज्ज्वलम्।
तिमिरजालहरं प्रकरं सदा, किल धरामि सुमंगलकं मुदा।।

ॐ ह्रीं अज्ञानतिमिरहरं दीपकं स्थापयामि।

माला शुद्धि

ॐ ह्रीं रत्नैः स्वर्णैः सूतैर्बीजैः रचिता जपमालिका सर्वजपेषु वाञ्छितानि प्रयच्छन्तु।

माला (जाप) को प्रासुक जल से धोकर थाली में स्वस्तिक बनाकर उसमें रखें और उक्त मंत्र को सात बार पढ़कर पुष्प क्षेपण करें।

सण्णाणं हरदि दुहं, विणस्सदि णियमेण रायद्दोसं।
संवेअ-वेरग्गाण, जिणभत्ति-कारणं पमुक्खं।।213।।

–(*आत्म वैभव, आ. वसुनंदी मुनि*)

सम्यग्ज्ञान दुःख नष्ट करता है, नियम से राग-द्वेष विनष्ट करता है और यह सम्यग्ज्ञान संवेग, वैराग्य, व जिनभक्ति का प्रमुख कारण है।

अभिषेक पाठ (संस्कृत)

(वसन्ततिलका)

श्रीमन्नताऽमर शिरस्तटरत्नदीप्तिः,
तोयाऽवभासि चरणाम्बुजयुग्ममीशम्।
अर्हन्तमुन्नत - पद - प्रदमाभिनम्य,
त्वन्मूर्तिषूद्यदभिषेक-विधिं करिष्ये॥१॥

अथ पौर्वाह्णिक-देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म-क्षयार्थं भावपूजा - स्तव - वन्दना - समेतं श्री-पञ्च-महागुरु-भक्तिपूर्वकम् कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(यह पढ़कर नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ें)

(वसन्ततिलका)

याः कृत्रिमास्तदितराः प्रतिमाः जिनस्य,
संस्नापयन्ति पुरुहूतमुखादयस्ताः।
सद्भावलब्धिसमयादिनिमित्तयोगा,
तत्रैवमुज्ज्वलधिया कुसुमं क्षिपामि॥२॥

अथ जिनाभिषेक-प्रतिज्ञायां पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

(यह पढ़कर थाली में पुष्पाञ्जलि छोड़कर अभिषेक की प्रतिज्ञा करें।)

(उपजाति)

श्री-पीठ-क्लृप्ते, विशदाक्षतौघैः, श्री-प्रस्तरे पूर्ण-शशाङ्क-कल्पे।
श्रीवर्तके चन्द्रमसीति वार्ता, सत्यापयन्तीं श्रियमालिखामि॥३॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीकारलेखनं करोमि।

(अनुष्टुप)

कनकादिनिभं कम्रं, पावनं पुण्यकारणम्।
स्थापयामि परं पीठं, जिन - स्नपनाय भक्तितः।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीपीठस्थापनं करोमि।

(वसन्ततिलका)

भृङ्गार - चामर - सुदर्पण - पीठ - कुम्भ,
तालध्वजा - तपनिवारक - भुषिताग्रे।
वर्धस्व नन्द जय पीठपदावलीभिः,
सिंहासने जिन! भवन्तमहंश्रयामि।।५।।

(अनुष्टुप)

वृषभादि - सुवीरान्तान्, जन्माप्तौ जिष्णुचर्चितान्।
स्थापयाम्यभिषेकाय, भक्त्या पीठे महोत्सवम्।।६।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्! स्नपन-पीठे सिंहासने तिष्ठ-तिष्ठ।

(वसन्ततिलका)

श्रीतीर्थकृत् - स्नपनवर्यविधौ सुरेन्द्रः,
क्षीराऽब्धिवारिभिरपूरयदर्थ - कुम्भान्।
तांस्तादृशानिव विभाव्य यथाऽर्हणीयान्,
संस्थापये कुसुमचन्दनभूषिताग्रान्।।७।।

(अनुष्टुप)

शातकुम्भीय - कुम्भौघान्, क्षीराब्धेस्तोयपूरितान्।
स्थापयामि जिनस्नान - चन्दनादि - सुचर्चितान्।।८।।

ॐ ह्रीं स्वस्तये चतुःकोणेषु चतुःकलशस्थापनं करोमि।

(यह पढ़कर चार कोनों में कलश स्थापित करें)

(वसन्ततिलका)

आनन्द - निर्भर - सुर प्रमदादि - गानैः,
वादित्र - पूर - जय - शब्द - कल - प्रशस्तैः।
उद्गीयमान - जगतीपतिकीर्तिमेनां,
पीठ-स्थलीं वसु-विधाऽर्चनयोल्लसामि॥९॥

ॐ ह्रीं स्नपन-पीठ-स्थिताय जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वसन्ततिलका)

कर्म - प्रबन्ध - निगडैरपि हीनताप्तं,
ज्ञात्वापि भक्तिवशतः परमादिदेवम्।
त्वां स्वीयकल्मषगणोन्मथनाय देव !
शुद्धोदकैरभिनयामि नयार्थकस्व॥१०॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन जिनेन्द्रमाभिषेचयामि स्वाहा।

(अनुष्टुप)

तीर्थोत्तम - भवैनीरैः क्षीर - वारिभि - रूपकैः।
स्नपयामि सुजन्मान्तान्, जिनान् सर्वार्थसिद्धिदान्॥११॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामीति स्वाहा।

(यह पढ़ते हुए कलश से धारा प्रतिमाजी पर छोड़ें)

(मालिनी)

सकलभुवननाथं तं जिनेन्द्रं सुरेन्द्रै-
रभिषवविधिमाप्तं स्नातकं स्नापयामः।
यदभिषवन-वारां बिन्दुरेकोऽपि नृणां,
प्रभवति हि विधातुं भुक्तिसन्मुक्तिलक्ष्मीम्॥१२॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं सं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः झं वं ह्रः यः सः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः द्रां द्रीं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः इति बृहच्छान्तिमन्त्रेणाभिषेकं करोमि।

(यह पढ़कर चारों कोनों में रखे हुए चार कलशों से अभिषेक करें।)

(वसन्ततिलका)

पानीय - चन्दन - सदक्षत - पुष्पपुञ्जैः
नैवेद्य - दीपक - सुधूप - फलव्रजेन।
कर्माष्टक-क्रथन-वीर-मनन्त-शक्तिं,
संपूजयामिसहसामहसांनिधानम्॥१३॥

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वसन्ततिलका)

हे तीर्थपा! निजयशोधवलीकृताशा,
सिद्धौषधाश्च भवदुःखमहागदानाम्।
सद्भव्यहृज्जनितपङ्कबन्धकल्पाः,
यूयंजिनाःसततशान्तिकराभवन्तु॥१४॥

(यह पढ़कर शान्ति के लिए पुष्पाञ्जलि छोड़ें)

(वसन्ततिलका)

नत्वा मुहूर्निज - करै - रमृतोपमेयैः,
स्वच्छैर्जिनेन्द्र! तव चन्द्रकराऽवदातैः।
शुद्धांऽशुकेन विमलेन नितान्तरम्ये,
देहे स्थितान्जलकणान्परिमार्जयामि॥१५॥

ॐ ह्रीं अमलांशुकेन जिनबिम्बपरिमार्जनं करोमि।

(यह पढ़कर शुद्ध और स्वच्छ वस्त्र से प्रतिमाजी को पोंछें)

(वसन्ततिलका)

स्नानं विधाय भवतोऽष्टसहस्रनाम्ना-
मुच्चारणेन मनसो वचनो विशुद्धिम्।
जिघृक्षुरिष्टिमिन ! तेऽष्टतयीं विधातुं,
सिंहासने विधिवदत्र निवेशयामि॥१६॥

ॐ ह्रीं श्री सिंहासनपीठे जिनबिम्बं स्थापयामि।

(अनुष्टुप)

जलगन्धाऽक्षतैः पुष्पैश्चरुसुदीपसुधूपकैः,
फलैरर्घ्यैर्जिनमर्चे, जन्म-दुःखा-पहानये॥१७॥

ॐ ह्रीं श्रीपीठस्थिताय जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वसन्ततिलका)

नत्वा परीत्य निजनेत्रललाटयोश्च,
व्याप्तं क्षणेन हरतादधसञ्चयं मे।
शुद्धोदकं जिनपते तव पादयोगाद्,
भूयाद् भवाऽतपहरं धृतमादरेण॥१८॥

(शार्दूलविक्रीडित)

मुक्तिश्रीवनिताकरोदकमिदं, पुण्याङ्कुरोत्पादकम्;
नागेन्द्र-त्रिदशेन्द्र-चक्र-पदवी, राज्याभिषेकोदकम्।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-दर्शन-लता, संवृद्धि-सम्पादकम्,
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन ! स्नानस्य गन्धोदकम्॥१९॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनगन्धोदकं स्वललाटे धारयामि।

(शिखरिणी)

इमे नेत्रे जाते, सुकृत-जलसिक्ते सफलिते,
ममेदं मानुष्यं, कृति-जनगणाऽदेयमभवत्।
मदीयाद् भल्लाटा, दशुभवसुकर्माऽटनमभूत्,
सदेदृक् पुण्यार्हन् ! मम भवतु ते पूजनविधौ॥२०॥

(यह पढ़कर पुष्पाञ्जलि छोड़ें)

पराधीन कौन

जो कंखदे जावइय-अहियवत्थूणि धण-गिह-जीवा वा।
तेसु होदि संलीणो, तावइयो-परायत्तो सो॥1॥

–(*आत्म निर्भर भारत, आ. वसुनंदी मुनि*)

जो जितनी अधिक वस्तु, धन, गृह अथवा जीवों की आकांक्षा करता है, उनमें लीन होता है वह उतना ही अधिक पराधीन होता है।

जलाभिषेक वा प्रक्षाल पाठ

(प्रक्षाल करते समय पढ़ना चाहिये।)

दोहा

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान॥

(ढाल– मंगल की)

(छंद–अडिल्ल और गीता)

श्री जिन जग में ऐसो को बुधवंत जू,
जो तुम गुण वरननि करि पावै अंत जू।
इंद्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी,
कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवनधनी॥

अनुपम अमित तुम गुणनि–वारिधि, ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरैं हम उर कोष में सो, अकथ–गुण–मणि राश है॥
पै निज प्रयोजन सिद्धि की तुम, नाम में ही शक्ति है।
यह चित्त में सरधान यातैं, नाम ही में भक्ति है॥1॥

ज्ञानावरणी दर्शन आवरणी भने,
कर्म मोहनी अंतराय चारों हने।
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में,
इंद्रादिक के मुकुट नये सुरथान में॥

तब इन्द्र जान्यो अवधितैं उठि, सुरन–युत वंदत भयो।
तुम पुण्यको प्रेर्‌यो हरी ह्वै, मुदित धनपतिसों कह्यो॥
अब वेगि जाय रचौ समवसृति, सफल सुरपदको करो।
साक्षात् श्री अरहंत के दर्शन करौ कल्मष हरो॥2॥

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपती,
चल आयो तत्काल मोद धारै अती।
वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयो,
दे प्रदच्छिना बार बार वंदत भयो॥
अति भक्ति-भीनो नम्र-चित ह्वै, समवशरण रचौ सही।
ताकी अनूपम शुभ गतीको, कहन समरथ कोउ नहीं॥
प्राकार तोरण सभामंडप, कनक मणिमय छाजहीं।
नग-जड़ित गंधकुटी मनोहर, मध्यभाग विराजहीं॥3॥
सिंहासन तामध्य बन्नौ अद्भुत दिपै,
तापर वारिज रच्यौ प्रभा दिनकर छिपै।
तीन छत्र सिर शोभित चौसठ चमरजी,
महा भक्तियुत ढोरत हैं तहँ अमरजी॥
प्रभु तरन तारन कमल ऊपर, अन्तरीक्ष विराजिया।
यही वीतराग दशा प्रतच्छ, विलोकि भविजन सुख लिया॥
मुनि आदि द्वादश सभा के भविजीव मस्तक नाय के।
बहुभांति बारंबार पूजैं, नमैं गुणगण गाय के॥4॥
परमौदारिक दिव्य देह पावन सही,
क्षुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नहीं।
जन्म जरामृति अरति शोक विस्मय नसे,
राग रोष निद्रा मद मोह सबै खसे॥
श्रमबिना श्रमजलरहित पावन, अमल ज्योति-स्वरूपजी।
शरणागतनि की अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी॥

ऐसे प्रभू की शांतिमुद्रा, को न्हवन जलतैं करें।
'जस' भक्तिवश मन उक्ति तैं, हम भानु ढिग दीपक धरें।।5।।
तुम तो सहज पवित्र यही निश्चय भयो,
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो।
मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यो,
महा मलिन तन में वसु-विधि-वश दुख सह्यो।।
बीत्यो अनंतो काल यह मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिता-हर एक तुम ही, भरहु बांछा चित ठई।।
अब अष्टकर्म विनाश सब मल, रोष-रागादिक हरो।
तनरूप कारा-गेहतैं उद्धार शिव वासा करो।।6।।
मैं जानत तुम अष्टकर्म हनि शिव गये,
आवागमन विमुक्त राग-वर्जित भये।
पर तथापि मेरो मनुरथ पूरत सही,
नय-प्रमानतैं जानि महा साता लही।।
पापाचरण तजि न्हवन करता, चित्त में ऐसे धरूँ।
साक्षात श्री अरहंत का मानों न्हवन परसन करूँ।।
ऐसे विमल परिणाम होते, अशुभ नसि शुभबंध तैं।
विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं ह्वै, शर्म सब विधि तासतैं।।7।।
पावन मेरे नयन भये तुम दरसतैं,
पावन पानि भये तुम चरननि परसतैं।
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यानतैं,
पावन रसना मानी तुम गुण गानतैं।।

पावन भई परजाय मेरी, भयो मैं पूरण-धनी।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्णभक्ति नहीं बनी।।
धन धन्य ते बड़भागि भवि तिन, नींव शिव-घर की धरी।
वर क्षीरसागर आदि जल मणिकुंभ भर भक्ती करी।।8।।

विघन-सघन-वन-दाहन-दहन प्रचंड हो,
मोह-महा-तम-दलन प्रबल मारतण्ड हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश, आदि संज्ञा धरो,
जग-विजयी जमराज नाश ताको करो।।

आनंद-कारण दुख-निवारण, परम-मंगल-मय सही।
मोसो पतित नहिं और तुमसो, पतित-तार सुनो नहीं।।
चिंतामणी पारस कल्पतरु, एक भव सुखकार ही।
तुम भक्ति-नवका जे चढ़े ते, भये भवदधि-पार ही।।9।।

दोहा

तुम भवदधितैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्तिको, हमैं उतारो पार।।10।।

।।इति हरजसराय कृत अभिषेक पाठ।।

भगवान रूप

बहिरंतरेगागी य, विमल-चित्तो णिच्छलो सहजो जो।
सवर-संतीइ सक्को, जोगी भगवंत-रूवो सो।।51।।

–(*विस्स पुज्जो दियंबरो, आ. वसुनंदी मुनि*)

जो बाह्य व अभ्यन्तर मे एकाकी है, विमल चित्त वाला निश्छल, सहज और स्व- पर शांति के लिए समर्थ है वह योगी भगवान का रूप है।

श्री शांतिधारा

ॐ नमः सिद्धेभ्यः **श्री वीतरागाय नमः**

ॐ ह्रां क्षां णमो अरिहंताणं, ॐ ह्रीं क्षीं णमो सिद्धाणं,
ॐ ह्रूं क्षूं णमो आइरियाणं, ॐ ह्रौं क्षौं णमो उवज्झायाणं,
ॐ ह्रः क्षः णमो लोए सव्वसाहूणं।

चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंता लोगुत्तमो, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः सर्वशान्तिं तुष्टिं पुष्टिं च कुरु कुरु।

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोष-कल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्यु-विनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रव विनाशनाय सर्वक्षाम-डामर-विनाशनाय सर्व ग्रहारिष्ट शांति कराय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः मम/शांतिधारा कर्ता का नाम.... सर्वशान्ति तुष्टिं पुष्टिं च कुरु कुरु।

ॐ ह्रूं क्षूं फट् किरिटिं किरिटिं घातय घातय परविघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्रखण्डान् कुरु कुरु परमुद्रां छिन्द छिन्द परमन्त्रान् भिन्द भिन्द क्षः क्षः ह्रूं फट् सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अ सि आ उ सा अनाहतविद्यायै णमो अरिहंताणं ह्रौं सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ अ ह्रां सि ह्रीं आ ह्रूं उ ह्रौं सा ह्रः जगदापद विनाशनाय ह्रीं शान्तिनाथाय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय अशोकतरु–सत्प्रातिहार्य–मण्डिताय अशोकतरु–सत्प्रातिहार्य शोभनपदप्रदाय ह्म्ल्व्र्यूं–बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय सुरपुष्पवृष्टि–सत्प्रातिहार्य–मण्डिताय सुरपुष्पवृष्टि – सत्प्रातिहार्य शोभनपदप्रदाय भ्म्ल्व्र्यूं – बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय दिव्यध्वनिसत्प्रातिहार्य–मण्डिताय दिव्यध्वनि–सत्प्रातिहार्य शोभनपदप्रदाय म्म्ल्व्र्यूं–बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय चामरोज्ज्वलसत्प्रातिहार्य–मण्डिताय चामरोज्ज्वल – सत्प्रातिहार्य शोभनपदप्रदाय र्म्ल्व्र्यूं – बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय सिंहासनसत्प्रातिहार्य – मण्डिताय सिंहासन – सत्प्रातिहार्य शोभनपदप्रदाय घ्म्ल्व्र्यूं–बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय भामण्डलसत्प्रातिहार्य–मण्डिताय भामण्डल–सत्प्रातिहार्य शोभनपदप्रदाय झ्म्ल्व्र्यूं–बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय दुन्दुभिसत्प्रातिहार्य–मण्डिताय दुन्दुभि–सत्प्रातिहार्य शोभनपदप्रदाय स्म्ल्व्र्यूं–बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय छत्रत्रयसत्प्रातिहार्य–मण्डिताय छत्रत्रय–सत्प्रातिहार्य – शोभनपदप्रदाय ख्म्ल्व्र्यूं–बीजाय सर्वोपद्रवशान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथाय प्रातिहार्याष्टसहिताय बीजाष्टमण्डन – मण्डिताय सर्वविघ्नशान्तिकराय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो जिणाणं सर्व शान्तिर्भवतु।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहि जिणाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहि जिणाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहि जिणाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहि जिणाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो कोट्ठ बुद्धीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीज बुद्धीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो पदाणुसारीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो संभिण्ण सोदारणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयं बुद्धाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेय बुद्धाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो बोहिय बुद्धाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो उजुमदीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दस पुव्वीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठंगमहाणिमित्त कुसलाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउव्वइड्ढि पत्ताणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्णसमणाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्त तवाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्त तवाणं सर्व शान्तिर्भवतु।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो महा तवाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर तवाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर गुणाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर परक्कमाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर गुणबंभयारीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आमोसहि पत्ताणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो खेल्लोसहि पत्ताणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहि पत्ताणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहि पत्ताणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहि पत्ताणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणबलीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचिबलीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायबलीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पि सवीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुर सवीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमियसवीणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीण महाणसाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सिद्धायदणाणं सर्व शान्तिर्भवतु।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो भयवदो महदि महावीर वढ्ढमाण-बुद्ध-रिसीणो चेदि।

जस्संतियं धम्मपहं णियंच्छे, तस्संतियं वेणइयं पउं जे।
काएण वाचा मणसा विणिच्चं, सक्कारएतं सिरपंच-मेण।

तव भक्ति - प्रसादाद्लक्ष्मी - पुर - राज्य - गेह - पद - भ्रष्टोपद्रव - दारिद्रोद् भवोपद्रव - स्वचक्र - परचक्रोद्भवोपद्रव -

प्रचण्ड - पवनानल जलोद्भवोपद्रव - शाकिनी - डाकिनी - भूत- पिशाच- कृतोपद्रव - दुर्भिक्षव्यापार - वृद्धिरहितोपद्रवाणां विनाशनं भवतु।

श्री शान्तिरस्तु। शिवमस्तु। जयोऽस्तु। नित्यमारोग्यमस्तु। श्रेष्ठी श्री. ....सर्वेषां पुष्टिरस्तु। सृष्टिरस्तु। समृद्धिरस्तु। कल्याणमस्तु। सुखमस्तु। अभिवृद्धिरस्तु। कुल-गोत्र-धन-धान्यं सदास्तु। श्री सद्धर्म बलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सम्पूर्णकल्याणं मंगलरूप-मोक्ष-पुरुषार्थश्च भवतु।

प्रध्वस्त-घातिकर्माणः केवलज्ञान-भास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिः वृषभाद्यः जिनेश्वराः॥

(उपजाति छन्द)

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्रसामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥

॥इति शांतिधारा॥

जो जिणिंद-गुण-लीणो, जिणं झायदे तिजोग सुद्धीए।
थोग-भवेसु लहदे, सिद्धोव्व सयलप्प-गुणा सो॥

–(*767/समवसरण-सोहा, आ. वसुनंदी मुनि*)

जिनेन्द्र प्रभु के गुण में लीन जो भव्य तीन योग की शुद्धि से जिनेन्द्र प्रभु का ध्यान करता है वह स्तोक भवों में सिद्धों के समान सकल आत्मगुणों को प्राप्त करता है।

विनय पाठ

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ॥१॥

अनन्त चतुष्टय के धनी, तुमही हो सिरताज।
मुक्ति वधू के कंत तुम, तीन भुवन के राज॥२॥

तिहुँ जग की पीड़ाहरन, भवदधि शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिवसुख के करतार॥३॥

हरता अघ अंधियार के, करता धर्म प्रकाश।
थिरता पद दातार हो, धरता निजगुण रास॥४॥

धर्मामृत उर जलधिसों, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण सरोज को, नावत तिहुँ जग भूप॥५॥

मैं वन्दों जिनदेव को, कर अति निर्मल भाव।
कर्मबन्ध के छेदने, और न कछु उपाव॥६॥

भविजन को भवकूपतैं, तुमही काढ़नहार।
दीनदयाल अनाथपति, आतम गुण-भण्डार॥७॥

चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिवगैल॥८॥

तुम पदपंकज पूजतैं, विघ्न रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरै, विष निरविषता थाय॥९॥

चक्री खगधर इन्द्रपद, मिलें आपतैं आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप॥१०॥

तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म-जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन॥११॥

पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे प्रभु, जय जय जय जिनदेव॥१२॥

थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेव।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव॥१३॥

राग सहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेंट्यो अबै, मेटो राग-कुटेव॥१४॥

कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यञ्च अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान॥१५॥

तुमको पूजैं सुरपति, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव॥१६॥

अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भवसिन्धु में, खेव लगाओ पार॥१७॥

इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारि कै, कीजे आप समान॥१८॥

तुमरी नेक सुदृष्टि तैं, जग उतरत है पार।
हा! हा! डूबो जात हौं, नेक निहार निकार॥१९॥

जो मैं कहहूँ और सौं, तो न मिटै उर भार।
मेरी तो तोसौं बनी, तातैं करौं पुकार॥२०॥

वन्दों पाँचों परमगुरु, सुर गुरु वन्दत जास।
विघनहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश॥२१॥

चौबीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यो पाठ सुखदाय॥२२॥

मंगल पाठ

मंगल मूर्ति परम पद, पंच धरो नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान॥१॥
मंगल जिनवर पद नमों, मंगल अर्हंत देव।
मंगलकारी सिद्ध पद, सो वंदूँ स्वयमेव॥२॥
मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरु उवझाय।
सर्व साधु मंगल करो, वंदूँ मन वच काय॥३॥
मंगल सरस्वती मात का, मंगल जिनवर धर्म।
मंगलमय मंगल करो, हरो असाता कर्म॥४॥
या विधि मंगल से सदा, जग में मंगल होत।
मंगल 'नाथूराम' यह, भव सागर दृढ़ पोत॥५॥

॥ इति मंगल पाठ ॥

णियड भव्वो हि सक्को, कुणिदं सस्सद-सिद्ध-खेत्त-जत्तं।
झायिदुं समवसरणं, मुणीणं च देदुमाहार॥758॥
–(*समवसरण सोहा, आ. वसुनंदी मुनि*)

शाश्वत सिद्ध क्षेत्र की यात्रा, समवशरण का ध्यान और मुनियों को आहार दान देने में निकट भव्य ही समर्थ होते हैं।

सण्णाणं हरदि दुहं, विणस्सदि णियमेण रायद्दोसं।
संवेअ-वेरग्गाण, जिणभत्ति कारणं पमुक्खं॥213॥
–(*आत्म वैभव-आ. वसुनंदी मुनि*)

सम्यग्ज्ञान दुःख नष्ट करता है, नियम से राग-द्वेष विनष्ट करता है और यह सम्यग्ज्ञान संवेग, वैराग्य व जिनभक्ति का प्रमुख कारण है।

पूजन-पीठिका

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥१॥

ॐ ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः (पुष्पाञ्जलि क्षेपण करें)

चत्तारि मंगलं अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवललिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि।
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि॥

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा। (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंच - नमस्कारं, सर्व पापैः प्रमुच्यते॥१॥
अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स, बाह्याभ्यंतरे शुचिः॥२॥
अपराजित - मंत्रोऽयं, सर्व - विघ्न - विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः॥३॥
एसो पंच-णमोयारो, सव्व-पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं॥४॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म - वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणमाम्यहम्।।५।।
कर्माष्टक विनिर्मुक्तं, मोक्ष लक्ष्मी निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।६।।
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे।।७।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

पंचकल्याणक का अर्घ्य

उदक - चंदन - तंदुल - पुष्पकैश्चरु - सुदीप - सुधूप - फलार्घकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिनगृहे कल्याणमहं यजे।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीभगवतो गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-निर्वाण पंचकल्याणकेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचपरमेष्ठी का अर्घ्य

उदक - चंदन - तंदुल - पुष्पकैश्चरु - सुदीप - सुधूप - फलार्घकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाथमहं यजे।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हंत-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनसहस्त्रनाम का अर्घ्य

उदक चंदन तंदुल पुष्पकैश्चरु सुदीप सुधूप फलार्घकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाममहं यजे।।३।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनअष्टाधिक-सहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी का अर्घ्य

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्धकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिनगृहे जिनवांङ्महं यजे॥४॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्‌भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्जिनेंद्र-मभिवंद्य जगत्त्रयेशम्,
स्याद्वाद - नायक - मनंत - चतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसंघ - सुदृशां सुकृतैकहेतुर्,
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि॥१॥
स्वस्ति त्रिलोक - गुरवे जिन - पुंगवाय,
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश - सहजोर्ज्जित - दृङ् मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्‌भुत-वैभवाय॥2॥
स्वस्त्युच्छल-द्विमल-बोध-सुधा-प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव - परभाव - विभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोक - विततैक - चिदुद्‌गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय॥३॥
द्रव्यस्य शुद्धि - मधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धि मधिकामधिगंतुकामः।
आलंबनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ - यज्ञ - पुरुषस्य करोमि यज्ञं॥४॥

अर्हन् पुराण पुरुषोत्तम पावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन्ज्वल - द्विमल - केवल - बोधवह्नौ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि॥५॥

ॐ विधियज्ञ प्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

स्वस्ति-मंगल पाठ

श्री वृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः।
श्रीसम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनंदनः॥
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः॥
श्रीपुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्रीश्रेयांसः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः॥
श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनंतः।
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः॥
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः॥
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः॥

(इति जिनेन्द्र स्वस्तिमंगलविधानं
पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

परमर्षि स्वस्ति मंगल विधान

(प्रत्येक श्लोक के अंत में पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये)

नित्याप्रकम्पाद्भुत - केवलौघाः, स्फुरन्मनः पर्यय - शुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञान - बलप्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥१॥

कोष्ठस्थ - धान्योपममेकबीजं, संभिन्न - संश्रोतृ - पदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥२॥

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन - घ्राण - विलोकनानि।
दिव्यान् मतिज्ञान - बलाद्वहंतः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥३॥

प्रज्ञा - प्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टांग-निमित्त-विज्ञाः,स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥४॥

जंङ्घावलि-श्रेणि-फलांबु-तंतु-प्रसून-बीजांकुर-चारणाह्वाः।
नभोऽङ्गगण-स्वैर-विहारिणश्च,स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥५॥

अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि, लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥६॥

सकामरूपित्व - वशित्वमैश्यं, प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥७॥

दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं, घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोर-गुणाश्चरन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥८॥

आमर्ष - सर्वौषधयस्तथाशी - र्विषाविषा दृष्टिविषाविषाश्च।
सखिल्ल-विड्जल्ल-मलौषधीशाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥९॥

क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतो, मधु स्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः।
अक्षीणसंवास-महानसाश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥१०॥

॥ इति परमर्षिस्वस्तिमंगल-विधानं पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

नवदेवता पूजन

– आ. वसुनंदी मुनि

स्थापना

(छंद–हरिगीतिका) (तर्ज–मैं देव श्री अरिहंत...)

त्रैलोक्य में तिहुँ काल में नवदेवता जग वंदिता।
अरिहंत सिद्धा सूरि पाठक, साधु मुनिवर नंदिता।।
जिन चैत्य अरु जिन सदन श्रुत जिन धर्म कल्याणक महा।
आश्रित रहे जो भव्य इनके, मोक्ष उनने ही लहा।।

दोहा

नवदेवों को भक्ति वश, आह्वानन कर आज।
योगत्रय से पूजकर, लहूँ उभय साम्राज।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु–जिनधर्म–जिनागम–जिनचैत्य–चैत्यालय समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु–जिनधर्म–जिनागम–जिनचैत्य–जिनचैत्यालय समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु–जिनधर्म–जिनागम–जिनचैत्य–जिनचैत्यालय समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम्।

अष्टक

(छंद–हरिगीतिका)

पूर्णेन्दु निर्मल ज्योत्सना सम, धवल शीतल नीर ले,
जन्मादि रोगत्रय विनाशूँ, देव पद त्रयधार दे।

संसार नव विधि नाश करने, कोटि नव से मैं जजूँ,
पाने विभव निज चेतना का, देवता नव नित भजूँ॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु–जिनधर्म–जिनागम–जिनचैत्य – जिनचैत्यालयेभ्यो जन्म – जरा – मृत्यु – विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल सुगंधित मलयगिरि तन–ताप हारक चंदनं,
नव देवता के चरण आगे, भक्ति पूजा वंदनं।
संसार नव विधि नाश करने, कोटि नव से मैं जजूँ,
पाने विभव निज चेतना का, देवता नव नित भजूँ॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु–जिनधर्म–जिनागम–जिनचैत्य–जिनचैत्यालयेभ्यः संसारताप–विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्तासमा अति धवल द्युतिमय, चारु तंदुल लाय के,
शाश्वत विमल शिवसौख्य पाने, देव चरण चढ़ाय के।
संसार नव विधि नाश करने, कोटि नव से मैं जजूँ,
पाने विभव निज चेतना का, देवता नव नित भजूँ॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु–जिनधर्म–जिनागम–जिनचैत्य–जिनचैत्यालयेभ्योऽक्षयपद–प्राप्तयेऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

वातावरण कर दे सुगंधित, पुष्प मनहर लाए हैं,
निष्काम जिन को कर समर्पित, काम नशने आये हैं।
संसार नव विधि नाश करने, कोटि नव से मैं जजूँ,
पाने विभव निज चेतना का, देवता नव नित भजूँ॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु–जिनधर्म–जिनागम–जिनचैत्य–जिनचैत्यालयेभ्यः कामबाण–विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

व्यंजन अनूपम सरस रुचिकर, देह की क्षुध नाशती,
आराध्य की पूजा करें तो, चेतना निधि भासती।
संसार नव विधि नाश करने, कोटि नव से मैं जजूँ,
पाने विभव निज चेतना का, देवता नव नित भजूँ।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-जिनचैत्यालयेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ गगन आँगन में चमकते, ज्योति ग्रह सम दीप हैं,
विधि मोहनी के नाश हेतू, आये आप समीप हैं।
संसार नव विधि नाश करने, कोटि नव से मैं जजूँ,
पाने विभव निज चेतना का, देवता नव नित भजूँ।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-जिनचैत्यालयेभ्यो मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दश गंध युत ये धूप मनहर, वर्गणा दुख नाशती,
जिन चरण आगे धूप खेऊँ, आत्मनिधि परकाशती।
संसार नव विधि नाश करने, कोटि नव से मैं जजूँ,
पाने विभव निज चेतना का, देवता नव नित भजूँ।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-जिनचैत्यालयेभ्योऽष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ मोक्ष फल को प्राप्त करने, भक्तिवश अर्पण किये,
मम अक्ष रुचिकर सरस मनहर, फल सभी ऋतु के लिये।
संसार नव विधि नाश करने, कोटि नव से मैं जजूँ,
पाने विभव निज चेतना का, देवता नव नित भजूँ।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-जिनचैत्यालयेभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

संसार की बहुमूल्य मंगल, अर्घ द्रव्यों का बना,
बहुमूल्य शिवपद पाने हेतु, भक्तिरस में मैं सना।
संसार नव विधि नाश करने, कोटि नव से मैं जजूँ,
पाने विभव निज चेतना का, देवता नव नित भजूँ।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-जिनचैत्यालयेभ्योऽनर्घपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जाप्य–ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधु- जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-जिनचैत्यालयेभ्यो नमः।

(नौ बार उक्त मंत्र पढ़कर पुष्प क्षेपण करें)

जयमाला

(छंद-लक्ष्मीधरा)

(तर्ज-भौन बावन्न प्रतिमा.../कौन कहता है भगवान् आते नहीं...)

देव सर्वज्ञ प्राणी सदा मंगलं, नंत ज्ञानं सुखं दर्श नंतं बलं।
प्रातिहार्यं युतं वीतरागं वरं, पूजता भक्ति से देव सौख्यं करं।।१।।

सिद्ध शुद्धं शिवं निर्विकारं तथा, अव्ययं अक्षयं आत्मलीनं सदा।
विश्वनाथं प्रभो मुक्तिवामा वरं, पूजता भक्ति से देव सौख्यं करं।।२।।

दर्श औ ज्ञान चारित्र संपोषकं, संघ संचालकं सूरि आराधकं।
पंच आचार पाले जिनं नंदनं, पूजता भक्ति से देव सौख्यं करं।।३।।

हे उपाध्याय सुज्ञान दातार हो, भव्य के वासते सम्यकाधार हो।
साधकं द्वादशांगं सुपाठी वरं, पूजता भक्ति से देव सौख्यं करं।।४।।

राग द्वेषादि को साधु संहारते, देव निर्ग्रंथ जो आत्म सम्हारते।
पालते हैं गुणं साधु मूलोत्तरं, पूजता भक्ति से देव सौख्यं करं।।५।।

भेद दो श्रावका और साधू कहा, तारता धर्म संसार से है अहा।
चिह्न स्याद्वाद से युक्त धर्मं वरं, पूजता भक्ति से देव सौख्यं करं।।६।।

देव सर्वज्ञ द्वारा गयी है कही, गूंथते हैं गणेशा मुनी ने गही।
शारदा माँ सदा चित्त में ही धरं, पूजता भक्ति से देव सौख्यं करं।।७।।

सौख्य है निर्विकारी तथा शांत है, भक्ति से होय वे मुक्ति के कांत हैं।
कृत्रिमाकृत्रिमं चैत्य सिद्धीवरं, पूजता भक्ति से देव सौख्यं करं।।८।।

तोरणा-द्वार घंटा ध्वजा सज्जिता, देव प्रक्षाल पूजा सदा अर्चिता।
शुभ्र चैत्यालयं पाप संहारकं, पूजता भक्ति से देव सौख्यं करं।।९।।

छंद-त्रिभंगी

अरिहंत जिनेशा, सिद्ध महेशा, सूरी पाठक दिग्वासी।
श्रीचैत्य जिनालय, श्रुत ज्ञानालय, धर्म पूजता अविनाशी।।
वसु कर्म नशाए, वसुगुण पाए, वसु वसुधा को नित्य लहे।
वसुभूमि सभा की, सिद्ध रमा की, वसुनन्दी भी शीघ्र गहे।।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-जिनचैत्यालयेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

अर्हतादि नवदेवता, सदा करें उर वास।
पुष्पाञ्जली चढ़ाय के, पाऊँ मोक्ष निवास।।

(शान्तये... शांतिधारा पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

नंदीश्वरद्वीप समुच्चय पूजन

अथ स्थापना

(तर्ज–अनादिकाल से....)

नंदीश्वर शुभ दीप आठवाँ, बिंब अकृत्रिम अति शोभित।
चतुर्निकाय के देव जजें, अष्टाह्न पर्व में हो मोहित॥
रत्नमयी जिनबिम्ब सुपावन, भव्यों के मन को हरते।
पूजक पूज्य बनें पूजा से, क्रमशः मुक्ति रमा वरते॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीप–संबंधि–द्विपंचाशत्–जिनालयस्थ–जिनबिंब समूह। अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीप संबंधि–द्विपंचाशत्–जिनालयस्थ–जिनबिंब–समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीप–संबंधि–द्विपंचाशत्–जिनालयस्थ–जिनबिंब–समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(अथ अष्टक)

निर्मल नीर चढ़ाकर तुमको, अघ प्रक्षालन भव्य करें।
जन्म–जरा मृतु नाश करन को, तव पद धारा तीन धरें॥
नंदीश्वर शुभ द्वीप आठवाँ अष्टम गुण का दाता है।
सहज शुद्ध चैतन्य दशा को, पूजक निश्चित पाता है॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीप–संबंधि–द्विपंचाशत्–जिनालयस्थ–जिन–बिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

पाप ताप को शांत करे वो, शीतल चंदन सुखकारी।
नंदीश्वर की पूज रचाकर, बनूँ चित्त निर्मलधारी॥

नंदीश्वर शुभ द्वीप आठवाँ, अष्टम गुण का दाता है।
सहज शुद्ध चैतन्य दशा को, पूजक निश्चित पाता है॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीप-संबंधि-द्विपंचाशत्-जिनालयस्थ-जिन-बिम्बेभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ता सम अक्षत अति सुंदर, कनक थाल भर लाया हूँ।
अक्षय पद के प्राप्त करन को, भक्ति सहित चढ़ाया हूँ॥
नंदीश्वर शुभ द्वीप आठवाँ, अष्टम गुण का दाता है।
सहज शुद्ध चैतन्य दशा को, पूजक निश्चित पाता है॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीप-संबंधिद्विपंचाशत्-जिनालयस्थ-जिन-बिम्बेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरतरुओं के सुमन मनोहर, काम नाश हित लाए हैं।
नंदीश्वर की पूज रचा, उत्तम सुख पाने आए हैं॥
नंदीश्वर शुभ द्वीप आठवाँ, अष्टम गुण का दाता है।
सहज शुद्ध चैतन्य दशा को पूजक निश्चित पाता है॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीप-संबंधिद्विपंचाशत्-जिनालयस्थ-जिन-बिम्बेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

इष्ट मिष्ट स्वादिष्ट मनोहर, षट् पंचाशत व्यंजन हैं।
क्षुधा वेदनी नाश करे अरु, होता चित अनुरंजन है॥
नंदीश्वर शुभ द्वीप आठवाँ, अष्टम गुण का दाता है।
सहज शुद्ध चैतन्य दशा को, पूजक निश्चित पाता है॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीप-संबंधिद्विपंचाशत्-जिनालयस्थ-जिन-बिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गोघृत दीप जलाकर हम प्रभु, जिनपद अर्चन करते हैं।
मोह तिमिर के नाश करन को, तव पद दीपक धरते हैं।।
नंदीश्वर शुभ द्वीप आठवाँ, अष्टम गुण का दाता है।
सहज शुद्ध चैतन्य दशा को, पूजक निश्चित पाता है।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीप-संबंधिद्विपंचाशत्-जिनालयस्थ-जिन-बिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज चैतन्य गंध हम पाने, गंध दशांगी लाए हैं।
जिनबिंबों की पूज रचा निज, कर्म जलाने आए हैं।।
नंदीश्वर शुभ द्वीप आठवाँ, अष्टम गुण का दाता है।
सहज शुद्ध चैतन्य दशा को, पूजक निश्चित पाता है।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीप-संबंधिद्विपंचाशत्-जिनालयस्थ-जिन-बिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्ष मनोहर फल सुरभित सब, ऋतु के भरकर लाया हूँ।
मोक्ष महाफल पाने को मैं, श्री जिन चरण चढ़ाया हूँ।।
नंदीश्वर शुभ द्वीप आठवाँ अष्टम गुण का दाता है।
सहज शुद्ध चैतन्य दशा को पूजक निश्चित पाता है।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीप-संबंधिद्विपंचाशत्-जिनालयस्थ-जिन-बिम्बेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलफलादि वसु द्रव्य मिलाकर, वसु गुण पाने आए हैं।
वसु वसुधा को पाने नंदी, भव सुख को विसराए हैं।।
नंदीश्वर शुभ द्वीप आठवाँ, अष्टम गुण का दाता है।
सहज शुद्ध चैतन्य दशा को पूजक निश्चित पाता है।।

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीप-संबंधिद्विपंचाशत्-जिनालयस्थ-जिन-बिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

नंदीश्वर की वंदना, करें भक्तिवश भव्य।
भव सुख के भोक्ता बनें, लहे मुक्ति सुख नव्य।।

शांतये शांतिधारा।। दिव्य पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

जाप्य : ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपसंबंधि – द्विपंचाशत् – जिनालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो नमः।

समुच्चय जयमाला

(तर्ज–हे चन्द्रप्रभु तुम....)

शुभद्वीप आठवां नंदीश्वर, है अनुपम अद्भुत मनहारी।
अकृत्रिम जिनालय जहँ सोहे, बावन शाश्वत अतिशयकारी।।
पूरब दिश में अंजन पर्वत, इक श्याम वर्णी उत्तुंग कहा।
सहस चौरासी योजन ऊँचा, विस्तृत उतना गिरी अहा।।1।।

इक हजार योजन अवगाहन, भूमि के नीचे जानो।
मणि रत्न खचित अरु वज्रमयी, उनकी शुभ महिमा पहचानो।।
अंजनगिरि के चारों दिशि में, शुभ सजल वापिका चार कही।
टंकोत्कीर्ण शुभ नाम युक्त, भूमि जिनकी है वज्रमयी।।2।।

योजन इक लख समचतुष्कोण, है इक हजार योजन गहरी।
जलचर जीवों से रहित सदा, मनुरत्नमयी तट हों पहरी।।
प्रत्येक वापि के चार ओर चउदिश इक इक वन अभिराजित।
वन अशोक सप्तच्छद चंपक, आम्र विपिन क्रम से साजित।।3।।

इक लख योजन लंबे सुंदर, इसकी आधी चौड़ाई लिए।
सुर सुरांगनाओं को ये क्रीड़ा हेतु आकृष्ट किए।

चउ वापि मध्य दधिमुख हैं चार, शुभ धवल धवलता के द्योतक।
दस हजार योजन ऊँचे, इतने ही विस्तृत ऊपर तक॥4॥

प्रत्येक वापि बहि दो कोणों पर, रतिकर गिरि शुभ सुज्जित हैं।
स्वर्णमयी आभा लख जिनकी, ज्योतिष ग्रह भी लज्जित हैं॥
यूँ सुर सुरांगना को आकर्षित करने वाले वसु रतिकर।
इक हजार योजन ऊँचे, इतना ही विस्तृत है गिरिवर॥5॥

इक दिश में तेरह गिरिवर, जो ढोल सदृश आकार लिए।
इन पर तेरह ही जिनमंदिर, भवि चित को मोहित नित्य किये॥
ऐसे ही नंदीश्वर के चउदिश, पावन गिरिवर स्थित हैं।
बावन जिन चैत्यालय जिनपर शाश्वत शुभ नित्य परिमित हैं॥6॥

सौ योजन लंबे अरु पचास, योजन चौड़े जिनभवन महा।
पंचोत्तर सत्तर योजन ऊँचे रत्नमयी दिव्यता अहा॥
तीन मणिमयी कोटों से, जिनभवन चतुर्दिक घेरा है।
चउ गोपुर द्वारों से संयुत, मानो हरता भव फेरा है॥7॥

चारों दिश में शुभ वीथीचार, प्रत्येक में मानस्तंभ शुभा।
नव नव स्तूप भी शोभित हैं, रत्नों से मंडित हुए अहा॥
प्रथम भूमि वन चार वनों से चारों ओर सुशोभित है।
अशोक आदि वन कल्पवृक्षयुत, जिनसे भवि मन मोहित है॥8॥

चारों अरण्य के बीचों बीच, शुभ चैत्यतरुवर राजित हैं।
तीन कोट त्रय पीठ युक्त, यह रत्नमयी अति साजित है॥
वृक्ष मूल की चारों दिश के अर्हत् बिंब को नमन करें।
जिनवर भक्ति के प्रभाव से, पाप कर्म सब गमन करें॥9॥

द्वितीय ध्वज भूमि ध्वज सज्जित, जिनशासन महिमा गाती।
सिंह हाथी मयूर चंद्र चिह्नों से युत अति लहराती॥

वृषभ गरुड़ रवि चंद्र कमल, अरु हंस चिह्न से सजी हुयी।
प्रत्येक चिह्न की प्रतिदिश ही, ध्वज आठ एक सौ खड़ी हुयी॥10॥

प्रति मुख्य ध्वजा की इक सौ आठ ही लघु ध्वजाएँ शोभित होती।
प्रभु के यशगान सुना मानो, भव्यों के नित मन को मोहती॥
फिर मुख्य मही है चैत्यभूमि, जहाँ जिनगृह की महिमा न्यारी।
गर्भालय इक सौ आठ जिनेश्वर की प्रतिमा प्यारी-प्यारी॥11॥

अति वैभवयुत जिन प्रतिमाएँ, भव्यों का चित्त लुभाती हैं।
दर्शन करने वाले भवि का, भव सागर सदा सुखाती हैं॥
सिद्धार्थ चैत्य तरु स्तूप आदि युत, जिनगृह की शोभा अद्भुत।
अभिषेक वंदना मंडप युत, मोहे सुरगण को ही सचमुच॥12॥

नंदीश्वर के बावन जिनगृह, नित नित भक्ति से ध्याता हूँ।
प्रभु पूजन से उन जैसे ही, बनने की शक्ति पाता हूँ॥
कोटि कोटिशः नमन हमारा, देव सदा स्वीकार करो।
'वसुनंदी' वसु वसुधा पाए, वसु कर्मों की सब पीर हरो॥13॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपसंबंधी-द्विपंचाशत्-जिनालय-जिनबिंबेभ्यो नमः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नरेन्द्र छंद

नंदीश्वर शुभ द्वीप आठवाँ भव्यों का मन मोहे।
स्थित चैत्यालय में सुंदर, प्रतिमायें अति सोहे॥
जिनबिंबों की पूजरचाकर, प्रभु पद में रम जाऊँ।
वसु वसुधा को पाने हेतु, देव चरण नित ध्याऊँ॥

॥ इत्याशीर्वादः ॥

अर्घावली

श्री आदिनाथ भगवान

शुचि निर्मल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय।
दीप धूप फल अर्घ सु लेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय॥
श्रीआदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वच काय।
हे करुणानिधि! भव दुख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री अजितनाथ भगवान

जल चंदन अक्षत सुमना, चरु दीप धूप ले चरणा,
श्रीफल अर्घादि चढ़ाऊँ, नंतर अनर्घ पद पाऊँ।
हे अजितनाथ जिनराई, निज चेतन की निधि पाई,
हम आए शरण तिहारी, प्रभु राखो लाज हमारी।

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री चन्द्रप्रभ भगवान

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों॥
श्री चन्द्रनाथ दुति चन्द, चरनन चंद लगै।
मन-वच-तन जजत अमंद, आतमजोति जगै॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री शीतलनाथ भगवान

जल गन्ध अक्षत फूल चरु, दीपक सुधूप कही महा।
फल ल्याय सुन्दर अरघ कीन्हो, दोष सों वर्जित कहा॥
तुम नाथ शीतल करो शीतल, मोहि भव की ताप सौं।
मैं जजौं युग पद जोरि करि, मो काज सरसी आप सौं॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री वासुपूज्य भगवान

जलफल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति!, निकट धरों यह लाई॥
वासुपूज्य वसुपूज्य-तनुज पद, वासव सेवत आई।
बालब्रह्मचारी लखि जिन को, शिवतिय सनमुख धाई॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री शान्तिनाथ भगवान

वसु द्रव्य सँवारी, तुम ढिग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुणाधारी, यातै थारी शरनारी॥
श्री शान्ति-जिनेशं, नुत शक्रेशं, वृषचक्रेशं, चक्रेशं।
हनि अरि चक्रेशं, हे गुनधेशं, दयामृतेशं मक्रेशं॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान

जल-गंध आदि मिलाय आठों, दरब अरघ सजों वरों।
पूजौं चरन-रज भगति-जुत, जातैं जगत्-सागर तरों॥
शिव-साथ करत सनाथ सुव्रत, नाथ मुनि-गुनमाल हैं।
तसु चरन आनंदभरन तारन-तरन विरद विशाल है॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री नेमिनाथ भगवान

दाता मोच्छ के, श्रीनेमिनाथ जिनराय दाता...।
जल फल आदि साज शुचि लीने, आठों दरब मिलाय।
अष्टम छिति के राज करन को, जजों अंग वसु नाय॥
दाता मोच्छ के, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता...।

ॐ ह्रीं अर्हं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पार्श्वनाथ भगवान

नीर गन्ध अक्षतान पुष्प चारु लीजिये,
दीप-धूप-श्रीफलादि अर्घ तें जजीजिये।
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा,
दीजिये निवास मोक्ष, भूलिये नहीं कदा॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री महावीर भगवान

जल फल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरों।
गुण गाऊँ भवदधि तार, पूजत पाप हरों॥
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मति नायक को।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मतिदायक हो॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय चौबीसी का अर्घ्य

जल फल आठों सुचिसार, ताको अर्घ करौं।
तुमको अरपौं भवतार, भव तरि मोक्ष वरौं॥
चौबीसों श्रीजिनचंद, आनंदकंद सही।
पद जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री वृषभादि-वीरांत-चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी का अर्घ्य

जल चन्दन अक्षत फूल चरू, अरु दीप धूप अति फल लावै।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो सर 'द्यानत' सुख पावे॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञान मई।
सो जिनवर वानी, शिव सुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परम्पराचार्य अर्घ्यावली

चा.च. आचार्य श्री शांतिसागर जी का अर्घ्य

परम तपस्वी शांति सिंधु मुनि, पंचम युग में तीर्थ समान,
तीर्थंकर वत् कलिकाल में, जिनशासन का कर यशगान।
चक्रवती चारित्र शिरोमणि, भव्यों को सत्यार्थ प्रमाण,
तीन भक्ति युत अर्घ चढ़ाऊँ, पाने को समकित वरदान।।

ॐ ह्रूँ परम-पूज्य-चारित्र-चक्रवर्ती-आचार्य-भगवन् श्रीशांतिसागर-मुनीन्द्राय नमोऽनर्घ-पद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्य श्री पायसागर जी का अर्घ्य

भव तन भोग विरागी हे गुरु, ज्ञान ध्यान तप लीन महान,
विषय वासना अरु कषाय से, रिक्त चित्त जिनका अमलान।
पायसिन्धु को पाकर हम सब, शिवमग पावें विषय नशाय,
ऐसे उत्तम मुनिपद पंकज, अर्घ चढ़ाकर शीश नवाय।।

ॐ ह्रूँ परमपूज्य-परम-तपस्वी-आचार्य-भगवन्-श्रीपायसागर- मुनीन्द्राय अनर्घ-पद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्य श्री जयकीर्ति जी का अर्घ्य

अक्ष विजेता मन के जेता, सूरीवर जयकीर्ति प्रधान,
निर्विकल्प शुभ ध्यान पायकर, पाया निज आतम का ज्ञान।
भाव सहित गुरु भक्ति पूजा करती पाप कर्म की हान,
जल फलादि वसु अर्घ चढ़ाकर, पाएं हम भी उत्तम ज्ञान।।

ॐ ह्रूँ परमपूज्य-आध्यात्म-योगी-आचार्य-भगवन्-श्रीजयकीर्ति- मुनीन्द्राय अनर्घ-पद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्य श्री देशभूषण जी का अर्घ्य

मुनिराजों में आप प्रमुख हैं, सूरीवर जो कहलाते,
भारत गौरव जिनवृष सौरभ, मार्ग धर्म का बतलाते।
रत्नत्रय से आप विभूषित, गुरू देश भूषण स्वामी,
भक्ति सुयुत शुभ अर्घ चढ़ाकर, बन जाऊँ मैं निष्कामी।।

ॐ ह्रूँ परमपूज्य-भारतगौरव-आचार्य-भगवन्-श्रीदेशभूषण- मुनीन्द्राय अनर्घ-पद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प.पू. आचार्य श्री विद्यानंद जी का अर्घ्य

नीरादिक वसु द्रव्य मिलाकर, कंचन थाल भराये हैं,
निज आतम के वसु गुण पाने, तव पद आज चढ़ाये हैं।
राष्ट्रसंत विद्यानंद सूरि, प्राणीमात्र हितकारी हो,
सिद्ध-शास्त्र-आचार्य भक्ति युत, नित प्रति धोक हमारी हो।।

ॐ ह्रूँ परमपूज्य-सिद्धान्त-चक्रवर्ती-राष्ट्रसंत-श्वेतपिच्छाचार्य-श्री-विद्यानंद-मुनीन्द्राय अनर्घ-पद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्य परम्परा का समुच्चय अर्घ्य

(छंद-विष्णुपद) (तर्ज-कहाँ गए चक्री.../तेरी छत्रच्छाया ...)

चरित्र चक्रवर्ती सूरिवर शांति सिंधु स्वामी,
महातपस्वी पायसिंधु अरु जयकीर्ति नामी।
भारत गौरव देशसुभूषण सूरी गुणधामी,
गुरु सिद्धांत चक्री श्री विद्यानंद सुप्रणमामी।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित तप धारक जगनामी,
मोक्षमार्ग पर बढ़ें निरन्तर गुरु शिवपथगामी।
भाव सहित युगसृष्टा सूरीश्वर को चित ध्याऊँ,
नीरादिक वसुद्रव्य चढ़ाकर शिवपद पा जाऊँ।।

ॐ ह्रूँ परमपूज्य चारित्र - चक्रवर्ती - श्रीशांतिसागर - सूरये परमतपस्वी - श्रीपायसागर-सूरये, आध्यात्मयोगी-श्रीजयकीर्ति सूरये, भारतगौरव - श्रीदेशभूषण - सूरये, सिद्धान्तचक्रवर्ती - श्रीविद्यानन्द सूरये नमोऽनर्घ-पदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प.पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्रीवसुनंदी जी मुनिराज का अर्घ्य

जल-सा मन चंदन सी खुशबू, अक्षत पुष्प चरू ले आय,
दीप जलाकर धूप सुफल ले, अर्घ चढ़ाऊँ पद में जाय।
पावन वसुनंदी गुरुवर को, करता उर से अभिनंदन,
ऐसे गुरु के चरण कमल में, शत् शत् बार विनम्र नमन।।

ॐ ह्रूँ परमपूज्य-अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी-आचार्य-भगवन्-श्रीवसुनंदी-महामुनीन्द्राय अनर्घपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धचक्र पूजन अर्घ्यावली

प्रथम पूजा

(तर्ज–रोम–रोम से...)

नीरादिक वसु द्रव्य श्रेष्ठतम, सिद्ध चरण में लाया।
सिद्धों जैसे पावन वसु गुण, पाने मन ललचाया।।
विश्वश्रेष्ठ मैं अर्घ्य चढ़ाकर, पद अनर्घ्य शुभ पाने।
शाश्वत सिद्धी पाने भगवन्, आया तुमें मनाने।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धचक्राधिपतये श्रीसिद्ध–परमेष्ठिने नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वितीय पूजा

(तर्ज–दर्शविशुद्ध भावना भाय....)

नीरादिक वसु द्रव्य मिलाय, पद अनर्घ्य हितु अर्घ्य चढ़ाय।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान।।
सिद्धचक्र की पूज रचाय, अपने सारे पाप नशाय।
बनूँ गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभु भगवान्।।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुण–भुक्ताभुक्त श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽनर्घ्यपद–प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तृतीय पूजन

(तर्ज–हमको बुलाना हर साल....)

मूंगा वा पन्ना मिला अर्घ लाया।
सिद्धों का द्वारा सदा चित्त भाया।।
भक्ती से सिद्धार्चना जो रचाता।
स्वात्मा से पापादि को वो गलाता।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति–संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽनर्घ्यपद–प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्थ पूजन
(तर्ज- नरेन्द्रं फणेन्द्रं...)

मिला नीर आदी बना अर्घ्य है।
जजे पाय निर्वाण वा स्वर्ग है॥
महा सिद्ध अर्चा, करूँ भक्ति से,
गुणों को सुपाऊँ, मिलूँ मुक्ति से॥

ॐ ह्रीं ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽनर्घ्यपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचम पूजन
(तर्ज-वसु द्रव्य सँवारी....)

निज रूप भुलाकर, आत्म सुलाकर, पुण्य जलाकर, दुख झेला।
धरुँ अर्घ सुकारक, शिवमगधारक, कर्मविदारक, अलबेला॥
सिद्धों का अर्चन, जिन गुण चर्चन, पुनि पुनि वंदन, अविकारी।
बहु ताप नशावे, पाप मिटावे, शिवगृह जावे सुखकारी॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरण-मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽनर्घ्यपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षष्टम पूजन
(तर्ज-ये देश है वीर....)

संपूर्ण कर्म का कर भेदन, करते आतम का शुभ वेदन।
शुद्धात्म गुणों का कर सेवन, निज वैभव पावें शिव सा बन॥
नित सिद्धों का अर्चन करके, शुभ रतन थाल जिनपद धरके।
भक्ती के भाव सजा लाए, आँखों में अश्रू जल भर के॥

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽनर्घ्यपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तम पूजन

(तर्ज–चाँद सितारे फूल और....)

तीनों लोकों के रत्नों का, अच्छा सा अर्घ्य लाया।
मैं सिद्धों का हूँ दीवाना, श्री जी भक्ती को आया॥
भावों की शुद्धी से पूजा, श्री सिद्धों की कीनी है।
भक्ती में डूबा जाता सिद्धों की छाया लीनी है॥

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽनर्घ्यपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम पूजन

(तर्ज–कहाँ गये चक्री....)

उत्तम रतन मिलाकर हमने, अर्घ्य बनाया है।
पद अनर्घ्य अरु सिद्धक्षेत्र मन, मेरे भाया है॥
सिद्धक्षेत्र सिद्धों से शोभित, शाश्वत गुणधारी।
स्वयं सिद्ध पद पाने को नित, पूजूँ अविकारी॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ – सिद्धशिलोपरि – विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्योऽनर्घ्यपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुख-आनंद-समृद्धि

विज्जंति जत्थ खेत्ते, दियंबर-तवोधणा मुणी साहू।
णियमेण तत्थ खेत्ते, वट्टदि आणंद-सुह-संती॥148॥

–(*विस्स पुज्जो दियंबरो, आ. वसुनंदी मुनि*)

जिस क्षेत्र में तपोधन दिगम्बर मुनि साधु विद्यमान हैं उस क्षेत्र में नियम से आनंद, सुख और शांति वर्तन करती है।

श्री सिद्ध भक्ति (प्राकृत)

– (आ॰ वसुनंदी मुनि)

देहातीदे सिद्धे, अतीदे रसवण्णफासगंधादु।
पणविहसंसाररहिद - सिद्धे णमंसामि भत्तीइ॥1॥

संसारकारणादो, णाणावरणाइ - अट्ठ - कम्मादो।
विरहियाण सिद्धाणं - णमो णमो सुद्धभावेहिं॥2॥

रायद्देसमोहाइ - भावकम्मादु हीणाण सुद्धाण।
णिम्मलभावजुदाणं, णमो सया सव्वसिद्धाणं॥3॥

अग्गिणा सुतविदसुद्ध - कणयपासाणंव सोयिदा जेहि।
तवेण णियप्पा ताण, सव्व सिद्धा णमंसामि सय॥4॥

सम्मत्तणाणचरित्त - रूव - सिवमग्गे जेहिं गच्छित्ता।
लहिदा सस्सदसिद्धी, णमो ताण सव्व-सिद्धाणं॥5॥

चित्ते उप्पज्जमाण - उत्तमखमाइ - भावेहिं णिच्चं॥
जेहिं लहिदा सिद्धी, णमो सया ताण सिद्धाणं॥6॥

धम्मज्झाणेणं पुण, सुक्कज्झाणरूवसमत्थत्थेण।
कम्मसत्तुविजेदू हु, सव्वविसुद्ध - सिद्धा णमामि॥7॥

कोह-माण-जिम्ह-लोह - कसायभावादो हीणा अयला।
अण्णकसायवज्जिदा, पणमामि णिरंजणासिद्धा॥8॥

खओवसमिग-ओदइय-उवसमिग-भावादु रहिदा णिच्चा।
खइयभावसहिदा चिय, सव्वसिद्धा णमंसामि हं॥9॥

सम्मत्त - णाण - दंसण - वीरिय - सुहुमत्तवगाहणत्तेहिं।
अगुरुलहु - अव्वाबाह - गुणजुत्ता पणमामि सिद्धा॥10॥

बावण्णप्पइडिणूण - बेसयप्पइडिविहीणा सिद्धा य।
अंतातीदगुणजुदा, णमंसामि णिरुवमा सिद्धा॥11॥

णिक्कम्मा चिय पणविह - संसारहीणा देहविहीणा हु।
गमणागमणविहीणा, जम्ममरणविहीणा वंदे॥12॥

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तीए काउसग्गं कडुअ भत्तिजणिददोसा आलोयमि। दव्वभावणोकम्महीणे सम्मत्ताइ-अट्ठ-मूलगुणजुत्ते अणंतोत्तरपज्जायसहिदे, लोयग्गठिदे सव्वसिद्धे सया णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

धर्ममूर्ति

दह-दिसा जस्स वत्थं, णहोव्व णिव्वियारी अप्पदेहो।
रयणत्तयं सरीरं, दियंबरो धम्म-मुत्ती सो॥119॥

–(*विस्स पुज्जो दियंबरो, आ. वसुनंदी मुनि*)

दस दिशा जिसके वस्त्र हैं, नभ के समान निर्विकारी जिसकी आत्मा रूपी देह है, रत्नत्रय जिसका शरीर है वे धर्म मूर्ति दिगम्बर साधु हैं।

"सुविहा सया दुविहा-हेदु।"

–(*विस्स पुज्जो दियंबरो, आ. वसुनंदी मुनि*)

सुविधा सदा दुविधा का हेतु है।

श्री चैत्य भक्ति

अणाइयालीणसत्तु - हंतूणि अरिहंतबिंबाणि सया।
णमंसामि भत्तीए, अरिहावत्था - कारगाणि दु॥1॥
विज्जमाणाण अमुत्तिग - सिद्धाण मुत्तीणं सिद्धलोयम्मि।
भत्ती थुदी णियमेण, कम्मादो मुत्तिकारणं दु॥2॥
पडिमा साहूणं वि, सुहासव - कारणं परंपरेणं।
संवर - णिज्जराणं च, मोक्खस्स हेदू णमो ताण॥3॥
तिभत्तीए तियाले, तिजोगेहि वंददि भव्वुल्लो जो।
लहदि रयणत्तयं सो, णासदि जम्मं जरं मिच्चुं॥4॥
भवणवासि - भवणेसु, बेसत्ततिलक्खाहियट्ठकोडी।
जिणचेइयालयाइं, वंदे सपरमप्पपत्तीइ॥5॥
छसत्ततिलक्खसमहिद - अट्ठसदतेतीसकोडी णिच्चं।
णमंसामि जिणपडिमा, वीयरत्तस्स हु लद्धीए॥6॥
मज्झलोयम्मि चउसद-अट्ठावण्ण-अकिट्टिम-जिणगिहाणि।
भवब्भमण णासगाणि, भत्तीए णमंसामि सया॥7॥
इगूणदालिसहस्सा, समहिद - चउसया चउसट्ठी सया।
रयणमयी जिणपडिमा, वंदामि सभवं णासेदुं॥8॥
अहलोए मज्झे वा, वितंरभवणभवणपुरावासेसु।
ठिद - असंख - जिणघर - जिणबिंबाणि परियंदामि सया॥9॥
असंख - जोदिस - गहेसु, विज्जंति असंखचेइयालयाणि।
तत्थ ठिद-जिणबिंबाणि, किलेस-विणासगाणि णमामि॥10॥
उड्ढलोए ठिद - देव - विमाणेसु विज्जमाणाणि णिच्चं।
परियंदामि सव्वाणि, चेइआणि चेइयालयाणि॥11॥
अघहर-णिम्मल-सस्सद - जिणबिंबाइं जिणत्त - कारणं च।

जो को वि ताणि णमामि, सो खयदि तिव्वाहकम्माणि॥12॥
चुलसीदि - लक्खा सत्त - णउदिसहस्सा तेवीसा णिच्चं।
उड्ढलोयम्मि सस्सद - जिणभवण - बिंबाणि पणमामि॥13॥
पत्तेयं जिणभवणे, अट्ठोत्तर - सद - णिच्च - बिंबाणि।
वंदणीयाणि सुरेहि, पणमामि भत्ति - अणुरागेण॥14॥
पत्तेयं जिणबिंबं, अट्ठपाडिहेरजुदं णिद्दोसं।
कम्मकलंकणासगं, णमामि पुण पुण थुदिं किच्चा॥15॥
एगणउदि - कोडी छसत्ततिलक्ख अडसत्ततिसहस्सा।
चउसद - चुलसीदी जिण - पडिमा उड्ढस्स णमंसामि॥16॥
आयंसरूव - णियपरमप्प - लद्धीइ जिणबिंबायंसा।
जिणबिंब - दंसणेणं, विणा णेव होदि परमप्पा॥17॥
लोयम्मि विज्जंत - जिणचेइय - चेइयालयाणि णियमेण।
सुह - सम्मत्ताइ - अप्पगुणाण उप्पत्तीइ हेदू॥18॥
जेहि भव्वेहि वंदिय, किट्टिम - चेइय चेइयालयाइं।
मोक्खो लहिदो ताणं, णमो सया सुद्धभावेहिं॥19॥

जं जं अत्थं पस्सदि, तस्स भावा वि होंति तस्स रूवा।
वीयरायं पस्सित्तु, भवी लहदि वीयरायत्तं॥20॥
मुत्तिं चित्तं पस्सित्तु, जह बालो सिक्खेदि सहजदाए।
तह जिणमुद्दं भव्वो, फुडदि वीयरायत्तमप्पे॥21॥

इच्छामि भंते! चेइयभत्तीए काउसग्गं कडुअ भत्ति - जणिददोसं आलोयेमि तिलोए ठिद किट्टिमाकिट्टिमाणि सव्वजिणचेइय-चेइयालयाणि सव्वदेवेहि पुज्जणीयाणि। चउविहदेवा दिव्वजल-चंदणाइ-अट्ठदव्वेहि ताणि अच्चंति पुज्जंति वंदंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं ताणि अइसद्धा-भत्ति भावेहि सया णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

पंच महागुरु भक्ति

सव्वण्हू गदरायी, गयदोसी वीयमोह - अवियारी।
णाणावरणविहीणा, सुह-णाणणंत - जुदा वंदे॥1॥
दंसणावरणस्स णव-पइडि-विणासगा दु जिणदेवा जे।
अणंतदिट्ठि - संजुदा, ते सव्वदंसी णमंसामि॥2॥
पणविहाणि दाणलाह - भोयुवभोयवीरियंतरायाणि।
जेहि णासिदाणि ताण, णवखयियलद्धिजुदाण णमो॥३॥
चउघाइकम्मरहिया, अणंतणाणदंसणसुहबलेहिं।
संजुदा विज्जमाणा, समवसरणम्मि दु परियंदामि॥4॥
जेहिं अट्ठकम्माणि, णासिदाणि सुक्कज्झाणबलेणं।
सुद्धप्पे अट्ठगुणा, फुडिदा सिद्धा पणमामि हं॥5॥
घाइ-अघाइ-विहीदो, जीवविवागि- आइ-चउविहादो य।
विमुक्का लोयसिहरे, णिवासी अच्चेमि भत्तीइ॥6॥
दव्वभावकम्माइं, णासिदाइं झाणग्गिणा जेहिं।
ताण सुद्ध - सिद्धाणं, णमो सिवसुंदरिकंताणं॥7॥
जस्स झाणं सिमरणं, चिंतणं अप्पविसुद्धिकारणं च।
अघक्खय - हेदू ताण, वंदे णियलपरमप्पाणं॥8॥
सद्दंसण - णाण - चरिय - वीरिय - तवायारेहि संजुत्ता।
सिस्साण धम्म - जणगा, आइरिया णमामि भत्तीइ॥9॥
छत्तीसमूलगुणजुद - सूरी संगहणिग्गहकुसला।
धीर - वीर - गंभीरा, धम्मपवट्टगसूरी थुवमि॥10॥
कुसल - णायगा चउविह - संघस्स धम्माहारा पणमामि।
रयणत्तयस्स रुक्खा, सिवफलदायगा सूरिणो य॥11॥
अस्सिं पंचमयाले, तित्थयरोव्व भरहाइ - खेत्तेसुं।
धम्मरह - संवाहगा, धम्माइरिया परियंदामि॥12॥

जे रयणत्तय - जुत्ता - पढणे पाढणे सया संलीणा।
जिणागम-सायरम्मि हु, पाढगा सया अवगाहंति॥13॥
अहण्णिस - मायाराइ - बेदहंग - लीणा सुद्धचित्तेण।
णाणमुत्ती पाढगा, केवलं लहिदुं णमंसामि॥14॥
एगमतं पयासेदुं, अक्कोव्व परमतं खंडिदु-मसीव।
चक्कीव पराजिदु - मण्णाणणिवं सुणयसेणाए॥15॥
जहाजाद - णिग्गंथा, सगसरूवे लीणा वयणकुसला।
णाणावरणं खयिदुं, णमामि तिसंझासु भत्तीइ॥16॥
विसयकसायं समिदुं, अहण्णिसं सुद्धभावसंजुत्ता।
आरंभ - संग हीणा, णिच्चं पणमामि णिग्गंथा॥17॥
सम्मत्त - सण्णाणेहि, वच्छल - वेरग्ग - भाव - संजुत्ता।
संजमे तवे णिउणा, सुद्धप्पझाणरदा वंदे॥18॥
वंदे पंचमहव्वय - समिदि - गुत्तीहि जुद- विसुद्धा।
अट्ठवीसगुणजुत्ता, चउतीसुत्तरगुणधारगा॥19॥
अप्पहिये आसत्ता, परहिय-भाव - जुत्ता सिवकंखी य।
सया लोयमंगल्ला, सगहिदाय पणमामि समणा॥20॥
जो को वि पडिदिवसम्मि, पढदि पणगुरुभत्तिं विसुद्धीइ।
परावट्टणं खयित्तु, पावेदि पंचमगदिणाणं॥21॥

इच्छामि भंते! पंचमहागुरुभत्तीए काउसग्गं कडुअ भत्ति- जणिददोसं आलोयेमि सव्वघाइकम्मविरहिदाणं, अणंतचउक्कसंजुदाणं, अट्ठपाडिहेर-जुत्ताणं, सव्व-अरिहंताणं, तिविहकम्मविहीणाण, लोयसिहरे ठिदाणं, सम्मत्ताइअट्ठगुणसंजुदाणं, सव्वसिद्धाणं, पंचायारपालणं करिदुं कराविदुं कुसला सिस्साण संगहणिग्गहदक्खाण सव्वा-इरियाणं महासंमणाणं रयणत्तयरूवाणं धम्मदेसणाए कुसलाणं, सव्व-उवज्झायाणं, रयणत्तय-जुदाण जहाजादरूवधारगाणं, सव्वणिग्गंथ-रिसीणं सव्वदा णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिण-गुणसंपत्ति होउ मज्झं।

श्री अभिनव सिद्धचक्र महार्चना

मंगलाचरण

(छंद-शंभु) (तर्ज-हे गुरुवर शाश्वत.../हे वीर तुम्हारे द्वारे....)

केवल सुबोधि अवबोधक है, वर्णिक 'अकार' बीजाक्षर में।
पुनि रेफ दिखाती नंत दर्श, अरू वीर्यनंत 'ह' अक्षर में॥
शुभ अनुस्वार जो जुड़ा हुआ, है नंत सौख्य वह दर्शाता।
श्रीसिद्धचक्र शुभ यंत्र सु थित, ''अर्हं'' भव्यों के मन भाता॥

(दोहा)

सिद्ध चक्र जिन यंत्र को, थापूँ धर शुभ भाव।
सिद्ध चक्र अर्चन करूँ, पाने शुद्ध स्वभाव॥

(छंद-लक्ष्मीधरा) (तर्ज-भौन बावन्न.../कौन कहता है...)

र्हं सु प्राची दिशा सुस्वरा राजते,
दिव्यशक्ती युता सर्वदा साजते।
द्रव्य अष्टांग ले पूजता हूँ सदा,
भक्ति श्रद्धान से नाथ होके मुदा॥

ॐ ह्रीं अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लॄ ए ऐ ओ औ अं अः अनाहत-पराक्रमाय-सिद्धाधिपतये नमः पूर्वदिशि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अग्नि कोणे ''कवर्गा'' महा शोभता,
भव्य के चित्त को नित्य ही मोहता।
द्रव्य अष्टांग ले पूजता हूँ सदा,
भक्ति श्रद्धान से नाथ होके मुदा॥

ॐ ह्रीं अर्हं क ख ग घ ङ अनाहत–पराक्रमाय–सिद्धाधिपतये आग्नेयदिशि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुप्रसिद्धा अवाची ''चवर्गा'' कहे,
पूजके सिद्ध को सर्व कर्मा दहे।
द्रव्य अष्टांग ले पूजता हूँ सदा,
भक्ति श्रद्धान से नाथ होके मुदा।।

ॐ ह्रीं अर्हं च छ ज झ ञ अनाहत–पराक्रमाय–सिद्धाधिपतये दक्षिणदिशि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नैऋते कोण में हो ''टवर्गा'' महा,
पूज्यता प्राप्त हो पूजते ही अहा।
द्रव्य अष्टांग ले पूजता हूँ सदा,
भक्ति श्रद्धान से नाथ होके मुदा।।

ॐ ह्रीं अर्हं ट ठ ड ढ ण अनाहत–पराक्रमाय–सिद्धाधिपतये नैऋत्य दिशि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिग् प्रतीची ''तवर्गा'' प्रशस्तास्थिता,
सिद्ध पूजें भवी होय विश्वाजिता।
द्रव्य अष्टांग ले पूजता हूँ सदा,
भक्ति श्रद्धान से नाथ होके मुदा।।

ॐ ह्रीं अर्हं त थ द ध न अनाहत–पराक्रमाय–सिद्धाधिपतये पश्चिम दिशि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वायु कोणे ''पवर्गा'' प्रभावी महा,
भक्ति से पूजता स्वात्मवासी अहा।
द्रव्य अष्टांग ले पूजता हूँ सदा,
भक्ति श्रद्धान से नाथ होके मुदा।।

ॐ ह्रीं अर्हं प फ ब भ म अनाहत-पराक्रमाय-सिद्धाधिपतये वायव्यदिशि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिग् उदीची ''यवर्गा'' गुणावर्द्धका,
भव्य ही पूजते धर्म संवर्द्धका।
द्रव्य अष्टांग ले पूजता हूँ सदा,
भक्ति श्रद्धान से नाथ होके मुदा।।

ॐ ह्रीं अर्हं य र ल व अनाहत-पराक्रमाय-सिद्धाधिपतये उत्तरदिशि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कोण ईशान में है ''शवर्गा'' कहा,
सिद्ध अर्चा सदा पुण्य देती महा।
द्रव्य अष्टांग ले पूजता हूँ सदा,
भक्ति श्रद्धान से नाथ होके मुदा।।

ॐ ह्रीं अर्हं श ष स ह अनाहत-पराक्रमाय-सिद्धाधिपतये ईशानदिशि अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

''पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पाप शान्तये।''

(श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्र)

श्री जिनेन्द्र भगवान के 1008 नामों को पढ़ने से अनंतों पाप शान्त होते हैं।

अथ प्रथमकोष्ठोपरि दिव्य-मंगल-पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्॥

प्रथम पूजन

स्थापना

(छंद-हरिगीतिका) (तर्ज-मैं देव श्री अरिहंत....)

सम्यक्त्व आदिक गुण अनंता, सिद्ध चेतन राजते,
शाश्वत गुणों से खचित चिन्मय, लोक शिखर विराजते।
श्रीसिद्धपद के अग्रगामी, सिद्ध पद वंदन करें,
जिन वंदना के छल हि मानो, स्वात्म अभिनंदन करें॥1॥

माधुर्य ज्यों सुस्वभाव से ही, इक्षु दंडों में रहे,
सम्यक्त्व युत शुभ भक्ति की रसधार मम चित में बहे।
दिनकर समा शिव नित प्रकाशी, कर्म मल से हीन हो,
शुभ ज्योत्सना शशि सम सदा मम, चित्त तव गुण लीन हो॥2॥

जैसे सुमन में सुखद सौरभ, नंद संवर्द्धित करे,
त्यों सु-मन युत भवि मनुज को तव, नाम शुभ गुण से भरे।
बहु विघ्ननाशक कार्यसाधक, नाम तव विख्यात है,
जो भव्य चित में धारता होता निरोगी गात[1] है॥3॥

श्री नित्य निकल निरुज निरूपम, निर्विकारी शिव बने,
शाश्वत सकल गुण धाम चिन्मय, नंतगुणमय तुम सने।
निर्मोह निर्मल भक्ति युत शुभ, भव्य जो तव गुण गिने,
भवि स्तोक[2] भव पाकर वही फिर, शिव बने विधि को हने॥4॥

सब पापनाशक पुण्यदायक, मुक्तिकारक अर्चना,
त्रैयोग निर्मल नित्य करके, कर रहे शुभ वंदना।

1. शरीर, 2. अल्प

हे नाथ आत्मप्रदेश रूपी, काष्ठ संस्पर्शन करो,
पावक समा तव अर्चना शिवरूप पावन मम करो।।5।।

ज्यों पल रहे उन स्यार संगनि, सिंह शावक[1] देखकर,
मृगराज तब उसको बुलाता, प्रीतिवश संबोधकर।
ऐसे हितंकर सिद्ध जिन हम पर कृपा करते अती,
शुभ स्वत्व शक्ती बोध देकर, की हमारी शुभ मती।।6।।

श्रीसिद्ध अर्चन के लिए शुभ, भाव मेरे यूँ हुए,
प्रभु सिद्ध जिन प्रेषित मनो संदेश मम चित को छुए।
वंशज हमारे और अंशज, भव विपिन में क्यों पड़े,
आओ हमारे साथ बैठो, सिद्ध वासी हो बड़े।।8।।

श्रीसिद्धचक्र विधान रचकर, मैं हि उत्तर दे रहा,
प्रभु आप सा ही सुपद पाने, आप सम्मुख बढ़ रहा।
मैं आ रहा हूँ आपके अति, निकट जल्दी हे प्रभो,
सिद्धार्चना का पथ बना अब, चल दिया हूँ मैं विभो।।7।।

दोहा

भक्ति भाववश भक्त नित, टेरे हो बेचैन।
तव भक्ती का हूँ तृषक, चातकवत् दिन रैन।।
आह्वानन मैं नित करूँ, उर अंबुज विकसाय।
उर आसन पर तिष्ठिये, आँसू रहे बुलाय।।
मैं अबोध नादान हूँ, ना जानूँ कुछ रीत।
हृदय देखकर आइये, मेरी सच्ची प्रीत।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

---

1. संतान/बच्चा

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणम्।

अष्टक

नरेन्द्र छंद (तर्ज-रोम-रोम से....)

यतिवर चित निज निर्मल अंबू, वा आँसू सम होए।
निज चित की संपूर्ण कलुषता, सिद्ध भक्ति से धोए।।
सिद्ध अर्चना करूँ भाव युत, शाश्वत सिद्धी पाने।
निर्मल नीर चढ़ाकर भगवन्, आया तुमें मनाने।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धचक्राधिपतये श्रीसिद्ध-परमेष्ठिने नमो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधानल वा अन्य कषायों, से मेरा चित झुलसा।
प्रभु वचनामृत चंदन पाकर, आज चित्त मम हुलसा।।
सर्वश्रेष्ठ शुभ चंदन लाकर, भव आताप मिटाने।
शाश्वत निर्मलता मैं पाऊँ, आया तुमें मनाने।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धचक्राधिपतये श्रीसिद्ध-परमेष्ठिने नमः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रेष्ठ सीप के उत्तम मुक्ता, वा पूनम का चंदा।
क्षीरोदधि के धवल फेन सम, ले अक्षत आनंदा।।
अक्षय श्रद्धा आज बनाकर, अक्षत चरण चढ़ाने।
अक्षय शिवपद पाने भगवन्, आया तुमें मनाने।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धचक्राधिपतये श्रीसिद्ध-परमेष्ठिने नमोऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरतरु के शुभ सुमन मँगाकर, निज मन सुमन बनाया।
कामबाण के नाश करन को, सुमन चढ़ा हर्षाया।।
विषय विपिन को आज जलाकर, मुक्ति सुंदरी पाने।
हम में तुम, तुम में हम शामिल, आया तुमें मनाने।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धचक्राधिपतये श्रीसिद्ध-परमेष्ठिने नमः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

क्षुधा वेदनी भव प्राणी को, भव-भव में दुख देती।
षट्रस मिश्रित भोजन कर भी, आत्म स्वाद ना लेती।।
क्षुधा रोग के नाश करन को, वैद्य बने तुम स्याने।
शाश्वत आतम रस को पाऊँ, आया तुमें मनाने।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धचक्राधिपतये श्रीसिद्ध-परमेष्ठिने नमो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

काल नादि से मम आतम में, तिमिर तीन विध छाया।
रत्नत्रय के बल से तुमने, उसको पूर्ण मिटाया।।
निज चेतन में चिद् प्रकाश हितु, गौघृत दीप चढ़ाने।
शाश्वत नंदा दीप बनूँ मैं, आया तुमें मनाने।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धचक्राधिपतये श्रीसिद्ध-परमेष्ठिने नमः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर तगर कर्पूर रु नागर, लवंग अरु घृत लाया।
दसविध धूप बनाकर मैंने, दसदिश को महकाया।।
वसुविधि की दुर्वास वासना, निज से दूर भगाने।
कर्मविपिन निःशेष करूँ मैं, आया तुमें मनाने।।

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धचक्राधिपतये श्रीसिद्ध-परमेष्ठिने नमो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्फल जो तरुवर है जग में, व्यर्थ सभी वे जानो।
मिष्ट सुफल युत वृक्ष सभी तुम, श्रेष्ठ रूप पहचानो॥
षट्ऋतु के शुभ फल प्रदान कर, शिवफल अनुपम पाने।
भववर्द्धक सब फल विनशाने, आया तुमें मनाने॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धचक्राधिपतये श्रीसिद्ध-परमेष्ठिने नमः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीरादिक वसु द्रव्य श्रेष्ठतम, सिद्ध चरण में लाया।
सिद्धों जैसे पावन वसु गुण, पाने मन ललचाया॥
विश्वश्रेष्ठ मैं अर्घ्य चढ़ाकर, पद अनर्घ्य शुभ पाने।
शाश्वत सिद्धी पाने भगवन्, आया तुमें मनाने॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धचक्राधिपतये श्रीसिद्ध-परमेष्ठिने नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षायिकलब्धि व वस्तुत्वादि 24 गुण अर्घ्य

(छंद-चउबोला) (तर्ज-वंदे जिनवरं....)

दर्शन मोह पूर्ण नशकर के, ''सम्यक् दर्शन'' प्रगटाया।
मिथ्यादर्शन मिश्र व सम्यक्-प्रकृति नाश करि सुख पाया॥
जीव अनादि से मिथ्यादृष्टि, स्वयं स्वत्व ना लख पाया।
निज के शाश्वत शुद्ध स्वत्व को, पाने तव चरणा आया॥

ॐ ह्रीं परमसम्यक्त्व-गुणसहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥1॥

निज स्वभाव में लीन रहूँ नित, यही शील मेरा निश्चित।
चरित मोहवश उसे भूल मैं, किए कर्म अब तक अनुचित॥
चरित मोह पच्चीस प्रकृतियाँ, नादिकाल से भोगी हैं।
सिद्ध शरण पाकर उन नाशी, बने दिगम्बर योगी हैं॥

ॐ ह्रीं परमचारित्रगुण-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

मति श्रुत अवधि मनःपर्यय अरु, केवलज्ञानावरण कहा।
पूर्ण प्रकृतियाँ कर विनष्ट तुम, ''ज्ञान नंत'' निज चित्त लहा।।
मैं अनादि अज्ञानी बनकर, पर को निज का मान रहा।
सिद्ध शरण को भूल आज तक, दुःख अनंतों बार सहा।।

ॐ ह्रीं क्षायिक-ज्ञान-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

चक्षु अचक्षु अवधि वा केवल, निद्रा अरु प्रचला जानो।
निद्रा-निद्रा प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि नव पहचानो।।
नवों प्रकृति के नाश करन को, शुभतम अर्घ चढ़ाता हूँ।
सिद्धों सम ''दर्शन'' गुण पाने, सिद्ध शरण में जाता हूँ।।

ॐ ह्रीं क्षायिकदर्शन - गुणसहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

विघ्न कर्म की पंच प्रकृतियाँ, पंच लब्धि का घात करें।
दान विघ्न गुण दान विनाशे, हम शिव ''अक्षय दान'' वरें।।
दान विनाशक दुर्गति का नित, सुगति मार्ग का है वाहन।
अक्षय दान केवली देते, पूज लहूँ मैं शिव साधन।।

ॐ ह्रीं क्षायिक - दानसहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

लाभ विघ्न के कर्म उदय से, इष्ट लाभ ना मिल पाता।
बिना लाभ के भवि प्राणी को, मिले कहीं ना सुख साता।।
लाभ विघ्न के नाश करन को, अर्घ्य बनाकर लाया हूँ।
''शाश्वत लाभ'' मिले प्रभु मुझको, यही भाव उर लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं क्षायिक - लाभसहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

एक हि बार भोग करने में, भोग विघ्न ही बाधक है।
''अक्षय भोग'' लहा जिनवर ने, तप ही कर्म विनाशक है।।
निज आतम के गुण अनंत का, सुंदर भोग बनाऊँगा।
अर्घ्य चढ़ाकर शिव चरणों में, स्वयं सिद्ध बन जाऊँगा।।

ॐ ह्रीं क्षायिक-भोग-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

बार-बार भोगें विषयों को, कहलाए वे भोगी हैं।
जग के नश्वर द्रव्य सभी जिन, लगे वही वर योगी है।।
पुनः पुनः मैं स्वात्म गुणों का, सदा ''भोग अक्षय'' करने।
शिवपद अर्घ्य चढ़ा हम आए, केवल मुक्ति रमा वरने।।

ॐ ह्रीं क्षायिक-उपभोग-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

बिना शक्ति के शक्ति हीन सब, युक्ती ऐसी मैं पाऊँ।
सिद्ध प्रभो सम ''नंतवीर्य'' पा, विघ्न कर्म सब नश पाऊँ।।
पल पल में जो नष्ट होय वह, शक्ति स्वभाव नहीं मेरा।
अर्घ्य चढा निज गुण प्रगटाऊँ, गर उपकार रहे तेरा।।

ॐ ह्रीं क्षायिक-वीर्य-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

सर्व द्रव्य का गुण प्रधान है, अस्तिवाचि ''अस्तित्व'' महा।
सिद्ध प्रभो अस्तित्व शुद्ध है, मेरा भी हो शुद्ध अहा।।
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते।।

ॐ ह्रीं अस्तित्वगुण-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।10।।

अर्थ क्रिया कारक गुण जानो, नाम कहा ''वस्तुत्व'' सही।
हम भी शुद्ध करें नित उसको, पावें शाश्वत मोक्ष मही।।

निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते॥

ॐ ह्रीं वस्तुत्वगुण-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥11॥

द्रव्य कभी कूटस्थ न होता, गुण पर्याय प्रकट होती।
गुण ''द्रव्यत्व'' सर्व द्रव्यों की, मानो यह चिन्मय ज्योती॥
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते॥

ॐ ह्रीं द्रव्यत्वगुण-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥12॥

एक द्रव्य के गुण अनंत हैं, अन्य द्रव्य में ना होवें।
''अगुरूलघु'' का काम यही है, कभी द्रव्य गुण ना खोवे॥
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते॥

ॐ ह्रीं अगुरुलघुत्वगुण-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥13॥

द्रव्य ज्ञान का विषय बना है, ''प्रमा'' नाम गुण है भारी।
इस गुण के कारण ही संयत, बनें प्रमाता अविकारी॥
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते॥

ॐ ह्रीं प्रमेयत्वगुण-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥14॥

अंश और अंशीमय जग में, द्रव्य अखंडित सब जानो।
गुण ''प्रदेश'' है सब द्रव्यों का, चिन्मय पिंड सदा मानो॥
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते॥

ॐ ह्रीं प्रदेशत्वगुण-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।15।।

जीव द्रव्य चिन्मय शाश्वत है, चिति द्रव्यों के कारण ही।
''शुद्ध चेतना'' हम कर पाएँ, सब कर्मों का वारण भी।।
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते।।

ॐ ह्रीं चेतनत्वगुण-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।16।।

''ज्ञान चेतना'' जीव द्रव्य की, गुण विशेष अनुपम ख्याता।
हो निगोदिया या शिववासी, ज्ञान मुख्य है विख्याता।।
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते।।

ॐ ह्रीं ज्ञानचेतना-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।17।।

निर्विकल्प है शुद्ध चेतना, महसत्ता अवलोक करे।
''दर्शन'' शाश्वत निज स्वभाव है, या शिवत्व गुण कुंज भरे।।
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते।।

ॐ ह्रीं दर्शनचेतना-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।18।।

मूर्तिमान पुद्गल है केवल, अन्य ''अमूर्तिक'' द्रव्य सभी।
जीव अशुद्ध सु मूर्तिक होता, शुद्ध अमूर्तिक बने कभी।।
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते।।

ॐ ह्रीं अमूर्तत्व-गुणयुक्ताय सहितायश्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।19।।

जीता था जो काल नादि से, जीता है अरु जीवेगा।
है ''जीवत्व'' महागुण अनुपम, शुद्धातम रस पीवेगा।।
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते।।

ॐ ह्रीं जीवत्वगुण–युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।20।।

''भेद अभेद'' तथा गुण भेदा, भेदरूप निश्चित मानो।
जान विवक्षा नय से भविजन, शुद्धातम को पहचानो।।
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते।।

ॐ ह्रीं भेदाभेद–गुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।21।।

एक अनेक रूप गुण चिन्मय, ''एकानेक'' सदा भासी।
शाश्वत सिद्ध रूप पा हम सब, बनें शुद्ध शिव अविनाशी।।
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते।।

ॐ ह्रीं एकानेक–गुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।22।।

ना स्वभाव से च्युत हो किंचित्, जिनवर ''परम स्वभावी'' हैं।
परम भाव युत जिन जो पूजें, भव्य सिद्ध वो भावी हैं।।
निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते।।

ॐ ह्रीं परमस्वभाव–गुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।23।।

व्यय उत्पाद ध्रौव्य युत द्रव्या, गुण पर्याय रूप जानो।
निश्चय अरु व्यवहार रूप में, ''नित्य अनित्य'' उभय मानो।।

निज शिवत्व को पाने हेतू, सिद्धचक्र अर्चन करते।
निकट भव्य ही सिद्ध भक्ति से, निश्चित मुक्ति रमा वरते।।

ॐ ह्रीं नित्यानित्य-गुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।24।।

महार्घ्य

(मनहरण छंद) (तर्ज-मिथ्यातम नाशवे....)

वसुकर्मों को नश, आतमगुणों को वश।
कर शिव आलय में, जाकर विराजे हैं।।
ज्ञानादि अनंतगुण, संग शुद्ध परजाय।
निश्चय से स्वामी नित, स्वातम में साजे हैं।।
ध्यान ध्येय ध्याता का, विकल्प सब नष्ट कर।
चेतना की शुद्ध परिणति में सु राजे हैं।।
सिद्ध चक्र अर्चना रचाएं जो खुले हैं उसे।
मोक्ष सुमहल के शुभ दरवाजे हैं।।

ॐ ह्रीं क्षायिकलब्धि-वस्तुत्वादिगुण-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तये शान्तिधारा।। दिव्य-पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।।

जाप्य- ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः।

जयमाला

(तरलनयन छंद)

सिरि शिववर शुभ अरचन, सुखहर दुखहर अघहन।
मन लख शिवगुण हरसत, नित हि भगति रस बरसत।।

(अरिल्य छंद) (तर्ज-चालीसा)

जय जय सिद्धचक्र जयवंता, नमूँ नमूँ सब शिव भगवंता।
कर्म नाश लोकाग्र विराजे, नंत गुणों से शिववर साजे।।1।।

ज्ञानावरण नाशकर पाया, नंत ज्ञान निज चित्त बसाया।
दर्शन आवरणी प्रभु नाशी, सर्वदर्शि शिव हैं अविनाशी।।2।।

अंतराय को करन अशेषं, शक्ति पाय जिन आप विशेषं।
दर्श मोह का मूल उखाड़ा, सम्यक् कोष सुचित्त उघाड़ा।।3।।

चूर-चूर करि चारित मोहा, नंत सौख्य पाया निज गेहा।
लब्धी नव केवल उपजायी, तुम सम महिमा अवर न काही।।4।।

नित्यं गुण अस्तित्व सुयुक्ता, गुण वस्तुत्व रु सदा प्रयुक्ता।
गुण द्रव्यत्व सु चिन्मय ज्योती, अगुरुलघू गुण आतम मोती।।5।।

गुण प्रदेश चिति ज्ञान सुदर्शी, तव पूजा कर आतम हर्षी।
इक अनेक जिन नित्य अनित्यं, भेद अभेद सुशाश्वत सत्यं।।6।।

स्पर्श गंध रस वर्ण बिना हो, नित्य अमूर्तिक देव जिना हो।
ज्ञान दर्श चेतन अनुरूपा, निज संवेद्य शिवात्म स्वरूपा।।7।।

नाथ आप निज गुण अवगाहें, नंतानंद पाएँ निज ध्यायें।
ज्ञाता ज्ञान व ज्ञेय विकल्पा, तज कहलाए शिव अविकल्पा।।8।।

सिद्धचक्र की पूज रचाऊँ, जीवन अपना सफल बनाऊँ।
होवे ना जब तक शिववासा, रहूँ सिद्ध स्वामी तव दासा।।9।।

ॐ ह्रीं क्षायिकलब्धि-वस्तुत्वादि-गुणसहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

(चउबोला छंद)

भावसहित सिद्धों का अर्चन, भव भव दुःख विनाशक है।
सिद्धदेशवासी की भक्ती, चिद्गुण पूर्ण विकासक है।।
अतिनिर्मल निज भाव बनाकर, सिद्धार्चन करने आया।
तीव्र पुण्य का उदय सु पाकर, पाई जिनशासन छाया।।

इत्याशीर्वादः ।।

अथ द्वितीयकोष्ठोपरि दिव्य-मंगल-पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

द्वितीय पूजन

(स्थापना)

(शार्दूल विक्रीडित छंद) (तर्ज-अर्हंतो भगवंत इन्द्र....)

घाती सर्व अघाति कर्म रहिता, सद्ज्ञान देही विभो!,
शुद्धात्मानुभवी निजात्म रसिका, लोकाग्रवासी प्रभो।
सिद्धार्चा करने सुभाव विमला, लेके सदा वंदिता,
मेरे आत्मप्रदेश वास करना, देवेश आनंदिता।।

(दोहा)

अविकारी गुणखान जिन, परम ब्रह्म रस लीन।
शुद्धातम मैं बन सकूँ, आह्वानन स्वाधीन।।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुण-भुक्ताभुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुणभुक्ताभुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुणभुक्ताभुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम्।

अष्टक

(छंद-आँचलीबद्ध-चौपाई) (तर्ज-दर्शविशुद्ध भावना भाय....)

रत्नपात्र में सुरसरि नीर, शिव पद भेंट गहूँ भव तीर।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान।।
सिद्धचक्र की पूज रचाय, अपने सारे पाप नशाय।
बनूँ गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान्।।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुणभुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

मलयागिरि का चंदन लाय, भव आताप नशे दुखदाय।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान।।
सिद्धचक्र की पूज रचाय, अपने सारे पाप नशाय।
बनूँ गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान्।।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुणभुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः संसाराताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

मुक्ताफल सम तंदुल लाय, अक्षय पद जिन चरण चढ़ाय।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान।।टेक।।।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुणभुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽक्षय-पदप्राप्तयेऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

षट्ऋतु पुष्प मनोहर लाय, जिनवर पूज काम नशि जाय।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान।।टेक।।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुणभुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

जिनपद चरुवर श्रेष्ठ चढ़ाय, क्षुधा वेदनी शीघ्र नशाय।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान।।टेक।।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुणभुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

मंगलकारक गौघृत दीप, मोह नाशने रखूँ समीप।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान।।टेक।।।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुणभुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

दशविध धूप अग्नि में खेय, वसुविध कर्म विनाशन हेत।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान॥टेक॥

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुण-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥7॥

अक्ष मनोहर फल शुभ लाय, जिनपद भेंट मोक्षफल पाय।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान॥टेक॥

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुण-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महामोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा॥8॥

नीरादिक वसु द्रव्य मिलाय, पद अनर्घ्य हितु अर्घ्य चढ़ाय।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध प्रभू भगवान॥टेक॥

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुण-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥9॥

दस जन्मातिशय अर्घ्य

(छंद- हरिगीतिका) (तर्ज-नवदेवताओं की सदा....)

अत्यंत सुंदर रूप अतिशय, रहित शाश्वत आतमा।
शुभ पूजकर मैं चरण जिनके, बन सकूँ परमातमा॥
अतिशय जनम के तीर्थ[1] तन में, राजते त्रिभुवन मही।
त्रैयोग से शुभ भक्ति करके, पा सकें निज गुण सही॥

ॐ ह्रीं सुंदररूपातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥1॥

गंध अनुपम देह व्यापे, मल रहित तुम शिव बने।
पाने सकल गुण आतमा के, कर्म सारे तुम हने॥टेक॥

ॐ ह्रीं तनरूपातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

1. तीर्थंकर, 2. भोजन

प्रस्वेद विरहित नित्य निर्मल, देह आप विशेष है।
अतिशय सु अनुपम मनुज तन ये, शुद्ध गुण सुविशेष हैं।।टेक।।

ॐ ह्रीं स्वेदाभावरूपातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

तीर्थेश तन का विमल अतिशय, अशन[2] होता दिव्य ही।
नीहार किंचित् भी न होवे, वंदिता शिव शिवमही।।टेक।।

ॐ ह्रीं निहाराभावातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

तीर्थेश हित मित वचन बोलें, सर्व जन मन मोहने।
अतिशय सुवंदित देवकृत भी, पूजते नित सोहने।।टेक।।

ॐ ह्रीं प्रियहितवचन-रूपातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

अतिशय बली तुम दिव्य जिनवर, तीर्थंकर जग में विभो।
घाती नशाकर नंत बल को, पा लिया तुमने प्रभो।।टेक।।

ॐ ह्रीं अतुल्यबल-रूपातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

है क्षीर सम तव रक्त निर्मल, धवल प्रीती युक्त जो।
पाता धवल निज देह में होता सुनिश्चित मुक्त वो।।टेक।।

ॐ ह्रीं श्वेतरुधिरातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

शुभ अष्ट उत्तर सहस लक्षण, तीर्थजिन तन में बसें।
जिनधर्मवर्तक के बिना ये, अन्य तन में ना लसें।।टेक।।

ॐ ह्रीं सहस्राष्टोत्तर - शुभलक्षणयुक्त - रूपातिशय - भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

जिन देहयष्टी चतुर्विध से, समचतुः जिनने कही।
वे तीर्थ जिन वृष ध्यान तप से, प्राप्त करते शिव मही।।टेक।।

ॐ ह्रीं समचतुरस्रसंस्थान-रूपाकृति-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

श्री जिनवचन षट् भेद सँहनन, काल नादी उक्त है।
तीर्थेश उत्तम पाय होते, कर्म पंक विमुक्त हैं।।टेक।।

ॐ ह्रीं वज्रवृषभनाराच-संहनन-रूपातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।10।।

दस केवलज्ञानातिशय अर्घ्य

(दोहा)

नाश घातिया कर्म जिन, पायो केवल ज्ञान।
नंत चतुष्टय युत हुए, श्री अरिहंत महान।।

(चउबोला छंद) (तर्ज-धीरे-धीरे पगियाँ धरती....)

शत-शत योजन चतुर्दिशा में, नित्य सुभिक्ष बरसता है।
भव्य जीव अनुभव कर उसका, चित्त सदैव हरषता है।।
अतिशय केवलज्ञानी के ये, भवि का दुख दारिद्र हरें।
जो संगति पावें केवलि की, वे सुंदर शिवनारि वरें।।

ॐ ह्रीं शतयोजनसुभिक्षतारूप-कैवल्यातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।11।।

तप से सहज ऋद्धियाँ पाकर, नित्य गगन में गमन करें।
चार घातिया रहित जिनेश्वर, तिनको हम नित नमन करें।।टेक।।

ॐ ह्रीं गगनगमनरूप-कैवल्यातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।12।।

परमौदारिक देह तीर्थ की, अनुपम अतिशय दिखलाती।
एक वदन चहुँ दिश में सोहे, सभा दर्श कर हरषाती।।टेक।।

ॐ ह्रीं चतुर्दिशमुखमण्डल-कैवल्यातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।13।।

जिस भू पर केवली विराजें, दया हीनता शक्य नहीं।
भाव अहिंसक सब जीवों के, जिनशासन मत एक्य यही।।टेक।।

ॐ ह्रीं अदया-अभावरूप-कैवल्यातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।14।।

जिनवर की महिमा अनुपम है, ना उपसर्ग वहाँ होवे।
जन्मजात शत्रू वनचर भी, प्रेमभाव रख अघ धोवें।।टेक।।

ॐ ह्रीं निरूपसर्गतारूप-कैवल्यातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।15।।

नर तिर्यंच क्षुधा नशने को, कवलाहार सदा करते।
किंतु केवली घाति कर्म बिन, निराहार नित ही रहते।।टेक।।

ॐ ह्रीं कवलाहाराभावरूप-कैवल्यातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।16।।

लोक विदित सब विद्याओं के, सदा आप जिनवर स्वामी।
अध्यातम विधि आप प्रणेता, निज वैभव अंतर्यामी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सर्वविद्येश्वरत्वरूप-कैवल्यातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।17।।

नित छद्मस्थ जीव के तन में, सप्त धातु उपधातु रहें।
जिनवर परम देह के धारक, नख अरु केश न कभी बढ़ें।।टेक।।

ॐ ह्रीं नखकेशवृद्धिविहीनतारूप-कैवल्यातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।18।।

छद्मस्थों की क्षण-क्षण में भी, पलक झपकती रहती है।
निर्निमेष सर्वज्ञ श्रेष्ठ गुरु, दृष्टि सु अविचल रहती है।।टेक।।

ॐ ह्रीं अनिमिष-दृष्टि-रूप-कैवल्यातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।19।।

पुद्‌गल स्थूल रूप में जब तक, तब तक छाया देता है।
परमौदारिक देह सुभोक्ता, भव छाया हर लेता है।।टेक।।

ॐ ह्रीं छायारहितरूप-कैवल्यातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।20।।

14 देवकृतातिशय अर्घ्य

(अडिल्ल छंद) (तर्ज-सोलहकारण भाय....)

अर्धमागधी भाष सुर अतिशय करते,
भव्य जीव निज भाष सुन अघ को तजते।
देवों का सौभाग्य अतिशय करना है।
पूजन भक्ति करके भवदधि तरना है।।

ॐ ह्रीं अर्धमागधीभाषा-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।21।।

जन्मजात रिपु भी द्वेष का त्याग करें।
आपस में मैत्री भाव अनुराग वरें।।टेक।।

ॐ ह्रीं सर्वजन-मैत्रीभाव-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।22।।

दशों दिशाएँ स्वच्छ तब हो जाती हैं।
विद्युत् उल्कापात् तिमिर नश जाती हैं।।टेक।।

ॐ ह्रीं निर्मलदिग्दिशत्व-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।23।।

दुर्दिन घन वृष्टि रज के बिन नभ दीखे।
भव्य जीव का चित्त पापों से रीते।।टेक।।

ॐ ह्रीं निर्मलाकाश-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।24।।

अत्यानंद सहित भूमि हो जाती है।
षट्ऋतु के फलफूल वह दे जाती है।।टेक।।

ॐ ह्रीं षड्ऋतुफलित - पुष्प - फल - सुरकृतातिशय - भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।25।।

धवल काँच सी शुभ्र वसुधा भासे है।
चित्त विकार विनाश गुण परकाशै है।।टेक।।

ॐ ह्रीं दर्पणवत्-पृथ्वीतल-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।26।।

चरण कमल तल कमल शत दो पच्चीसा।
करें विहार हितार्थ केवलि जिन ईशा।।टेक।।

ॐ ह्रीं पादन्यास-कमलरचना-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।27।।

नभ गुंजित हो नित्य जय जयकारों से।
पाप शैल क्षय होंय मंगल नारों से।।टेक।।

ॐ ह्रीं नभसि - जयघोष - सुरकृतातिशय - भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।28।।

मंद सुगंध बयार दश दिश में घूमें।
भव्यों के तब शुद्ध मन जिनगुण चूमें।।टेक।।

ॐ ह्रीं सुगंधितपवन-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।29।।

शीतल गंध सुरभित मधुरिम जल बरसे।
ज्यों केकी घन देख त्यों भवि मन हरषे।।टेक।।

ॐ ह्रीं गंधोदकवृष्टि-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।30।।

ज्यों योगी सद्ध्यान से निज चित सोधें।
त्यों सुरगण तहँ भूमि के कंटक रोधें।।टेक।।

ॐ ह्रीं निष्कंटकभूमि-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।31।।

समवसरण जिनदेव सृष्टि हर्षमयी।
तव पूजन से भव्य पावें मोक्ष मही।।टेक।।

ॐ ह्रीं हर्षितसृष्टि-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।32।।

धर्मचक्र आगे सुधर्म वृष्टि करता।
क्लेश भाव अज्ञान तम निश्चित हरता।।टेक।।

ॐ ह्रीं अग्रगामिधर्मचक्र-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।33।।

याम वसु वसुधा को शुभ वसु गुणदाता।
मंगल अष्ट सज्जित जय जय जगत्राता।।टेक।।

ॐ ह्रीं अष्टमंगलद्रव्य-सुरकृतातिशय-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।34।।

अष्टप्रातिहार्य अर्घ्य

(विधाता छंद)

(तर्ज-कर्म के खेल न्यारे हैं..../उठे ऊँचा कोई कितना....)

सुखद संगति अनल पाकर, काष्ठ भी वह्नि हो जाता।
शरण जिन की तरू पाकर, अशोका नाम शुभ पाता।।

सुमंगल आठ ये जग में, शिवों के गुण समा जानो।
गही है शरण जिस भवि ने, उसे भी स्वयं शिव मानो।।

ॐ ह्रीं अशोकतरु-सत्प्रातिहार्य-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।35।।

शोभता रत्नमणियों से, जिनेश्वर वीर का आसन।
सकल हित नित्य ही करता, अरिह जिनदेव का शासन।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिंहासन-सत्प्रातिहार्य-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।36।।

स्वामी लोकत्रय के तुम, अतः त्रय छत्र साजे हैं।
धनुष पन सहस ऊपर जिन, तदपि भवि चित्त राजे हैं।।टेक।।

ॐ ह्रीं छत्रत्रय-सत्प्रातिहार्य-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।37।।

दिव्य तन ईश की आभा, भविक भव सात देखे हैं।
करे नित ध्यान संध्या त्रय, नियम शिव सौख्य लेखे हैं।।टेक।।

ॐ ह्रीं भामण्डल-सत्प्रातिहार्य-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।38।।

सत्व संदेह नाशक रवि, समा परकाशती वाणी।
सुनें ध्वनि पाप परिहारक, जगत् के भव्य सब प्राणी।।टेक।।

ॐ ह्रीं दिव्यध्वनि-सत्प्रातिहार्य-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।39।।

सदा करती रहे मंगल, गगन से वृष्टि सुमनों की।
हरे अघ वासना चित की, धुले सब पंक सुजनों की।।टेक।।

ॐ ह्रीं सुरपुष्पवृष्टि-सत्प्रातिहार्य-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।40।।

ढुराते यक्ष गण तहँ पर, चतुःषष्ठी सु चामर को।
लखें जे भक्ति नयनों से, बनावें सिद्ध पामर को।।टेक।।

ॐ ह्रीं चामर-सत्प्रातिहार्य-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।41।।

गूँजती याम वसु नभ में, दुंदुभी चित्त हारक है।
नशे जो कलुष सब मन का, बने शिव पंथ कारक है।।टेक।।

ॐ ह्रीं दुंदुभि-सत्प्रातिहार्य-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।42।।

अनंत चतुष्टय अर्घ्य

(चउबोला छंद) (तर्ज-अनादिकाल से....)

मति श्रुत अवधि मनःपर्यय अरु, केवलज्ञानावरणी हैं,
ज्ञान ध्यान तप से तुम नाशी, ये पाँचों आवरणी हैं।
लोकालोक प्रकाशक तुमने, केवल बुध को पाया है,
ऐसा शाश्वत ज्ञान विभव पाने को मन अकुलाया है।।

ॐ ह्रीं अनंतज्ञान-गुण-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।43।।

चक्षु अचक्षु अवधि अरु केवल, निद्रा निद्रा प्रचला है,
प्रचला-प्रचला अरु निद्रा भी, स्त्यानगृद्धि भी सबला है।
नव प्रकृती ये दर्शन विधि की, जिनवर आप नशायी हैं,
तुम जैसा दर्शी बन जाऊँ, बात यही मन भायी है।।

ॐ ह्रीं अनंत-दर्शन-गुण-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।44।।

भेद मोहिनी विधि के दोनों, क्रूर अति दुःखकारक हैं,
दर्शन वा चारित्र भेद से, दोनों ही नित मारक हैं।

है मिथ्यात्व प्रबल शत्रू सम, बुद्धि भ्रष्ट कर देता है,
जिसने मोह कर्म को नाशा, वर अक्षय सुख लेता है॥

ॐ ह्रीं अनंत–सुख–गुण–युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।45।।

दान लाभ अरु भोग वीर्य युत, विघ्न तथा उपभोग मयी,
अंतराय विधि विघ्न डालकर, सर्व शक्ति की देह दही।
विघ्न भाव से रहित होय हम, अंतराय का नाश करें,
शाश्वत चेतन गुण पाने को, सिद्ध शरण में वास करें॥

ॐ ह्रीं अनंत–वीर्य–गुण–युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।46।।

(किरीट छंद) (तर्ज–श्रीमत् वीर....)

गर्भ सुजन्म तथा तप केवल ज्ञान व शाश्वत मोक्ष महोत्सव,
पंचम भूमि स्वराज मिले शुभ नाशत कर्म हुआ शिव उत्सव।
पंच महोत्सव वैभव पा तुम सुंदर मुक्ति रमा परिणाकर,
वास किया तब सिद्ध शिला प्रभु वंदन आज करूँ इहँ आकर॥

ॐ ह्रीं पंचकल्याणक–विभूति–भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।47।।

दर्श विशुद्धि सु आदिक सोलह भावन तीर्थ जिनेश्वर भाकर,
तीन जगत् अधिराज हुए प्रभु श्री जिनशासन दिव्य दिवाकर।
सिद्ध गुणामृत भोग करें नित, शाश्वत मोक्ष सुमार्ग प्रदर्शक,
भक्ति सुभाव लिए अति हर्षित निर्मल अर्घ चढ़ाकर श्रावक॥

ॐ ह्रीं षोडशकारण–भावनायाः परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।48।।

महार्घ्य

(हुल्लास छंद) (चौपाई + त्रिभंगी)

सिद्ध जन्म केवल अतिशायी, सुरकृत भी पाए सुखदायी।
प्रातिहार्य युत नंत चतुष्टा, पूज हुए भविगण संतुष्टा।।
अर्हत् निज वैभव, भोग बने तब, शिववर निज गुण अधिनायक।
तुम पूर्ण अकामी, त्रिभुवन नामी, प्रभु निष्कामी जिनशासक।।
सिद्धों का वंदन, नाशे क्रंदन, हरता बंधन कर्मों का।
पूर्णार्घ्य चढ़ाऊँ, तव गुण गाऊँ, ताज गहूँ शिव शर्मों[1] का।।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुण-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

शान्तये शान्तिधारा.... दिव्यपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

जाप्य- ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः।।

जयमाला

दोहा

गुणमाला सिद्धेश की, आत्मसिद्धि के काज।
पढ़ता हूँ मैं भाववश, पाने निज साम्राज।।

(मत्तसमक छंद) (तर्ज-तारों सा चमकता.../हे गुरुवर शाश्वत...)

हैं सिद्ध नंत गुण संयुक्ता, सब कर्मों से शिव निर्मुक्ता।
चिन्मय अतिशय युत हे स्वामी, निज रूप सुनिवसत गुणधामी।।1।।

पूरव तन भी अतिशयकारी, बने आप तप से अविकारी।
घातिया विधि नशकर नामी, पाए केवल अतिशय स्वामी।।2।।

छदमस्थों के नहिं हो पाए, जिन घातिनाश तुमने पाए।
देवों ने अतिशय दिखलाए, जिन आगम में चउदह गाए।।3।।

---

1. सुखों

अघनाशक मंगलकारी हैं, मंगल सु द्रव्य अविकारी हैं।
हैं प्रातिहार्य वसु प्रतिहारी, पाया वैभव अति सुखकारी।।4।।

हैं नंतदर्शि जिन विज्ञानी, सुखनंत युक्त त्रिभुवन नामी।
तुम नंत वीर्य शिव गुण धामी, अखिलेश नमूँ शिवपुरगामी।।5।।

तुम सिद्ध क्षेत्र शिव अधिराजा, मेरी पुकार सुनकर आजा।
आ नहीं सको तो बुलवाओ, निज पास स्वयं पथ दिखलाओ।।6।।

तुम गुण लख मन नित आनंदे, त्रयलोक सदा तव पद वंदे।
हम सब पूजक तव पद आगे, शिव अर्चन हेतु भविक जागे।।7।।

मैं रहूँ सदा तव गुण प्यासा, तव भक्त बने नित पद दासा।
जीवन में एक रहे आशा, हो मेरा सिद्ध चरण वासा।।8।।

शिवगुण में ही मम मन राचे, शिवगुण मम अंतर में साजे।
मैं नमूँ सिद्धगण स्वीकारो, निज कृपा दृष्टि इहँ बरसा दो।।19।।

ॐ ह्रीं अतिशयादिगुण-भुक्ताभुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

(चउबोला छंद)

भाव सहित सिद्धों का अर्चन, भव-भव दुःख विनाशक है।
सिद्धदेशवासी की भक्ती, चिद्गुण पूर्ण विकासक है।।
अति निर्मल निज भाव बनाकर, सिद्धार्चन करने आया।
तीव्र पुण्य का उदय सु पाकर, पाई जिन शासन छाया।।

इत्याशीर्वादः ।।

(अथ तृतीयकोष्ठोपरि दिव्य-मंगल-पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

तृतीय पूजन

स्थापना

(छंद-रूपक सवैया) (तर्ज भला किसी का....)

आत्मशक्ति प्रगटायक जिनवर, स्वपर हितैषी नित अविकार।
त्रिविध कर्म के नाशक जिनवर, स्व पर हितंकर शिव गुणधार।।
दोष विनाशक सुगुण प्रकाशक, रवि सम जग में भव्याधार।
आह्वानन कर नित्य पूजता, भव सागर से कर दो पार।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम्।

अष्टक

(शालिनी छंद) (तर्ज-हमको बुलाना हर साल....)

क्षीरं सा नीरं प्रभो चर्ण लाए।
जन्मादी को नाशने सिद्ध आए।।
भक्ती से सिद्धार्चना जो रचाता।
स्वात्मा से पापादि को वो गलाता।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

गंधादी लेके जपूँ सौख्यकारी।
नाशो जी संसार का ताप भारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः संसारताप विनाशनाय चंदन निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

मोती से शाली लिए अर्चता हूँ।
सिद्धों सा होने सदा चर्चता हूँ।।
भक्ती से सिद्धार्चना जो रचाता।
स्वात्मा से पापादि को वो गलाता।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽक्षयपद-प्राप्तयेऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

फूलों की माला बनाके चढ़ायी।
निष्कामी होने प्रभो कीर्ति गायी।।टेक।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः कामवाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

पेड़ादी मिष्ठान्न ले मैं चढ़ाऊँ।
भावों से पूजूँ क्षुधादी नशाऊँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः क्षुधादिरोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

गौ घी के दीपों कि ये आवली है।
मोहादी नाशूँ अभी जो बली है।।टेक।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

धूपादी को मैं सदा खेवता हूँ।
मुक्ती श्री पाने प्रभो सेवता हूँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

नारंगी बादाम आदी चढ़ाऊँ।
भक्ती से श्री जी कि निर्वाण पाऊँ।।
भक्ती से सिद्धार्चना जो रचाता।
स्वात्मा से पापादि को वो गलाता।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महामोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

मूंगा वा पन्ना मिला अर्घ लाया।
सिद्धों का द्वारा सदा चित्त भाया।।टेक।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽनर्घ्यपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

आत्मशक्ति युक्त 61 अर्घ्य

(आँचलीबद्ध चौपाई) (तर्ज-दर्शविशुद्धि भावना भाय....)

निज ''जीवत्व'' शक्ति को पाय, तीन काल में अचल रहाय।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध चक्र गुणखान।।
सिद्धों की पूजा दिन आठ, करके दहो कर्म का ठाठ।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध चक्र गुणखान।।

ॐ ह्रीं जीवत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

''चिति'' प्रभुता के कारण जीव, कभी नहीं होता निर्जीव।।टेक।।

ॐ ह्रीं चितिशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

''दृशि'' वीरज हैं भव्य प्रमेय, महासत्त्व अवलोकन देय।।टेक।।

ॐ ह्रीं दृशिशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

सर्व ज्ञेय का बोध कराय, ''ज्ञान-शक्ति'' सुख मूल कहाय॥
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध चक्र गुणखान॥
सिद्धों की पूजा दिन आठ, करके दहो कर्म का ठाठ।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध चक्र गुणखान॥

ॐ ह्रीं ज्ञानशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥4॥

शाश्वत ''सुख'' है मेरा भाव, कर्म नाश कर लहूँ स्वभाव।टेक॥

ॐ ह्रीं सुखशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥5॥

''वीर्य शक्ति'' है शाश्वत रूप, ता को पा बनि तू शिवभूप।टेक॥

ॐ ह्रीं वीर्यशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥6॥

''प्रभुत्व शक्ति'' के हेतु भाय, महिमावान् जीव कहलाय।टेक॥

ॐ ह्रीं प्रभुत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥7॥

निज गुण वैभव भोगे जीव, लहे ''विभुत्व शक्ति'' सुख जीव।टेक॥

ॐ ह्रीं विभुत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥8॥

लोकालोक निहारक जान, शक्ति ''सर्वदर्शी'' पहचान।टेक॥

ॐ ह्रीं सर्वदर्शित्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥9॥

सर्व ज्ञेय ज्ञायक तिहुँकाल, है ''सर्वज्ञ शक्ति'' सु विशाल।टेक॥

ॐ ह्रीं सर्वज्ञत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥10॥

‘‘स्वच्छ शक्ति’’ दर्पणवत् जान, गुण पर्यय प्रगटें अमलान।।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध चक्र गुणखान।।
सिद्धों की पूजा दिन आठ, करके दहो कर्म का ठाठ।
परम गुणवान्, जय जय सिद्ध चक्र गुणखान।।

ॐ ह्रीं स्वच्छत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।11।।

स्व पर प्रकाशी दीप समान, ‘‘शक्ति प्रकाश’’ सु परम प्रमाण।।टेक।।

ॐ ह्रीं प्रकाशत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।12।।

उवसंहार विसर्पित हीन, ‘‘असंकोच विकास’’ गुणधीन।।टेक।।

ॐ ह्रीं असंकुचित-विकासत्वशक्ति-युक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।13।।

शक्ति अकारित स्वत्वाधार, उपादान है नित अविकार।।टेक।।

ॐ ह्रीं अकार्यकारणत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।14।।

अन्य द्रव्य का कारण नाय, ‘‘शक्ति अकारण’’ जीव समाय।।टेक।।

ॐ ह्रीं अकारणत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।15।।

सदा योग्य परिणमन स्वरूप, ‘‘परिणम्य’’ शुभ शक्ति अनूप।।टेक।।

ॐ ह्रीं परिणम्य-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।16।।

(नरेन्द्र छंद) (तर्ज-रोम रोम से..../पीछी रे पीछी....)

पर द्रव्यों के गुण आदिक को, जानन रूप समर्था।
चेतन की शक्ती ‘‘परिणामक’’ करे सिद्ध सब अर्था।।

निज चेतन की सर्व शक्ति को, पाने पूज रचाऊँ।
सिद्ध क्षेत्र के शुभ्र सदन में, जाकर मैं बस जाऊँ॥

ॐ ह्रीं परिणामकत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥17॥

''त्याग और आदान रहित'' निज, शक्ति चेतना शाश्वत।
स्वयं स्वयं में पूर्ण आतमा, सिद्धों से नित भास्वत॥टेक॥

ॐ ह्रीं त्यागादानशून्यत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥18॥

षट्गुण हानी वृद्धि युक्त हर, जीव अनादी जानो।
पर परिणति से रहित नित्य यह, शक्ति ''अगुरुलघु'' मानो॥टेक॥

ॐ ह्रीं अगुरुलघुत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥19॥

''व्यय उत्पाद ध्रौव्य'' संयुत ये, द्रव्य सुलक्षण नित्या।
सत् लक्षण से युक्त द्रव्य सर्वज्ञ वचन ये सत्या॥टेक॥

ॐ ह्रीं उत्पादव्ययध्रुवत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥20॥

उत्पादिक गुण युक्त जीव के, विषम व सम ''परिणामा''।
शाश्वत वीरज सिद्धों जैसा, प्रकट लहें गुण धामा॥टेक॥

ॐ ह्रीं परिणामशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥21॥

मूर्तपना पुद्गल में जानो, शेष अमूर्तिक द्रव्या।
है ''अमूर्तमय'' शुद्ध चेतना, नादि निधन अरु नित्या॥टेक॥

ॐ ह्रीं अमूर्तत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥22॥

अपने शुद्ध भाव का कर्ता, जीव अनादी जानो।
परभावों का परद्रव्यों से, सदा ''अकर्ता'' मानो॥
निज चेतन की सर्व शक्ति को, पाने पूज रचाऊँ।
सिद्ध क्षेत्र के शुभ्र सदन में, जाकर मैं बस जाऊँ॥

ॐ ह्रीं अकर्तृत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥23॥

जीव ''अभोक्ता शक्ति'' युक्त है, पर का कभी न भोगी।
परमाणू तक भोग न पाता, अविचल शाश्वत योगी॥टेक॥

ॐ ह्रीं अभोक्तृत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥24॥

अचल अकंप निष्क्रिय प्रदेशी, आत्म द्रव्य नित जानो।
होय परिणमन निज का निज में, शक्ति ''निष्क्रिया'' मानो॥टेक॥

ॐ ह्रीं निष्क्रियत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥25॥

नियत प्रदेशी सभी आतमा, न्यूनाधिक ना होते।
''नियत''शक्तिकेकारणहीसब,शाश्वतशिवमयरहते॥टेक॥

ॐ ह्रीं नियतप्रदेशत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥26॥

शाश्वत स्वत्व धर्म में रहता, पर परिणति ना भाए।
अण्णोण्णं पविसंता होकर, ''वृष व्यापी'' कहलाए॥टेक॥

ॐ ह्रीं स्वधर्मव्यापकत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥27॥

''साधारण वा इतर'' शक्ति युत, मिश्र रूप तुम जानो।
आत्म द्रव्य से साधारण है, इतर व पर से मानो॥टेक॥

ॐ ह्रीं साधारणासाधारण-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।28।।

''नंत धर्म'' गुण युक्त चेतना, शक्ति अलौकिक धारी।
पर पद के आलंब बिना ही, रहे सदा अविकारी।।
निज चेतन की सर्व शक्ति को, पाने पूज रचाऊँ।
सिद्ध क्षेत्र के शुभ्र सदन में, जाकर मैं बस जाऊँ।।

ॐ ह्रीं अनंतधर्मत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।29।।

स्वपर ''विरोधी धर्म'' युक्त चित्, स्वत्व चतुष्टय रूपा।
है अभावमय पर चतुष्क से, निर्मल नित्य अनूपा।।टेक।।

ॐ ह्रीं विरुद्धधर्मत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।30।।

''तत्त्वशक्ति'' से युक्त चेतना, च्युत स्वभाव ना होवे।
अच्युत अकल अखंड अरूपी, कर्म कालिमा धोवे।।टेक।।

ॐ ह्रीं तत्त्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।31।।

शक्ति ''अतत्त्व'' सुयुक्त चेतना, निश्चय ग्रहण न करती।
पर द्रव्यनि भावों को किंचित्, ना अपने में करती।।टेक।।

ॐ ह्रीं अतत्त्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।32।।

नंत धरें पर्याय द्रव्य से, फिर भी एक स्वभावी।
है ''एकल शक्ति'' ये जीव की, जग में पूर्ण प्रभावी।।टेक।।

ॐ ह्रीं एकत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।33।।

(मद अवलिप्त कपोल छंद) (तर्ज–मद अवलिप्त कपोल....)

नंत शक्ति से युक्त, निजातम अभिमत जानो।
धर नाना पर्याय, रूप तुम इक ही मानो।।
निज आतम की शक्ति, प्रकट करने आये हैं।
तुम सम बनने आज, जिनेश्वर अकुलाए हैं।।

ॐ ह्रीं अनेकत्वशक्तियुक्त–श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।34।।

संप्रति परिणति युक्त, ''भाव'' की शक्ती जानो।
भूत अनागत रहित, सकल ही संप्रति मानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं भावशक्तियुक्त–श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।35।।

संप्रति परिणति छोड़, द्रव्य में भावी भूता।
''अभाव शक्ति'' युत जीव, में वे नित्य प्रसूता।।टेक।।

ॐ ह्रीं अभावशक्तियुक्त–श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।36।।

''भाव अभाव'' शक्ती, उभया एक में भायी।
संप्रति इतर सु काल, अपेक्षा कह जिनराई।।टेक।।

ॐ ह्रीं भावाभाव–शक्तियुक्त–श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।37।।

संप्रति पूर्ण अभाव, अभाव भाव ही जानो।
''अभावभाव'' यह शक्ति, तुम निश्चित पहचानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं अभावभावशक्तियुक्त–श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।38।।

संप्रति भाव सुयुक्त, अनागत होइ अभावा।
''भावभाव'' शुभ शक्ति, जानेहु रुचि सद्भावा।।
निज आतम की शक्ति, प्रकट करने आये हैं।
तुम सम बनने आज, जिनेश्वर अकुलाए हैं।।

ॐ ह्रीं भाव-भावशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।39।।

हो अशक्य पर्याय, अशक्य रूप ही भासी।
यथा इतर पर्याय, नहीं किंचित् परकाशी।।टेक।।

ॐ ह्रीं अभाव-अभाव-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।40।।

कारक की क्रिया से, सहित शुभ ''भाव'' सुव्यक्ता।
निज में निज से रमें, आतमा परपद मुक्ता।।टेक।।

ॐ ह्रीं भावशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।41।।

हो कारक अनुसार, स्वत्व में परिणति भाई।
''क्रिया शक्ति'' आतम कि, सर्वदा है सुखदायी।।टेक।।

ॐ ह्रीं क्रियाशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।42।।

जिस शक्ति के हेतू, बने जिनवर शिवकंता।
''कर्म शक्ति'' अविकार, जीव की कही महंता।।टेक।।

ॐ ह्रीं कर्मशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।43।।

निज शक्ती से करे, जीव निर्मल परिणामा।
भव्य सो ''कर्तृशक्ति'', सु जानो सद्गुण धामा।।टेक।।

ॐ ह्रीं कर्तृशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।44।।

चित में शिव पर्याय, करती प्रगट ये शक्ती।
''करण सुशक्ति'' अमोघ, कहती श्री अर्हत् युक्ति।।
निज आतम की शक्ति, प्रकट करने आये हैं।
तुम सम बनने आज, जिनेश्वर अकुलाए हैं।।

ॐ ह्रीं करणशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।45।।

शाश्वत गुण प्रगटाय, आतमा निज शुभ चेतन।
''संप्रदान'' सो शक्ति, बसे चिद् आत्म निकेतन।।टेक।।

ॐ ह्रीं संप्रदानशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।46।।

ध्रौव्य नष्ट ना होय, कभी भी ''अपादान'' से।
नष्ट होय पर्याय, जान ले शुद्ध ज्ञान से।।टेक।।

ॐ ह्रीं अपादानशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।47।।

नित ''संबंध शक्ती'', होती सु भिन्न अभिन्ना।
भिन्न कथन व्यवहार, व निश्चय नित्य अभिन्ना।।टेक।।

ॐ ह्रीं सम्बन्ध-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।48।।

''अधीकरण शक्ति'' से, चित्त आधार स्वरूपा।
निज गुण ले प्रगटाय, सिद्ध सम बने अनूपा।।टेक।।

ॐ ह्रीं अधिकरणशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।49।।

(नलिन छंद) (तर्ज- मैं चंदन बनकर....)

''अस्तित्व शक्ति'' के कारण, द्रव्य कभी ना नाशे।
सब द्रव्यों में ही निश्चित, अस्तित्व नित्य भासें॥
मैं सिद्ध शरण में जाकर, सिद्धों सा बन जाऊँ।
सिद्धों की शरणा पाने, सिद्धों को नित ध्याऊँ॥

ॐ ह्रीं अस्तित्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।50।।

अस्तित्व शक्ति के संगी, ''नास्तित्व शक्ति'' होती।
तिहुँ कालों लोकत्रय में, ज्ञान पुंज ज्योती॥टेक॥

ॐ ह्रीं नास्तित्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।51।।

प्रत्येक द्रव्य की जग में, अर्थक्रिया इक मानो।
''वस्तुत्व'' नाम है उसका, जिन वचनों में जानो॥टेक॥

ॐ ह्रीं वस्तुत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।52।।

ना द्रव्य कभी भी रहता, कूटस्था अनुरूपा।
प्रतिक्षण परिवर्तन होता, ''द्रव्यत्व'' आप्त रूपा॥टेक॥

ॐ ह्रीं द्रव्यत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।53।।

प्रत्येक द्रव्य है निश्चित, ज्ञान विषय तिहुँ काला।
वीरज ''प्रमेय'' पहचानो, अक्षय शुभ गुणमाला॥टेक॥

ॐ ह्रीं प्रमेयत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।54।।

''नित्यत्व शक्ति'' द्रव्यों की, द्रव्य दृष्टि से देखी।
है इतर दृष्टि से निश्चित, इतर रूप जिन लेखी॥टेक॥

ॐ ह्रीं नित्यत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।55।।

पर्याय दृष्टि से जग में, ना नित्य द्रव्य कोई।
''अनित्य शक्ती'' भी जानो, सम्यक् दृष्टी सोई।।
मैं सिद्ध शरण में जाकर, सिद्धों सा बन जाऊँ।
सिद्धों की शरणा पाने, सिद्धों को नित ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं अनित्यत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।56।।

एक ही समय में युगपत्, उभय रूप दृश जानो।
है ''नित्यानित्या शक्ती'', हर द्रव्य मांहि मानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं नित्यानित्यत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।57।।

स्वकीय चतुष्क से नित ही, आतम द्रव्य अभेदा।
''अभेद शक्ती'' को जाने, करके शुद्ध स्वमेधा।।टेक।।

ॐ ह्रीं अभेदत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।58।।

व्यवहार रूप में गुण से, वा पर्याय स्वरूपा।
है अंश और अंशी में, ''भेद शक्ति'' अनुरूपा।।टेक।।

ॐ ह्रीं भेदत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।59।।

''अग्राहक शक्ती'' अनुपम, प्रति द्रव्यनि अलबेली।
पर के गुणधर्म गहे ना, करती निज में केली।।टेक।।

ॐ ह्रीं अग्राहकत्वशक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।60।।

प्रत्येक द्रव्य तिहुँकाला, शक्ति रखे ''परिणामी''।
तिहुँकाल लोक में किंचित्, न होय निष्परिणामी।।टेक।।

ॐ ह्रीं पारिणामिकत्व-शक्तियुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।61।।

महार्घ्य

(द्रुतविलंबित छंद) (तर्ज-उदक चंदन तंदुल....)

प्रकट आत्म सुशक्ति करी विभो।
सुखद वैभव प्राप्त किया प्रभो।।
सकल शक्ति युता भवि हूजता।
प्रकट हो इस हेतु सुपूजता।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

जाप्य- ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः।।

शान्तये शान्तिधारा। दिव्यपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।।

जयमाला

(तरलनयन छंद)

शिव प्रगट करि निज शकति, मन करत हरसत भगति।
मम शकति करत विकसत, शिव भगति रस हि बरसत।।

(रथोद्धता छंद) (तर्ज-धर्म तीर्थ मनघं..../चालीसा चाल)

सिद्ध सद्म मधि नित्य राजते, ज्ञान आदि गुण युक्त साजते।
लोक अग्र तव वास है सदा, आत्मलीन शिव शाश्वता मुदा।।1।।

आत्मशक्ति प्रकटाय सर्वदा, हे जिनेन्द्र तुम नित्य शर्मदा।
आप सा भविक आप भक्ति से, हो विवाह वर वाम मुक्ति से।।2।।

सिद्ध चक्र करते सु भाव से, पार होय भवि भक्ति नाव से।
सिद्ध मध्य शिव हो विराजते, नंत ज्ञान सुख दर्श पावते।।3।।

नंत आत्मगुण आप में सदा, कर्म शत्रु करि आत्म से विदा।
देव सिद्ध शत इंद्र अर्चिता, भव्य भक्त नित गुण्य चर्चिता।।4।।

ज्ञान दर्श चिति शक्ति संयुता, वीर्य स्वच्छ अरु निष्क्रिया युता।
नंतधर्म करमा विभुत्व है, कर्तृ भाव अगुरु प्रभुत्व है।।5।।

सौख्य जीव परिणम्य युक्त है, सुप्रकाश परिणामकत्व है।
एक तत्त्व व विरुद्ध शक्ति है, आत्म माँहि जिन नेक शक्ति है।।6।।

भावभाव व अभावभाव है, वा अभाव व स्वभाव भाव है।
संप्रदान करणादि शक्तियाँ, आत्मशुद्ध करने सुयुक्तियाँ।।7।।

आत्मशक्ति निज में प्रकाशना, होय नित्य निज आत्मभावना।
सिद्ध भक्ति भवतारती सदा, भव्य संकट निवारती मुदा।।8।।

सिद्धचक्र शुभ भक्ति से रचूँ, अर्चना करि भवाब्धि से बचूँ।
आ रमो प्रभु ममात्मदेश में, हो विहार मम सिद्ध देश में।।9।।

ॐ ह्रीं आत्मशक्ति–संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

(चउबोला छंद)

भाव सहित सिद्धों का अर्चन, भव भव दुःख विनाशक है।
सिद्धदेश वासी की भक्ती, चिद्‌गुण पूर्ण विकासक है।।
अति निर्मल निज भाव बनाकर, सिद्धार्चन करने आया।
तीव्र पुण्य का उदय सु पाकर, पाई जिनशासन छाया।।

।। इत्याशीर्वादः ।।

अथ चतुर्थकोष्ठोपरि दिव्य-मंगल-पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

चतुर्थ पूजन

स्थापना

(वसंततिलका छंद) (तर्ज-भक्तामर-प्रणत मौलि....)

होवे सदा सुतप से शुभ प्राप्त ऋद्धी,
देती महा अतिशयी निषकांक्ष सिद्धी।
जो संयमी जन हुए शिव क्षेत्र वासी,
आह्वान नित्य करता निज आत्मवासी।।

ॐ ह्रीं ऋद्धिपरमफलयुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं ऋद्धिपरमफलयुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं ऋद्धिपरमफलयुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणम्।

अष्टक

(भुजंगी छंद) (तर्ज-तुम्हारी नजर क्यों खफा.../नरेन्द्रं फणेन्द्रं...)

यती चित्त सा नीर लेके प्रभो!,
जरा जन्म मृत्यू नशाने विभो।
महा सिद्ध अर्चा, करूँ भक्ति से,
गुणों को सुपाऊँ, मिलूँ मुक्ति से।।

ॐ ह्रीं ऋद्धिपरमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

धरूँ गंध सिद्धों कि चर्णा सदा।
नशूँ ताप संसार का हो मुदा।।टेक।।

ॐ ह्रीं ऋद्धि–परमफल–युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः संसार–ताप–विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

शुभा अक्षता ले जजूँ नाथ को,
लहूँ शाश्वता सिद्ध के साथ को।
महा सिद्ध अर्चा, करूँ भक्ति से,
गुणों को सुपाऊँ, मिलूँ मुक्ति से।।

ॐ ह्रीं ऋद्धि–परमफल–युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽक्षयपद–प्राप्तयेऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

लिए पुष्प गंधी सदा आवता।
बनूँ शीघ्र निष्काम ये चाहता।।टेक।।

ॐ ह्रीं ऋद्धि–परमफल–युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः कामबाण–विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

सुमिष्ठान्न नैवेद्य हो अर्पिता।
सुसिद्धेश पूजूँ शतेन्द्रार्चिता।।टेक।।।

ॐ ह्रीं ऋद्धि–परमफल–युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः क्षुधारोग–विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

करूँ दीप से सिद्ध की आरती।
भवी जीव के मोह को वारती।।टेक।।

ॐ ह्रीं ऋद्धि–परमफल–युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो मोहान्धकार–विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

दशांगी बना धूप मैं खेवता।
बनूँ सिद्ध सा सिद्ध को सेवता।।टेक।।

ॐ ह्रीं ऋद्धि–परमफल–युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽष्टकर्म–दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

फलों को चढ़ा मोक्ष गामी बनूँ,
सदा चेतना के गुणों में सनूँ।
महा सिद्ध अर्चा, करूँ भक्ति से,
गुणों को सुपाऊँ, मिलूँ मुक्ति से।।

ॐ ह्रीं ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महामोक्ष-फल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

मिला नीर आदी बना अर्घ्य है।
जजे पाय निर्वाण वा स्वर्ग है।।टेक।।

ॐ ह्रीं ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

92 ऋद्धि अर्घ्य

बुद्धि ऋद्धि अर्घ्य

(विदित छंद) (तर्ज-श्री वीर महाअतिवीर....)

ऋद्धी परमा उत्कृष्ट, केवलज्ञान कही।
तप से पावें मुनि शुद्ध, शाश्वत मोक्ष मही।।
ऋद्धी फल युक्त अनंत, सिद्धों का वंदन।
करके होवें शिवकंत, जिनपद अभिनंदन।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञान-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

देशावधि ज्ञान विशिष्ट, तपधारी पावें।
सुज्ञान क्षयुपशम लब्ध, शिवमार्गी ध्यावें।।टेक।।

ॐ ह्रीं देशावधिज्ञान-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

परमावधि ज्ञान विशिष्ट, तद्भव मुनि लहते।
आतापन आदिक योग, करके निज रहते।।टेक।।

ॐ ह्रीं परमावधिज्ञान-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

सर्वावधि ज्ञान महान, नंत लोक जाने।
केवलवत् नित्य विशुद्ध, निश्चित शिव आने।।
ऋद्धी फल युक्त अनंत, सिद्धों का वंदन।
करके होवें शिवकंत, जिनपद अभिनंदन।।

ॐ ह्रीं सर्वावधिज्ञान-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

है नंत अवधि सुखकार, अंत रहित जानो।
होवे स्वभाव प्रत्यक्ष, निज में निज ध्यानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं अनंतावधिज्ञान-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

परगत अति सूक्ष्म विचार, पर मन में सोहे।
जाने मनपर्यय ज्ञान, ऋजुमति शुभ मोहे।।टेक।।

ॐ ह्रीं ऋजुमति-मन:पर्यय-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

है वक्र सरल द्वय भेद, रूप उभय चिंतन।
शुभ विपुलमती सद्ज्ञान, लह केवलदर्शन।।टेक।।

ॐ ह्रीं विपुलमतिमन:पर्यय-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

इक बीज रूप पद पाय, ज्ञान सुश्रुत पावें।
है बीज बुद्धि गुणखान, नित अघ दहकावें।।टेक।।

ॐ ह्रीं बीजबुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

है कोष्ठ बुद्धि अविकार, बहुविध ज्ञान धरे।
ज्यों धान्य युक्त प्रासाद, त्यों मन विमल करे।।
ऋद्धी फल युक्त अनंत, सिद्धों का वंदन।
करके होवें शिवकंत, जिनपद अभिनंदन।।

ॐ ह्रीं कोष्ठबुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

सुनकर गुरुवर उपदेश, इक पद बीज धरें।
जाने अग्रिम जिन ग्रंथ, अनुसारी सु वरें।।टेक।।

ॐ ह्रीं अनुसारी बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।10।।

पश्चिम आगम का ज्ञान, गुरुवच से पावें।
प्रतिसारी बुद्धि महान, भविजन नित ध्यावें।।टेक।।

ॐ ह्रीं प्रतिसारी बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।11।।

शुभ उभय सारिणी ऋद्धि, गुरु बिन संभव ना।
श्रुत सागर में अवगाह, लहते भव दुख ना।।टेक।।

ॐ ह्रीं उभयसारिणी-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।12।।

संभिन्न श्रोतृ शुभ ऋद्धि, श्रवणनि शक्ति कही।
दूरस्थ क्षेत्र के शब्द, सुन उत्तर देही।।टेक।।

ॐ ह्रीं संभिन्न-संश्रोतृत्व-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।13।।

दूरस्थ स्वादि ये ऋद्धि, संख्यातों योजन।
बहि जाने रस आस्वाद, वंदूँ वर मुनिजन।।टेक।।

ॐ ह्रीं दूरस्वादित्व-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।14।।

दूरस्थ वस्तु का स्पर्श, जानन में शक्या।
है ऋद्धि विलक्षण जान, जानें ते विज्ञा॥
ऋद्धी फल युक्त अनंत, सिद्धों का वंदन।
करके होवें शिवकंत, जिनपद अभिनंदन॥

ॐ ह्रीं दूरस्पर्शत्व-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥15॥

उत्कृष्ट क्षेत्र से बाह्य, संख्यातों योजन।
ले गंध सु दूरहु घ्राण, वंदूँ तिन यतिजन।।टेक॥

ॐ ह्रीं दूरघ्राणत्व बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥16॥

दूरस्थ वस्तु ऋषिराज, देखत होय मुदा।
तप का प्रभाव सु महान, तप ना दुखद कदा।।टेक॥

ॐ ह्रीं दूरदर्शित्व-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥17॥

अत्यंत दूर क्षेत्रस्थ, प्राणी शब्द सुनें।
ते मुनिवर पूज्य महान, दूरश्रवण चुनें।।टेक॥

ॐ ह्रीं दूरश्रवणत्व-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥18॥

(विष्णुपद छंद) (तर्ज-कहाँ गये चक्री..../तेरी छत्रच्छाया....)

पूरव भव में विनय भाव से, श्रुताभ्यास करके।
ज्ञान क्षयोपशम भव्य पावें, मिथ्या तम हरके॥
औत्पत्तिकी बुद्धी सुऋद्धी, प्रज्ञ श्रमण जानो।
ऐसे श्रमण ऋद्धिधारी के, चरण हृदय आनो॥

ॐ ह्रीं औत्पत्तिकी-प्रज्ञाश्रमणत्व-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥19॥

ज्ञानावरणी कर्म उदय में, जब जब ही आवे।
तम अज्ञान करे पैदा फिर, ज्ञान सु विनशावे।।
क्षयोपशम वर पाकर तपसी, निज निज ज्ञान धरे।
पारिणामिकी बुद्धि ऋद्धि पा, भवदधि शीघ्र तरे।।

ॐ ह्रीं पारिणामिकी-प्रज्ञाश्रमणत्व-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।20।।

द्वादशांग की विनय नित्य करि, गुरु पद की सेवा।
विनय भाव रख धर्म आयतन, पा सुश्रुत मेवा।।
बुद्धि ऋद्धि वैनयिकी मानी, ज्ञानी का लक्षण।
विनय भाव से कर्म नशे अरु, मिले नंद तत्क्षण।।

ॐ ह्रीं वैनयिकी-प्रज्ञाश्रमणत्व-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।21।।

बुद्धि कर्मजा ऋद्धि अनूपम, तप कर है मिलती।
अथवा निज गुरुवर सेवा से, ज्ञान कली खिलती।।
गुरुपद सेवा महातपस्या, करें शिष्य मन से।
श्रुत केवलि वे होय नियम से, छूटे बंधन से।।

ॐ ह्रीं कर्मजा-प्रज्ञाश्रमणत्व-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।22।।

है वादित्व ऋद्धि लोकोत्तर, अति प्रभावशाली।
करे निरुत्तर वादी को भी, ये गौरवशाली।।
शुभ वादित्व ऋद्धि के धारक, लोक पूज्य भगवन्।
संशय विभ्रम मोह नशाने, करता पद अर्चन।।

ॐ ह्रीं वादित्व-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।23।।

दश पूर्वीत्व ऋद्धि के धारक, मुनिवर श्रुत ज्ञानी।
आज्ञा ना दे विद्याओं को, ते वर निज ध्यानी।।
दस पूर्वित्व अभिन्न ऋद्धि को, हम भी पा जावें।
पंचगुरू का अर्चन करके, सिद्धों को ध्यावें।।

ॐ ह्रीं दशपूर्वित्व बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।24।।

पूर्वचतुर्दश जिन आगम के, कुशल श्रमण ज्ञानी।
जो जानन में नित्य समर्था, निज आतम ध्यानी।।
ऋद्धी पूर्व चतुर्दश निश्चित, शिव सुख की सेतू।
गुरु वंदन श्रुत विनय नित्य कर, यही मोक्ष हेतू।।

ॐ ह्रीं चौदहपूर्वित्व-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।25।।

पर उपदेश बिना ही जग में, महा पुरुष ज्ञानी।
तीर्थंकर आदिक जग में वे, हों केवलज्ञानी।।
स्वयं बुद्ध लोकोत्तर भगवन्, भव वारिधि तारक।
इनकी सेवा भक्ति अर्चना, शिव सुख की कारक।।

ॐ ह्रीं स्वयंबुद्ध-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।26।।

गुरु उपदेश बिना ही जिसका, तप वर्धित होता।
तपो ऋद्धि से निश्चित जिसका, ज्ञान प्रकट होता।।
शुभ प्रत्येक ऋद्धि के धारक, ऋषिगण अघहारी।
राग द्वेष को मंद करें पद, पावें अविकारी।।

ॐ ह्रीं प्रत्येक-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।27।।

वसुविध मान करें ये मर्दन, ज्ञानसिंधु पावें।
लोकोत्तर वसु पाय निमित्ता, अंग बोधि भावें।।
अष्ट अंग नैमित्तिक गुरु को, निज वसु गुण पाने।
सिद्ध चक्र की पूजन करता, निज अघ विनशाने।।

ॐ ह्रीं अष्टांगमहानिमित्त-बुद्धि-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।28।।

मनुज और तिर्यंच जीव के, तन लक्षण लखकर।
स्थूल कृशित लघु दीर्घ काय वा, धातु आदि लखकर।।
अंगों से उत्पन्न ज्ञान जो, निमित्तांग भासी।
तिन मुनिवर की पूजा कर हम, पावें गुण राशी।।

ॐ ह्रीं अंगनिमित्त-ज्ञान-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।29।।

नर तिर्यंच जनित वाणी को, सुनकर मुनिदेवा।
रुक्ष परुश लघु दीर्घ शब्द सुनि, लहते गुण सेवा।।
नवरस सप्त स्वरादिक सुनकर, हानि लाभ जानें।
अन्य भावि बातों को भी मुनि, क्षण में पहचानें।।

ॐ ह्रीं स्वरनिमित्त-ज्ञान-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।30।।

मानुष अरु तिर्यंच देह पर, विद्यमान लक्षण।
तिल भौरी लहसुन चकरी अरु, मस्सादिक व्यंजन।।
धनुष चंद्र रवि मीन युगल ध्वज, स्वस्तिक शुभ अंका।
भावि शुभाशुभ सब फल जाने, श्री मुनि निःशंका।।

ॐ ह्रीं व्यंजन-निमित्त-ज्ञान-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।31।।

छिन्न वस्त्र उपकरण अस्त्र वा, शस्त्र भवन वाहन।
अंग उपांग शब्द पद वाक्या, अन्य इतर साधन॥
काल अनागत संबंधी शुभ, अशुभ आदि जो भी।
फल क्षण भर में जानें मुनिवर, शिवनायक वो भी।

ॐ ह्रीं छिन्न-निमित्तज्ञान-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधि-पतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।32।।

भू निमित्त ज्ञानी श्री मुनिवर, पा तप से ऋद्धी।
संयम तप अरु ज्ञान ध्यान की, होवे नित वृद्धी॥
भू का वर्ण व गंध फास रस, अनुभूती करके।
कहे शुभाशुभ फल वे निश्चित, पाप कर्म हनके॥

ॐ ह्रीं भौमनिमित्त-ज्ञान-ऋद्धि-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधि-पतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।33।।

लक्षण निमित ज्ञान के ज्ञाता, लक्षण युग लखकर।
जीवाजीव द्रव्य में देखें, दुखद अंक सुखकर॥
सामुद्रिक ग्रंथानुसार मुनि, लघु व दीर्घ अंगा।
शुभ व अशुभ फल कहते मुनिवर, तपसी निःसंगा॥

ॐ ह्रीं लक्षण - निमित्तज्ञान - ऋद्धि - परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।34।।

सूर्यचंद्र ग्रह भानि तारिका, अरु उल्का पिंडा।
गमनागमन मनुष्य लोक में, देखें आनंदा॥
चार क्षेत्र गति उदय अस्त वा, ग्रहण काल लखकर।
मंगल होय अमंगल फल वा, जानें मुनि गणधर॥

ॐ ह्रीं अंतरिक्ष - निमित्त - ज्ञान - ऋद्धि - परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।35।।

मालारोहण छिन्न रूप वा, उभय स्वप्न जानो।
सम्यक् मिथ्या उभय रूप में, स्वपर रूप मानो।।
दिवस और तिथि पहर देखकर, कहें शुभाशुभ को।
ऋद्धीधर संयमी मुनीश्वर, धोवें अघमल को।।

ॐ ह्रीं स्वप्ननिमित्त - ज्ञान - ऋद्धि - परमफल - युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।36।।

विक्रिया ऋद्धि अर्घ्य

(कुण्डलिया छंद) (दोहा + रोला)

ऋद्धि सुतप से प्राप्त हो, तपसी सहज स्वभाव।
कर्म विनाशन तप तपें, ऋद्धी मध्य पड़ाव।।
ऋद्धी मध्य पड़ाव, कृषक को भूसा भासे।
धान्य समा शिव मान, श्रमण निज में नित रासें।।
है ''विक्रिया'' विशिष्ट, उससे भी निज की सिद्धि।
करो यतन विधि छेद, त्याग सभी लौकिक ऋद्धि।।

ॐ ह्रीं विक्रिया - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।37।।

जिनशासन में तप कहा, तीन लोक परधान।
यथा दिगंबर यति तपें, कहे विश्व भगवान्।।
कहे विश्व भगवान्, कर्म के हंता स्वामी।
अणु स्वरूप निज देह, बना सकते निष्कामी।।
''अणिमा ऋद्धी'' युक्त, करें निज आतम शासन।
करूँ त्रिकाल प्रणाम, धरें निज उर जिनशासन।।

ॐ ह्रीं अणिमा - विक्रिया - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।38।।

निर्ग्रंथी जग में महा, तीन लोक सम्राट।
शब्दों में को कह सके, उनका विभव विराट॥
उनका विभव विराट, लोक में अतिशयकारी।
करें मेरु सम देह, ऋद्धि महिमा सुखकारी॥
जो गुरु ''महिमा'' गाए, भव्य वह भी शिवपंथी।
यदि चाहे मुक्ती तो तू हो जा निर्ग्रंथी॥

ॐ ह्रीं महिमा - विक्रिया - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥39॥

तपसी तपकर देह निज, अर्कतूल सम पाय।
श्रेष्ठ ''लघिमा ऋद्धि'' कही, आगम में जिनराय॥
आगम में जिनराय, कही लघुता शिव - माता।
सकल सुखों की सार, विनय देती सुख साता॥
रत्नत्रय को धार, ज्ञान तनु पाए शिवसी।
अहंकार को त्याग, घोर तप करता तपसी॥

ॐ ह्रीं लघिमा - विक्रिया - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥40॥

करते तन को वज्र सा, गुरु गुण गरिमावान।
गुण गरिष्ठ गौरव बढ़े, गरिमा ऋद्धि प्रधान॥
''गरिमा ऋद्धि'' प्रधान, लोक में शिव सम देखी।
तप धारें मुनिराय, सहज निज चित में लेखी॥
कहि निर्ग्रंथ गणेश, गुरू रज जो उर धरते।
सकल द्वंद अघ नाश, यत्न विधि भव क्षय करते॥

ॐ ह्रीं गरिमा - विक्रिया - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥41॥

सर्व अर्थ को भोगने, जिनकी शक्ति महान।
''ईशत्व ऋद्धि'' जे लहें, वे ईश्वर भगवान।।
वे ईश्वर भगवान, स्वयं पर संयम धरते।
निज आतम उत्पन्न, सहज सुख निश्चित वरते।।
लौकिक वस्तू पाय, नाश तू निज मन गर्वा।
लघुता जननी ईश कि पा चेतन गुण सर्वा।।

ॐ ह्रीं ईशत्व-विक्रिया-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।42।।

देखा अनुपम तप विभव, पुण्य वस्तु अमलान।
ऋद्धि वशित्व सु पा सकें, तपसी धर वृष ध्यान।।
तपसी धर वृष ध्यान, शरण सब जीवहुँ पावें।
वश सब जीव समूह, ऋषीवर के हो जावें।।
है अचिन्त्य परभाव, जगत् में तप की रेखा।
नाहिं दुर्लभ कोय, वस्तु तप सन्मुख देखा।।

ॐ ह्रीं वशित्वविक्रिया-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।43।।

धारें रूप अनेक शुभ, ''काम रूप'' परभाव।
तप की शक्ति अचिन्त्य है, भव सुख दे निज भाव।।
भवसुख दे निज भाव, कर्म की कारा तोड़े।
चिन्मय निज उपयोग, स्वत्व स्वातम से जोड़े।।
करि इच्छा निःशेष, घातिया विधि संहारें।
अर्हत् पदवी पाय, अनंतर मोक्ष सिधारें।।

ॐ ह्रीं कामरूपित्वविक्रिया - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।44।।

''अप्रतिघाती ऋद्धि'' शुभ, अनुपम कारज हेत।
बादर तन धर भी सदा, किरिया सूक्ष्म समेत।।
किरिया सूक्ष्म समेत, गमन गिरि शिल में होवे।
ज्यों थल वा नभ में गमन निर्द्वंद ही होवे।।
तप करते मुनिराज, ऋद्धि हो उनकी साथी।
घाति कर्म को घात, ऋद्धि पा अप्रतिघाती।।

ॐ ह्रीं अप्रतिघातविक्रिया-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।45।।

''ऋद्धी अंतर्धान'' शुभ, करती अदृश्य देह।
निःकांक्षित साधक सदा, चाहे होय विदेह।।
चाहे होय विदेह, आत्मरत अंतर्ध्याना।
कर्म रिपु संहारे, लहें वे पद निर्वाणा।।
दुर्लभ कहीं न होय, दमी को आतम सिद्धी।
यथाजात निर्ग्रंथ, लहे संपूरण ऋद्धी।।

ॐ ह्रीं अंतर्धानविक्रिया-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।46।।

''प्राप्ति ऋद्धि'' पाकर श्रमण, प्राप्त करे गुणखान।
वसुधा पर तिष्ठे हुए, करि संस्पर्श विमान।।
करि संस्पर्श विमान, मानगत होकर स्वामी।
दिग्वासा सम कौन, जगत् में मुनि निष्कामी।।
कैसे महिमा कहूँ, तप से ऋद्धि संप्राप्ती।
वसुविध कर्म मरोड़, करूँ शिवगुण की प्राप्ती।।

ॐ ह्रीं प्राप्तिविक्रिया-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।47।।

''प्राकाम्या ऋद्धी'' कही, चमत्कार दिखलाय।
थल पर जलवत् वे चलें, जल में थलवत् भाय।।
जल में थलवत् भाय, गगन ना बने विरोधी।
धन्य यति हृषीकेश, नित्य निज आतम शोधी।।
कहे चित्त अकुलाय, धरो निज भाव सुसाम्या।
नाम काम अघ धाम, छोड़ लख शुभ प्राकाम्या।।

ॐ ह्रीं प्राकाम्यविक्रिया-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।48।।

क्रिया ऋद्धि अर्घ्य

(छंद-मुकुलोत्तर) (तर्ज-मेरे यार सुदामा रे....)

''किरिया ऋद्धी'' द्वैविध जानो, ख[1] गामी अरु चारण मानो।
देह गमन खगवत् जो करते, किंचित् न हि कर्म से बंधते।।
शुभ भाव बनाऊँ रेऽऽ, सिद्धों के गुण को गाके।
वर सिद्धी पाऊँ रे, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं क्रियाचारण-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।49।।

कायोत्सर्ग व अन्यासन से, गगन विहार करें शुभ मन से।
ऋद्धी ''नभगामित्व'' कहाए, आत्मरमण भी मुनि कर पाए।।
निज कर्म नशाऊँ रे, जिनवर तेरे दर आके।
वर सिद्धी पाऊँ रे, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं आकाशगामित्व-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।50।।

किंचित् जीव घात ना होवे, घन धारा पर गमन सु होवे।
''धारा चारण ऋद्धी'' जानो, महा उपलब्धि तप की मानो।।

1. आकाश

निज आतम ध्याऊँ रे, संयम गुण निधि को पाके।
वर सिद्धी पाऊँ रे, सिद्धों की पूज रचाके॥

ॐ ह्रीं धाराचारण-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥51॥

अनल लपट पर थल सम चालें, अग्निकायिक प्राण सम्हालें।
जीव घात ना किंचित् होवे, ''ऋद्धी अग्नि चरण'' अघ धोवे॥
ध्यानाग्नि जलाऊँ रे, निज अंतर तिमिर भगाने॥टेक॥

ॐ ह्रीं अग्निचारण-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥52॥

नभ में मेघों के नित ऊपर, चालें ऋषिवर यथा मही पर।
होवे जीव घात ना किंचित्, आत्म पुष्ट हो शुभ से सिंचित्॥
अक्षय सुख पाऊँ रे, ऋषिवर की महिमा गाके॥टेक॥

ॐ ह्रीं मेघचारण-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥53॥

भू सम मरुत् मार्ग में चलते, पुण्य सहज आतम में फलते।
''मारुत चारण ऋद्धी'' भासी, जो पावें ते आत्म प्रकाशी॥
चिन्मय निधि पाऊँ रे, ऋषिवर के गुण को ध्याके॥टेक॥

ॐ ह्रीं मारुतचारण-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥54॥

मकड़ी जाले पर चल मुनिवर, श्रेष्ठ ''तंतु चारण'' ऋद्धीधर।
ऋद्धी का प्रभाव शुभ जानो, निज आतम वीरज पहचानो॥
निज शक्ति पाऊँ रे, अब संयम निधि को पाके॥टेक॥

ॐ ह्रीं तंतुचारण-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥55॥

गमन करें मुनि फल के ऊपर, ज्यों प्राणी करता है भू पर।
फल में किंचित् कंप न होवे, ''फल चारण'' ऋद्धीश्वर मोहे॥

संयम फल पाऊँ रे, फल यति पद अर्पित करके।
वर सिद्धी पाऊँ रे, सिद्धों की पूज रचाके॥

ॐ ह्रीं फलचारण-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥56॥

पुष्पदलों पर कोमल पग से, विचलित ना होके शिवमग से।
किंचित् जीव कष्ट ना होवे, चालें ''पुष्पचरण'' यति सोहे॥
गुणवर्धन पाऊँ रे, निज मन को सुमन बनाके॥टेक॥

ॐ ह्रीं पुष्पचारण-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥57॥

कोमल कोंपल किसलय पत्ते, ऋद्धीधर मुनिवर तहँ चलते।
कष्ट न जीव मात्र को होवे, ''पत्रचरण'' ऋद्धी अघ धोवे॥
शिवनिधि को पाऊँ रे, निज गुण वृद्धिंगत करके॥टेक॥

ॐ ह्रीं पत्रचारण - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥58॥

''बीज चरण ऋद्धी'' अति प्यारी, मुनिवर ते अघ नाशनहारी।
सहज गमन ऋद्धीश्वर करते, अतिशय पुण्य खजाना भरते॥
मुक्ती पद पाऊँ रे, रत्नत्रय पालन करके॥टेक॥

ॐ ह्रीं बीजचारण - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥59॥

''जल चारण'' भवतारण ऋद्धी, निज चेतन में हो गुण वृद्धी।
जल संस्पर्श नहीं वे करते, किंचित् जीव घात ना करते॥
सब पाप नशाऊँ रे, मुनिवर का ध्यान लगाके॥टेक॥

ॐ ह्रीं जलचारण - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥60॥

चतुरंगुल वसुधा से ऊपर, गमन करें वे सहज अधर पर।
घुटने श्रमण कभी नहिं मोड़ें, निज आतम से नाता जोड़ें।।
शिव वसुगुण पाऊँ रे, गुरु पदरज शीश लगाके।
वर सिद्धी पाऊँ रे, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं जंघाचारण - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।61।।

चतुरंगुल से ऊपर नभ में, रमण करें नित आत्म विभव में।
किंचित् जीव घात ना संभव, सिद्ध बनें वे नाश पंच भव।।
भव भ्रमण नशाऊँ रे, मुनिगुण में चित्त लगा के।।टेक।।

ॐ ह्रीं नभचारण - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।62।।

''श्रेणी चारण ऋद्धि'' अनूपम, पर्वत अग्नि धूम अरु तरु सम।
ऊपर गमन करें अविकारी, श्रेणी चारण ऋद्धी धारी।।
निर्मल चित्त बनाऊँ रे, ऋषिवर को शीश झुकाके।।टेक।।

ॐ ह्रीं श्रेणीचारण - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।63।।

ज्योतिष ग्रह रश्मी अवलंबा, गमन करें मुनि धर्मस्तंभा।
जिन शासन की शान बढ़ावें, नंतर मोक्ष नियम से पावें।।
शिववधु परिणाऊँ रे, जिन शासन ध्वज लहराके।।टेक।।

ॐ ह्रीं ज्योतिषचारण-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।64।।

विस्तारित हो धूम समूहा, गमन करें मुनिवर बिन ऊहा।
धूम अग्नि में कर्म जलावें, निश्चित मुक्ति रमा परिणावें।।
निज गुण प्रगटाऊँ रे, चउघातिक कर्म नशाके।।टेक।।

ॐ ह्रीं धूमचारण - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।65।।

तप ऋद्धि अर्घ्य

(गीतिका छंद) (तर्ज–नव देवताओं की....)

उग्रतप अति उग्र करते, ''उग्र तप ऋद्धी'' कही।
पूजकर मुनिराज को अब, प्राप्त हो अष्टम मही।।
श्रेष्ठ तप के धारि मुनिवर, नाश वसु विधि का करें।
पूजते जो भव्य निश्चित, मुक्ति वामा वे वरें।।

ॐ ह्रीं उग्रोग्र–ऋद्धि–परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।66।।

आमरण उपवास करते, बढ़ते क्रम में ही यति।
उग्र तप ऋद्धी ''अवस्थित'', करो हमारी शुभ मति।।टेक।।

ॐ ह्रीं अवस्थितोग्र–ऋद्धि–परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।67।।

जदपि तन में रोग व्यापें, तदपि तप करते घना।
''घोर तप'' शुभ ऋद्धि धारी, भक्ति रस में मैं सना।।टेक।।

ॐ ह्रीं घोरतप–ऋद्धि–परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।68।।

घोर तप ''ऋद्धी पराक्रम'', शक्ति अनुपम जो लहें।
कर सकें त्रैलोक शोभित, भक्ति कर निज विधि दहें।।टेक।।

ॐ ह्रीं घोरपराक्रम–ऋद्धि–परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।69।।

अघोर तप मुनिराज धारें, लोक मंगल नित करें।
विघ्न युद्ध अनिष्ट सारे, पूजते ही परिहरें।।टेक।।

ॐ ह्रीं अघोर–ब्रह्मचर्य–ऋद्धि–परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।70।।

तप करें घोरातिघोरं, देह द्युति रवि सम धरें।
''दीप्त तप'' शुभ ऋद्धि धारी, पूज जग शांती करें।।
श्रेष्ठ तप के धारि मुनिवर, नाश वसु विधि का करें।
पूजते जो भव्य निश्चित, मुक्ति वामा वे वरें।।

ॐ ह्रीं दीप्ततप-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।71।।

''तप्त तप ऋद्धि'' के धारक, मल कभी ना त्यागते।
देह मन निर्मल रहे मुनि भक्त के अघ भागते।।टेक।।

ॐ ह्रीं तप्ततप-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।72।।

चार ज्ञानी शक्ति पावें, सर्व तप की जो महा।
पूजकर ''महऋद्धि तप'' को, नंतगुण पावें अहा।।टेक।।

ॐ ह्रीं महातप-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।73।।

बलऋद्धि अर्घ्य

(छंद-द्रुम जयंत) (तर्ज- जगत में जिसका....)

''मन बल ऋद्धी'' धारक मुनिवर, पुण्य पुरुष अधिकारी।
मुहूर्त प्रमाण काल में चिंतें, द्वादशांग सुखकारी।।
ऐसे ऋषिवर को, नितप्रति धोक हमारी।
जगत् में जिसकी, महिमा है अतिभारी।।

ॐ ह्रीं मनोबल-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।74।।

''ऋद्धि वचन बल'' के जो धारक, द्वादशांग उच्चारें।
मुहूर्त मात्र काल में श्रम बिन, पूजक भाव संभारें।।

तिनके चरणों को, नितप्रति भव्य पखारें।
जगत् के प्राणी, अपने भाव निखारें।।

ॐ ह्रीं वचनबल-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।75।।

''तन बल ऋद्धी'' के धारक ऋषि, वीरज ऐसा पावें।
उठा सकें त्रयलोक कनिष्ठा, पर ना कभी उठावें।।
ऐसे ऋषिवर को, नितप्रति धोक हमारी।
जगत् में जिसकी, महिमा है अतिभारी।।

ॐ ह्रीं कायबल-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।76।।

औषधि ऋद्धि अर्घ्य

(चउबोला छंद) (तर्ज-शायद प्रभु की भक्ति....)

जिन मुनि संस्पर्शन रोगी को, रोग मुक्त कर देता है।
''आमर्षौषधि ऋद्धि'' कहाती, पूजक भव सुख लेता है।।
विविधौषधि ऋद्धी के धारी, ऋषिवर भगवन् से भासें।
पूजा अर्चा जो करते हैं, सकल कर्म उनके नाशें।।

ॐ ह्रीं आमर्षौषधि-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।77।।

क्ष्वेल और सिंघाण आदि भी, औषधि सम ही बनें सदा।
''क्ष्वेलौषधि'' यति के वंदन से, नहीं सतावें दु:ख कदा।।टेक।।

ॐ ह्रीं क्ष्वेलौषधि-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।78।।

स्वेदाश्रित रजकण ऋषिगण के, ''जल्लौषधि'' बन जाते हैं।
भविजन उनकी पूजा करके, रोग मुक्त हो जाते हैं।।टेक।।

ॐ ह्रीं जल्लौषधि-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।79।।

देह जनित सब मल ऋषिगण के, नाम सु औषधि पाते हैं।
''मल-औषधि ऋद्धी'' धारी की, मिलकर पूज रचाते हैं।
विविधौषधि ऋद्धी के धारी, ऋषिवर भगवन् से भासें।
पूजा अर्चा जो करते हैं, सकल कर्म उनके नाशें।।

ॐ ह्रीं मलौषधि-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।80।।

महातपस्वी ऋषीराज की, विष्ठा भी औषधी बने।
इनकी पूजन वंदन अर्चन, भवि के नंतों पाप हने।।टेक।।

ॐ ह्रीं विष्टौषधि-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।81।।

सप्तधातु उपधातु ऋषी की, ''औषधि'' जैसा काम करे।
तन संस्पर्शित नीर पवन भी, जीवों के सब रोग हरे।।टेक।।

ॐ ह्रीं सर्वौषधि-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।82।।

जिन ऋषिगण की सुभग दृष्टि भी, सर्वरोग परिहार करे।
''दृष्टीनिर्विष'' धारी मुनिगण, मेरे उर में वास करें।।टेक।।

ॐ ह्रीं दृष्टिविष-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।83।।

''आशीनिर्विष ऋद्धी'' धारक, वचन मात्र में जहर हरें।
तीन लोक के जीवों को वे, निर्विष और निरोग करें।।टेक।।

ॐ ह्रीं आशीनिर्विष-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।84।।

रस ऋद्धि अर्घ्य

(उल्लाला छंद)

कहते 'जीवो' जीवें सभी, यदि 'मरो' कहें मर जाय।
विष अमृत होय सदा, रस आशीविष मन भाय॥
करके सुऋद्धि का प्राप्त फल, पुनि सिद्धालय बसि जाय।
श्रीसिद्ध चक्र आराधना, भव्य करते मन लाए॥

ॐ ह्रीं आशीर्विष - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥85॥

देखें यदि प्रसन्न दृष्टि से, जीवे सब मंगल होय।
करती अमंगल रोषयुक्त, ''ऋद्धी दृष्टीविष'' सोय॥टेक॥

ॐ ह्रीं दृष्टिविष - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥86॥

यति अंजुलि में रूखा रखा, अथवा नीरस आहार।
मिष्ट दुग्ध सम हो जाय सब, ''क्षीरस्रावी'' उर धार॥टेक॥

ॐ ह्रीं क्षीरस्रावी - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥87॥

महान ''मधुस्रावी ऋद्धी'' युत वंदूँ श्री ऋषिराज।
मुनि के करतल आहार सब, हो मधुर नमूँ मुनिराज॥टेक॥

ॐ ह्रीं मधुस्रावी - ऋद्धि - परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥88॥

जिन यतियों के करतल रखा, होवे आहार घृत सम।
मुनिवर ''सर्पिस्रावी'' युक्त, शुभ चित्त से पूजें हम॥टेक॥

ॐ ह्रीं सर्पिस्रावी-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।89।।

मुनि करतले रूखा सूखा, वा हो नीरस आहार।
हो जाए अमृत सम परिणत, ''अमृतस्रावी'' अविकार।।
करके सुऋद्धि का प्राप्त फल, पुनि सिद्धालय बसि जाए।
श्रीसिद्ध चक्र आराधना, भव्य करते मन लाय।।

ॐ ह्रीं अमृतस्रावी-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।90।।

अक्षीण ऋद्धि अर्घ्य

(शंभु छंद) (तर्ज-हे गुरुवर शाश्वत.../हे वीर तुम्हारे द्वारे पर...)

अक्षीण महानस ऋद्धीबल, से अक्षय भोजन हो जाता।
यदि चक्री सेना भी भुंजे, तो खतम नहीं वह हो पाता।।
ऐसे ''अक्षीण ऋद्धिधारी'', ऋषिवर की पूज रचाते हम।
इनकी पूजन अर्चन वंदन, भविकों को देती सुख सम[1] शम[2]।।

ॐ ह्रीं अक्षीणमहानस-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।91।।

''अक्षीण महालय'' का प्रभाव, लघु कक्ष वृहद सा हो जाता।
चक्री की पूरी सेना हो, फिर भी न कभी वह भर पाता।।टेक।।

ॐ ह्रीं अक्षीणमहालय-ऋद्धि-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।92।।

---

1. समत्व भाव, 2. कषायों का शमन

महार्घ्य

(लोलतरंग छंद) (तर्ज–चालीसा चाल)

ऋद्धि सु तप से आप लही थी, छोड़ उसे निधि सिद्धि गही थी।
सिद्ध सदा निज चित्त बसाता, अर्घ्य चढ़ा शिव के गुण गाता।।

ॐ ह्रीं ऋद्धिपरमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

शान्तये शान्तिधारा ।। दिव्यपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

जाप्य–ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः।

जयमाला

(दोहा)

तप का फल ऋद्धी कही, परम सुफल शिवधाम।
तप से कर्मेन्धन दहा, हुए सिद्ध गुणवान।।

(शेर–चाल) (तर्ज–सावरमती के संत तूने....)

गुणगण विशुद्ध सिद्धगण में नित्य वर्तते,
निज आत्म विहारी निजात्म में प्रवर्तते।
सिद्धों की शुद्ध भक्ति पाप पंक धोवती,
भवि आतमा से कर्म टाल दोष खोवती।।1।।
तुम निर्विकारीसिद्ध तीन लोक में कहे,
निश्चल अमल अपाप पुण्य आत्म में रहें।
निष्काम होने नित्य निःकांक्षिता जजूँ,
चिन्तन परे शिवात्म निधि नित्य ही भजूँ।।2।।
जिनगुण निहारने में कुबुद्धि सदा नशूँ,
भावी सु सिद्ध साधु के सुपाद में बसूँ।
निर्ग्रन्थ भावि सिद्ध सदा ग्रन्थियों से हीन,
वैराग्य भाव धार होय, साधु गुण सुलीन।।3।।

सुपुण्य योग होय सिद्ध अर्चना के भाव,
अश्रु बहें सु हर्ष से जु सुरसरी प्रवाह।
नैनों के शुद्ध नीर से, मम चित्त अभिषिक्त,
आभा लहूँ शिवेश होऊँ मिथ्यातिमिर रिक्त॥4॥
जिनभक्ति के सिवाय मेरे कुछ नहीं है पास,
बन दास आया जिन प्रभु भवतन से हो उदास।
हे देव मेरी नाव को भव पार कीजिए,
कारण बिना सुदृष्टि जिन कृपा हि कीजिए॥5॥
लायक नहीं हूँ भक्ति के, श्रद्धा के फिर भी जोर,
बालक समा निहारता प्रतिपल तिहारी ओर।
ज्यों नित निहारे चातका शीतल मयंक को,
त्यों ही निहारुँ आपको शिशु मात अंक को॥6॥
मेरे कलंक दूर हों निकलंक ही बनूँ,
जबलौं न मोक्ष तबलौं तेरी भक्ति में सनूँ।
मैं अल्पमति गूँथता हूँ आप सुगुणमाल,
बनाओ आप सम हि विरद आपका विशाल॥7॥

(दोहा)

भक्ती शक्ती देय तव, करता भक्त पुकार।
निज गुण चिंतन दीजिए, मम हित का आधार॥

ॐ ह्रीं ऋद्धिपरमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(चउबोला छंद)

भाव सहित सिद्धों का अर्चन, भव भव दुःख विनाशक है।
सिद्ध देशवासी की भक्ती, चिदगुण पूर्ण विकासक है॥
अति निर्मल निज भाव बनाकर, सिद्धार्चन करने आया।
तीव्र पुण्य का उदय सु पाकर, पाई जिनशासन छाया॥

॥ इत्याशीर्वादः ॥

(अथ पंचम-कोष्ठोपरि-दिव्य-मंगल-पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

पंचम पूजन

स्थापना

(शिखरिणी छंद) (तर्ज-महावीर स्वामी नयन पथगामी....)

शिवालै[1] के वासी अधिकरण हीना निज रहें।
निरोधें कर्मों को तिस जिनवरा संवर कहें॥
कृतादी संरंभादिक वचन योगादि सकला।
नशे क्रोधादी भी हुए तन विहीना सु निकला॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरणमुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरणमुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरणमुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम्।

अष्टक

(त्रिभंगी छंद) (तर्ज-वसु द्रव्य सँवारी....)

सुरसरि का नीरं, ले गुण धीरं, गुणगंभीरं, नित्य जजूँ।
नित मंगल चाहूँ, गुण अवगाहूँ, शिव पद पाऊँ, सिद्ध भजूँ॥
सिद्धों का अर्चन, जिन गुण चर्चन, पुनि पुनि वंदन, अविकारी।
बहु ताप नशावे, पाप मिटावे, शिवगृह जावे सुखकारी॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरण-मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

मलयागिरि चंदन, दाह निकंदन, नाशे क्रंदन, अघहर्त्ता।
ना जिन सम दूजा, करि नित पूजा, सिद्ध अनूपा, सुखकर्ता।।टेक।

1. सिद्धालय

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरण-मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः संसार-तापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

शुभ अक्षत धवलं, भाव सु विमलं, अतिशय अमलं, पुंज धरें।
उर भक्ति बसाके, काम नशाके, जिनपद पाके, पाप हरें।।
सिद्धों का अर्चन, जिन गुण चर्चन, पुनि पुनि वंदन, अविकारी।
बहु ताप नशावे, पाप मिटावे, शिवगृह जावे सुखकारी।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरण-मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽक्षय-पद-प्राप्तयेऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

षट्ऋतु के मनहर, पुष्पगंधधर, भक्ती अघहर, नित होवे।
उर भक्ति बसाके, काम नशाके, जिनगुण गाके, अघ धोवे।।टेक।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरण-मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः काम-बाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

शुचिवर पकवानं, शुभ मिष्ठानं, शिवपुरठानं, अनुपम हो।
शिव अमृत पाऊँ, जिनपद ध्याऊँ, नित गुण गाऊँ, निरुपम हो।।टेक।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरण-मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

शुभ गौघृत दीपं, धर्म समीपं, निज उर सीपं, चरण धरूँ।
अघ तिमिर भगाने, स्वात्म जगाने, शिवपद पाने, भक्ति करूँ।। टेक।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरण-मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

शुभ धूप दशांगी, भज भवि अंगी, तज पर संगी, गुण ध्याने।
वसु कर्म मिटाऊँ, पाप जलाऊँ, शिववर ध्याऊँ, शिव पाने।।टेक।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरण-मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

फल श्रेष्ठ मनोहर, महागुणाकर, हनूँ पाप हर, सुखकारी।
जिनपद प्रणमामी, नित्य यजामी, हो निष्कामी, अविकारी।।
सिद्धों का अर्चन, जिन गुण चर्चन, पुनि पुनि वंदन, अविकारी।
बहु ताप नशावे, पाप मिटावे, शिवगृह जावे सुखकारी।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरण - मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महामोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

निज रूप भुलाकर, आत्म सुलाकर, पुण्य जलाकर, दुख झेला।
धरुँ अर्घ सुकारक, शिवमगधारक, कर्मविदारक, अलबेला।।टेक।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरण - मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽनर्घ्यपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

जीवाजीवाधिकरण मुक्त 123 अर्घ्य

(नरेन्द्र छंद) (तर्ज-पीछी रे पीछी....)

कर्मास्रव से रहित सिद्धवर, मुक्तिवधु के कंता।
ऐसे सिद्धों के चरणों में, मेरा नमन अनंता।।
सर्व कर्म के नाशन हेतू, कर्महीन शिव ध्याऊँ।
शुभ भावों से द्रव्य शुद्ध ले, पूजन हित नित आऊँ।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मास्रवमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

जीव अजीव भेद से आस्रव, द्वैविध आगम लेखे।
द्वैविध संवर प्राप्त किया निज, आतम गुण निज देखे।।टेक।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरण-मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

हैं अजीव अधिकरण निमित्ता, भववर्द्धक ये शाश्वत।
सिद्धों ने विनशाकर इनको, पाए निज गुण शाश्वत।।टेक।।

ॐ ह्रीं अजीवाधिकरण - मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

पुद्गल से रचना वस्तू की, निर्वर्तन कहलाती।
आस्रव में अधिकरण अजीवा, आतम हित प्रतिघाती।।
सर्व कर्म के नाशन हेतू, कर्महीन शिव ध्याऊँ।
शुभ भावों से द्रव्य शुद्ध ले, पूजन हित नित आऊँ।।

ॐ ह्रीं मूलगुणनिर्वर्तना - मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

मूल रूप प्रारूप अनंता, उत्तरगुण में जानो।
हो निवर्तना उत्तर गुण की, गुणघाती पहचानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं उत्तरगुणनिर्वर्तना-मुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

चार भेद अधिकरण अजीवा, पुनि निक्षेप सुभासे।
कर्मास्रव अप्रत्यवेक्षिता, कर चेतन गुण नाशे।।टेक।।

ॐ ह्रीं अप्रत्यक्षवेक्षितनिक्षेपमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

दुष्प्रमृष्ट निक्षेप दूसरा, अघ आमंत्रण देता।
कर्मास्रव को रोक भव्य निज, चेतन का सुख लेता।।टेक।।

ॐ ह्रीं दुःप्रमृष्टनिक्षेपमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

सहसा है निक्षेप तीसरा, हो अविवेकी कर्ता।
करता दुरित कर्म का आस्रव, नंतर तिस फल भरता।।टेक।।

ॐ ह्रीं सहसानिक्षेपमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

अनाभोग उपयोग रहितता, है निक्षेप चतुर्था।
कर्मास्रव में मूलहेतु यह, बनूँ कर्म का हर्ता।।
सर्व कर्म के नाशन हेतू, कर्महीन शिव ध्याऊँ।
शुभ भावों से द्रव्य शुद्ध ले, पूजन हित नित आऊँ।।

ॐ ह्रीं अनाभोगनिक्षेपमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

भक्तपान के मिश्रण से भी, आस्रव को बल मिलता।
रागद्वेष की वृद्धी होती, श्याम भानि अघ खिलता।।टेक।।

ॐ ह्रीं भक्तपानसंयोगमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।10।।

मिश्रण उपकरणों का जग में, रागद्वेष का हेतू।
करें साधना निःस्पृह होकर, संवर ही शिव सेतू।।टेक।।

ॐ ह्रीं उपकरणसंयोगमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।11।।

जब-जब असद् काय की चेष्टा, रागद्वेषमय होती।
भववर्द्धक कर्मों की खेती, बीज अनेकों बोती।।टेक।।

ॐ ह्रीं कायनिसर्गमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।12।।

दुष्ट वचन काया वा मन को, नित्य प्रभावित करते।
असद्वचन के कारण प्राणी, दुःख अनंतों भरते।।टेक।।

ॐ ह्रीं वचननिसर्गमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।13।।

जब तक मन में विद्यमान है, रागद्वेष मद मोहा।
तब तक द्रव्य साधना उसकी, करे न आतम सोहा।।टेक।।

ॐ ह्रीं मनःनिसर्गमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।14।।

(छंद-टप्पा) (तर्ज- मोहे राखो हो शरणा...)

कर्मास्रव की महोदधी को, मुझको है अब तरना।
शिव शरणा को पाने हेतू, पाऊँ सद्‌गुरु चरणा।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं जीवाधिकरणमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।15।।

क्रोध संरम्भ कृत हो मन से, जीवास्रव नित हरना।
सिद्धों की अब पूज रचाकर, होवे भवदधि तरना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकृतमनः संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।16।।

क्रोध संरम्भ कृत हो वच से, नित भववर्द्धक चरना।
सर्वास्रव रोके हैं जिनने, मैं पकड़ूँ तिन चरणा।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकृतवचन-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।17।।

क्रोधसंरम्भ कृत काया से, क्यों चेतन अघ भरना।
सिद्ध समान स्वरूप हमारा, अब उन जैसा बनना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकृतकाय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।18।।

क्रोध संरम्भ कारित मन से, धर्मगिरी से गिरना।
तिन सबको तज भक्ति तरणि ले, भवसागर से तरना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकारितमनः संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।19।।

क्रोध संरम्भ कारित वच से, ना भव्यन का डरना।
भव्य जीव अघ भीरु सुनिश्चित, करे गुणातम रचना॥
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकारितवचन-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥20॥

क्रोध संरम्भ कारित तन से, मिथ्यात्रय में पड़ना।
जिन श्रुत मुनि की शरण सु पाकर, लहे ज्ञान शुभ किरणा॥
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकारितकाय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥21॥

क्रोध संरम्भ अरु अनुमोदन, मन से भव दु:ख बढ़ना।
सद्‌गुरु की भक्ती नौका पर, चढ़ भवदधि तू तरना॥
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधानुमतमन:संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥22॥

क्रोध संरम्भ अरु अनुमोदन, वचन अशुभ उच्चरना।
दिव्य-ध्वनि सुनि तीर्थंकर की, अशुभ वचन निज तजना॥
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधानुमतवचन-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥23॥

क्रोध संरम्भ अरु अनुमोदन, काया भव-भव फिरना।
भव फेरे के मेटन हेतू, गहूँ शरण जिन चरणा॥
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधानुमतकाय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥24॥

क्रोध समारंभा कृत मन से, क्यों भव दुख में पड़ना।
निज वैभव को पाने हेतू, कर्मों से अब लड़ना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकृतमनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।25।।

क्रोध समारंभा कृत वचना, पा गुणनिधि का जलना।
शाश्वत जिनवचनामृत पाकर, भवाताप क्यों तपना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकृतवचन-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।26।।

क्रोध समारंभा कृतकाया, से अघ गैल फिसलना।
जिनमुद्रा को मन से लख ले, अघ का होय पिघलना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकृतकाय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।27।।

क्रोध समारंभा कारित अरु, मन से दुष्कृत करना।
सिद्धों की पूजन करके तू, मन विशुद्ध निज करना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकारितमनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।28।।

क्रोध समारंभा कारित अरु, वचन तीर से मरना।
जिनवचनों को निज उर धर ले, जीवन अमृत करना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकारितवचन-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।29।।

क्रोध समारंभा कारित अरु, तन सुख शोषण करना।
पंचगुरू की भक्ती करके, चिद्‌गुण पोषण करना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकारितकाय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।30।।

क्रोध समारंभा अनुमोदन, मन विषयों में रमना।
भविजन स्वच्छ भक्ति जल लेकर, संस्नापित चित करना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधानुमतमनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।31।।

क्रोध समारंभा अनुमोदन, वचनों से चित् भिदना।
निज स्वरूप को लखकर बंदे, पाले क्यों जिन विधि ना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधानुमत-वचन-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।32।।

क्रोध समारंभा अनुमोदन, काया चउगति भ्रमना।
बहिरातम एकत्व बुद्धि को, तजकर ले यति शरणा।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधानुमत-काय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।33।।

क्रोधारंभ होय कृत मन से, पाप मार्ग पर चलना।
परिणामों को निर्मल करके, हो पापों का गलना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकृतमनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।34।।

क्रोधारंभ होय कृत वच से, अघ वामा का वरना।
सत्य वचन को चित्त धरूँ नित, तब शिव रमणी वरना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकृतवचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।35।।

क्रोधारंभ होय कृत तन से , पाप पंक में मिलना।
जिन भक्ती का निर्मल जल ले, होय चित्त का धुलना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकृतकायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।36।।

क्रोधारंभ व कारित मन से, विषय अग्नि में पड़ना।
दशा शलभवत् होय जीव की, ज्ञान बिना दुख भरना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकारितमनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।37।।

क्रोधारंभ व कारित वच से, दुख से परिणय करना।
निज आतम की ध्वनी सुने तो, हो सब अघ का टरना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकारितवचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।38।।

क्रोधारंभ व कारित तन से, चेतन गुण का जलना।
पंचगुरू की शरण प्राप्त कर, मुक्ति अंक में पलना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधकारितकायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।39।।

क्रोधारंभ व अनुमत मन से, क्यों गुणराशी दहना।
रत्नत्रय की शुभ निधि पाके, स्वात्मसदन में रहना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधानुमतमनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।40।।

क्रोधारंभ व अनुमत वच से, तिमिर अज्ञ का भरना।
केवल केवलि हृदय बसा ले, केवल रवि का उगना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधानुमतवचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।41।।

क्रोधारंभ व अनुमत तन से, कर्मगिरी तल दबना।
कर्ममहीधर भक्ति वज्र से, चूर-चूर नित करना।।
सिद्ध मोहि राखो ऽऽ शरणा, श्रीसिद्धचक्र जिनराज जी, मोहि....।

ॐ ह्रीं क्रोधानुमतकायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।42।।

(नरेन्द्र छंद) (तर्ज-रोम-रोम से....)

मान कषाय और समरंभा, कृत मन योग हु जानो।
अशुभ हि आस्रव होय निरंतर, भव दुख कारण मानो।।
सर्वास्रव को रोक सिद्ध प्रभु, आतम वैभव पाते।
उस वैभव को पाने हम भी, सिद्ध अर्चना गाते।।

ॐ ह्रीं मानकृत-मनः संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।43।।

मान कषाय और समरंभा, कृत वच योग हु जानो।
आस्रव रहित चेतना निज की, निज स्वरूप पहचानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकृत-वचन-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।44।।

मान कषाय और समरंभा, कृत तन योग हु जानो।
अप्रशस्त चेष्टा तन की तज, शुभ परिणति में आनो।।
सर्वास्रव को रोक सिद्ध प्रभु, आतम वैभव पाते।
उस वैभव को पाने हम भी, सिद्ध अर्चना गाते।।

ॐ ह्रीं मानकृत-काय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।45।।

मान कषाय और समरंभा, कारित मन पहचानो।
अशुभ योग का वारण करके, शुद्ध योग अमलानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकारित-मनः संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।46।।

मान कषाय और समरंभा, कारित वच पहचानो।
दुर्वच घाव तीर सम करते, जिनवच औषधि मानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकारित-वचन-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।47।।

मान कषाय और समरंभा, कारित तन पहचानो।
तन को सुख तो दिया आज तक, अब चिद् गुण प्रगटानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकारित-काय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।48।।

मान कषाय और समरंभा, अनुमोदन मन योगा।
दुष्ट प्रवृत्ती तज के भाई, बन जा चिद्गुण भोगा।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानानुमत-मनः संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।49।।

मान कषाय और समरंभा, अनुमोदन वच योगा।
जन्म जरा मृत्यू के हेतू, ये शाश्वत हैं रोगा।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानानुमत-वचन-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।50।।

मान कषाय और समरंभा, अनुमोदन तन योगा।
मान विषाक्त चित्त परिणति है, तजकर बने अयोगा।।
सर्वास्रव को रोक सिद्ध प्रभु, आतम वैभव पाते।
उस वैभव को पाने हम भी, सिद्ध अर्चना गाते।।

ॐ ह्रीं मानानुमत-काय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।51।।

तीव्र मान अरु समारंभ कृत, मन भी हुआ विकारी।
पर परिणति को त्याग सयाने, हो जा तू अविकारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकृत-मनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।52।।

तीव्र मान अरु समारंभ कृत, वाणी भव दुख कारक।
अशुभ योग तज जिनवच उर धर, हो जा तू भव तारक।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकृत-वचन-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।53।।

तीव्र मान अरु समारंभ कृत, काया दुख की ढेरी।
जिन श्रद्धा से युक्त चित्त हो, मिटे दुखद भव फेरी।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकृत-काय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।54।।

तीव्र मान अरु समारंभ युत, कारित मन बहुरंगी।
धवल ध्यान से धवल चित्त कर, बना सिद्ध निज अंगी।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकारित-मनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।55।।

तीव्र मान अरु समारंभ युत, कारित वच दुख धारा।
शुद्ध योग कर जिन वच पावे, जिसने भव से तारा।।
सर्वास्रव को रोक सिद्ध प्रभु, आतम वैभव पाते।
उस वैभव को पाने हम भी, सिद्ध अर्चना गाते।।

ॐ ह्रीं मानकारित-वचन-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।56।।

तीव्र मान अरु समारंभ युत, कारित काया पापी।
शुद्ध करे जो योगत्रय को, अघ ना बंधे कदापि।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकारित-काय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।57।।

तीव्र मान अरु समारंभ युत, अनुमोदन मन कीड़ा।
पर परिणति को छोड़ विवेकी, नशे सर्व भव पीड़ा।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानानुमत-मनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।58।।

तीव्र मान अरु समारंभ युत, अनुमोदन वच खारा।
चित्त कालिमा प्रक्षालन को, जिनवच एक सहारा।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानानुमत-वचन-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।59।।

तीव्र मान अरु समारंभ युत, अनुमोदन तन दोषी।
जिन पद निज कर संस्पर्शन से, देह बने निर्दोषी।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानानुमत-काय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।60।।

तीव्र मान आरंभ युक्त कृत, मन परिणति अलबेली।
षट्द्रव्यों के मध्य आतमा, फिर भी नित्य अकेली।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकृत-मनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।61।।

तीव्र मान आरंभ युक्त कृत, वच अंतस के भेदी।
चतु अनुयोग ज्ञान तू पाकर, बन जा आतम वेदी।।
सर्वास्रव को रोक सिद्ध प्रभु, आतम वैभव पाते।
उस वैभव को पाने हम भी, सिद्ध अर्चना गाते।।

ॐ ह्रीं मानकृत-वचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।62।।

तीव्र मान आरंभ युक्त कृत, काया दुर्गति हेतू।
बहिरातम बुद्धी को छोड़े, तो तन है शिव सेतू।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकृत-कायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।63।।

तीव्र मान आरंभ व कारित, मन विकलांग अनोखा।
भक्ति नीर से कर प्रक्षालन, होवे चित्त सु चोखा।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकारित-मनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।64।।

तीव्र मान आरंभ व कारित, वचन अग्नि की ज्वाला।
जिन वचना मन शांत करे तो, पाए सु मुक्तिमाला।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकारित-वचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।65।।

तीव्र मान आरंभ व कारित, काया दुःख समूहा।
गुरु सेवा जिन अर्चन करके, तन शुचि कर बिन ऊहा।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानकारित-कायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।66।।

तीव्र मान आरंभ व अनुमत, मन मकड़ी का जाला।
अशुभ भाव इसमें यदि व्यापे, समझो विष का प्याला।।
सर्वास्रव को रोक सिद्ध प्रभु, आतम वैभव पाते।
उस वैभव को पाने हम भी, सिद्ध अर्चना गाते।।

ॐ ह्रीं मानानुमत-मनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।67।।

तीव्र मान आरंभ व अनुमत, वाणी श्वभ्र[1] नसैनी।
सैनी हो तो जिन वच उर धर, बन जा सच्चा जैनी।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानानुमत-वचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।68।।

तीव्र मान आरंभ व अनुमत, काया चिद् पर भारी।
रत्नत्रय को पाया जिनने, तिनके हम आभारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं मानानुमत-कायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।69।।

(आँचलीबद्ध चौपाई) (तर्ज-जय-जय नाथ परम गुरु....)

माया अरु संरम्भ कहाय, कृत मन योग न पुण्य लहाय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।
आस्रव नाशे सिद्ध अशेष, तिनके पद में भक्ति विशेष।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।

ॐ ह्रीं मायाकृत-मनः संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।70।।

माया अरु संरम्भ कहाय, कृत वच योग बहुत दुखदाय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।

---

1. नरक

आस्रव नाशे सिद्ध अशेष, तिनके पद में भक्ति विशेष।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्॥

ॐ ह्रीं मायाकृत-वचन-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥71॥

माया अरु संरंभ कहाय, कृत तन इस भव में भरमाय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्॥टेक॥

ॐ ह्रीं मायाकृत-काय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥72॥

माया अरु संरंभ कहाय, कारित मन नित द्वंद मचाय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्॥टेक॥

ॐ ह्रीं मायाकारित-मनः संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥73॥

माया अरु संरंभ कहाय, कारित वच भव भ्रमण कराय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्॥टेक॥

ॐ ह्रीं मायाकारित-वचन-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥74॥

माया अरु संरंभ कहाय, कारित काया भव भरमाय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्॥टेक॥

ॐ ह्रीं मायाकारित-काय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥75॥

माया अरु संरंभ कहाय, अनुमोदन मन गुण विनशाय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्॥टेक॥

ॐ ह्रीं मायानुमत-मनः संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥76॥

माया अरु संरंभ कहाय, अनुमोदन वच चित्त जलाय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।
आस्रव नाशे सिद्ध अशेष, तिनके पद में भक्ति विशेष।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।

ॐ ह्रीं मायानुमत-वचन-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।77।।

माया अरु संरंभ कहाय, अनुमत तन भव सिंधु डुबाय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायानुमत-काय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।78।।

माया समारंभ कृत युक्त, मन रोगी विषयों का भुक्त।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।
सर्वास्रव का नाश कराय, सिद्ध सभा में शोभा पाय।
यजूँ शिवधाम, जय-जय सिद्ध चक्र भगवान्।।

ॐ ह्रीं मायाकृत-मनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।79।।

माया समारंभ कृत युक्त, वचन अशुभ बोले पुनरुक्त।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायाकृत-वचनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।80।।

माया समारंभ कृत युक्त, तन तज कर विषयों से मुक्त।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायाकृत-काय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।81।।

छल समारंभ व कारित मन, तजकर भाव शुद्ध करें हम।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्॥
सर्वास्रव का नाश कराय, सिद्ध सभा में शोभा पाय।
यजूँ शिवधाम, जय-जय सिद्ध चक्र भगवान्॥

ॐ ह्रीं मायाकारित-मनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।82।।

छल समारंभ व कारित वाक्, अशुभ त्याग कर हो निष्पाप।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायाकारित-वचन-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।83।।

छल समारंभ कारित देह, तजकर भविजन होय विदेह।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायाकारित-काय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।84।।

छल समारंभ व अनुमत चित, त्याग आत्म हो परम पवित्र।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायानुमत-मनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।85।।

छल समारंभ व अनुमत वाक्, दुर्वाणी तज हो हितकार।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायानुमत-वचन-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।86।।

छल समारंभ व अनुमत काय, त्याग भव्य नित शिवपुर जाय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायानुमत-काय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।87।।

मायारंभ कर्तृ मन जान, अशुभ योग की कर ले हान।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।
अर्चन सिद्धों का कर लेय, भवदधि नित्य जलांजलि देय।
यजूँ शिवधाम, जय-जय सिद्ध चक्र भगवान्।।

ॐ ह्रीं मायाकृत-मनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।88।।

मायारंभ कर्तृ तन जान, जिन शासन को तू पहचान।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायाकृत-वचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।89।।

मायारंभ कर्तृ तन जान, आत्मबुद्धि तन दुख की खान।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायाकृत-कायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।90।।

मायारंभ व कारित चित्त, जिन अर्चन से होय पवित्र।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायाकारित-मनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।91।।

मायारंभ व कारित वाच, मृषावाद तज धारे साँच।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।।टेक।।

ॐ ह्रीं मायाकारित-वचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।92।।

मायारंभ व कारित काय, तज अब करिए मोक्ष उपाय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्॥
अर्चन सिद्धों का कर लेय, भवदधि नित्य जलांजलि देय।
यजूँ शिवधाम, जय-जय सिद्ध चक्र भगवान्॥

ॐ ह्रीं मायाकारित-कायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥93॥

मायारंभ व अनुमत चित्त, शुद्ध करें तब मोक्ष निमित्त।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।टेक॥

ॐ ह्रीं मायानुमत-मनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥94॥

मायारंभ व अनुमत वाच, छोड़ धरो जिन नित्य उवाच।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।टेक॥

ॐ ह्रीं मायानुमत-वचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥95॥

मायारंभ व अनुमत काय, सिद्ध न हो बिन देह नशाय।
यजूँ शिवधाम, जय जय सिद्धचक्र भगवान्।टेक॥

ॐ ह्रीं मायानुमत-कायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥96॥

(सवैया छंद) (तर्ज-भला किसी का....)

तीव्र लोभ संरंभ व कृत युत, मन से नित ही आस्रव होय।
भववर्द्धक ही निश्चित जानो, अघ फल को वो अविरल ढोय॥
सर्वास्रव को रोक भव्यवर, सिद्ध अर्चना भव सुख खान।
जिन श्रुत मुनि को हृदय बसा ले, रत्नत्रय निधि कर सम्मान॥

ॐ ह्रीं लोभकृत-मनः संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥97॥

तीव्र लोभ संरम्भ व कृत युत, वचन योग आस्रव दुख खान।
करके बंद कपाट सुसंवर, आत्म सदन में कर विश्राम॥
सर्वास्रव को रोक भव्यवर, सिद्ध अर्चना भव सुख खान।
जिन श्रुत मुनि को हृदय बसा ले, रत्नत्रय निधि कर सम्मान॥

ॐ ह्रीं लोभकृत-वचन-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥98॥

तीव्र लोभ संरम्भ व कृत युत, काया भी भववर्द्धक जान।
कायोत्सर्ग भाव शुभ रखकर, सिद्धालय का बन महमान॥टेक॥

ॐ ह्रीं लोभकृत-काय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥99॥

तीव्र लोभ संरंभा कारित, मन करता अघ का आदान।
मन गुप्ती पाने मुनिवर बन, होवे सम्यक् तभी निदान॥टेक॥

ॐ ह्रीं लोभकारित-मनः संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥100॥

तीव्र लोभ संरंभा कारित, वचन योग अविवेकी हाय।
समवसरण की वसुधा वसु पा, भवि वर मोक्ष महापद पाय॥टेक॥

ॐ ह्रीं लोभकारित - वचन - संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥101॥

तीव्र लोभ संरंभा कारित, काया मनु जीवित शमशान।
काया माया पर-छाया तज, बन जा सिद्ध वधू श्रीमान॥टेक॥

ॐ ह्रीं लोभकारित-काय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥102॥

तीव्र लोभ संरंभ व अनुमत, चित्त असद् व्यवसाय सु जान।
कर संक्रमण अशुभ का शुभ में, पावे निश्चित निज गुणखान॥टेक॥

ॐ ह्रीं लोभानुमत-मनः संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।103।।

तीव्र लोभ संरम्भ व अनुमत, वचन योग देता कुज्ञान।
सम्यक् श्रद्धा युत नित सेवें, बढ़ता प्रतिपल सम्यक् ज्ञान।।
सर्वास्रव को रोक भव्यवर, सिद्ध अर्चना भव सुख खान।
जिन श्रुत मुनि को हृदय बसा ले, रत्नत्रय निधि कर सम्मान।।

ॐ ह्रीं लोभानुमत-वचन-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।104।।

तीव्र लोभ समरंभ व अनुमत, काय योग अघकारक जान।
मोह भाव तज अपने तन से, होवे भवदधि तारक मान।।टेक।।

ॐ ह्रीं लोभानुमत-काय-संरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।105।।

तीव्र लोभ अरु समारंभ कृत, मनोयोग से बढ़ते पाप।
मन इंद्रिय के बने विजेता, वे होते निश्चित निष्पाप।।टेक।।

ॐ ह्रीं लोभकृत-मनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।106।।

तीव्रलोभ अरु समारंभ कृत, वचन योग अति दुख की खान।
मौन धार के बने केवली, शिवपुर पावें चिर विश्राम।।टेक।।।

ॐ ह्रीं लोभकृत - वचन - समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।107।।

तीव्र लोभ अरु समारंभ कृत, काय योग करि धर्म विघात।
काय गुप्ति नित पाल सुयोगी, सकल कर्म का करता घात।।टेक।।।

ॐ ह्रीं लोभकृत-काय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।108।।

तीव्र लोभ अरु समारंभ युत, कारित मन नित करता द्वंद।
मन निर्मल हो धर्म अग्नि से, वही चित्त होता निर्बंध॥
सर्वास्रव को रोक भव्यवर, सिद्ध अर्चना भव सुख खान।
जिन श्रुत मुनि को हृदय बसा ले, रत्नत्रय निधि कर सम्मान॥

ॐ ह्रीं लोभकारित-मनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥109॥

तीव्र लोभ अरु समारंभ युत कारित वचन बुद्धि क्षयकार।
मौन साधना कर योगी बन, बन जा जिनशासक अविकार॥

ॐ ह्रीं लोभकारित-वचन-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥110॥

तीव्र लोभ अरु समारंभ युत, कारित तन कारक बहु पाप।
त्रय आतापन योग धरें तो, अवगुण नश होते निष्पाप।टेक॥

ॐ ह्रीं लोभकारित-काय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥111॥

तीव्र लोभ अरु समारंभ युत, अनुमोदन मन करे विकार।
ध्यान प्रशस्त और सद्‌चिंतन, पाप कालिमा हरे अपार।टेक॥

ॐ ह्रीं लोभानुमत-मनः समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥112॥

तीव्र लोभ अरु समारंभ युत, अनुमोदन वच क्लेश बखान।
हितमितप्रिय जिन वचन सु अनुमत, प्रकटाता है आतम ज्ञान।टेक॥

ॐ ह्रीं लोभानुमत -वचन - समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥113॥

तीव्र लोभ अरु समारंभ युत, अनुमत तन भरता नित पाप।
तन निरीह अरु योग साधना, करो नाशने सब अघ आप।टेक॥

ॐ ह्रीं लोभानुमत-काय-समारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥114॥

तीव्र लोभ आरंभ व कृत मन, भवकानन भरमाए नित्य।
तत्त्वज्ञान से बाँध धेनु सम, क्षीरनंद तुम पाओ सत्य।।
सर्वास्रव को रोक भव्यवर, सिद्ध अर्चना भव सुख खान।
जिन श्रुत मुनि को हृदय बसा ले, रत्नत्रय निधि कर सम्मान।।

ॐ ह्रीं लोभकृत-मनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।115।।

तीव्र लोभ आरंभ व कृत वच, कारक विकथा का है दोष।
असद् वचन को त्याग विवेकी, अघ वारण कर हो निर्दोष।।टेक।।

ॐ ह्रीं लोभकृत-वचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।116।।

तीव्र लोभ आरंभ व कृत तन, संज्ञा चार रहा नित पोष।
चउ आराधन योगत्रय से, भव्य आपना भव अवशोष।।टेक।।

ॐ ह्रीं लोभकृत-कायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।117।।

तीव्र लोभ आरंभ व कारित, मन चंचल मधुकरवत् जान।
आत्मज्ञान में थिर करके चित, निज को सिद्ध समा पहचान।।टेक।।

ॐ ह्रीं लोभकारित-मनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।118।।

तीव्र लोभ आरंभ व कारित, वच होते असिधार समान।
द्वादशांग संगीत सुनाने, वीणा सम निज मन को मान।।टेक।।

ॐ ह्रीं लोभकारित-वचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।119।।

तीव्र लोभ आरंभ व कारित, काया पापमूल नित जान।
तप पावक से शोध निजातम, भवि निर्ग्रन्थ बने भगवान।।टेक।।

ॐ ह्रीं लोभकारित-कायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।120।।

तीव्र लोभ आरंभ व अनुमत, मन कुचित्त अति करता पाप।
योगत्रय का बने विजेता, सोऽहं का करता जो जाप।।
सर्वास्रव को रोक भव्यवर, सिद्ध अर्चना भव सुख खान।
जिन श्रुत मुनि को हृदय बसा ले, रत्नत्रय निधि कर सम्मान।।

ॐ ह्रीं लोभानुमत-मनः आरम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।121।।

तीव्र लोभ आरंभ व अनुमत, वचन योग बनते अपलाप।
सत्य महाव्रत समिति भाषा व, वचन गुप्ति हरते सब पाप।।टेक।।

ॐ ह्रीं लोभानुमत-वचनारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।122।।

तीव्र लोभ आरंभ व अनुमत, तन से भोगे दुख बहुवार।
हो निरीह तप कर काया से, रे आतम ले शिव आकार।।टेक।।

ॐ ह्रीं लोभानुमत-कायारम्भमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।123।।

महार्घ्य

(नरेन्द्र छंद)

थान अयोग केवली माँही, कर्मास्रव सब रुकता।
लघु अंतरमुहुरत में अर्हत्, हो जाते शिवमुक्ता।।
करण योग आरंभादी तज, सब कषाय को त्यागा।
ऐसे सिद्धों का अर्चन कर, पुण्य उदय मम जागा।।

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरणमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तये शान्तिधारा ।। दिव्यपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

जाप्य–ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः।।

जयमाला

(दोहा)

अधिकरणी अधिकार को, नाशूँ कर धिक्कार।
बार बार जिनपद जजूँ, होने भव से पार।।

(सिंहविलोकित छंद) (तर्ज–चालीसा चाल)

सिद्धों के गुण की गवेषणा, मम स्वातम की यही एषणा।
स्वात्म गुणों को नित्य भोगते, शुद्धभाव में नित्य शोभते।।1।।
शुद्ध गुणों की अनुपम महिमा, को छद्‌मस्थ कहे तव गरिमा।
योगी करके ध्यान आपका, अस्त करें रवि भवाताप का।।2।।
तीन करण त्रय योग से गता, क्रोध मदादि कषाय निर्गता।
समारंभी संरंभी गता, आरंभी ना सिद्ध हैं कदा।।3।।
रत्नत्रय की करी साधना, जिन श्रुत मुनि तुम करि उपासना।
जीवों की टाली विराधना, दर्शनादि चउ करि अराधना।।4।।
जिनशासन तुमसे शोभित है, भव्यों का मन गुण मोहित है।
आप सुनायक जिनशासन के, अधिकारी हैं सिद्धासन के।।5।।
लोक शिखर में आप मंडिता, लोकत्रय में नित्य पंडिता।
भव कारण के आप खंडिता, कर्म हुए सिद्धेश-दंडिता।।6।।

कर्मों से मैं नित्य पीड़िता, तव दर की ले आस जीविता।
न्याय करो हे सुगुण नायकं, तव विश्वास सु मुक्ति दायकं॥7॥
पुनि पुनि चर्ण निहार आपके, बंधन तोड़ें सर्व पाप के।
कोष भरे मम नित्य पुण्य से, नहीं प्रयोजन मुझे अन्य से॥8॥
आया तव पद श्रेष्ठ जान के, एकाधार तुम्हें मान के।
भव सागर से मुझे तार दो, मेरे चित् को जिन सुधार दो॥9॥

(सोरठा)

अविकारी अविनाश, सकल गुणों के धाम हो।
नमन करूँ जिन खास, चित्त भक्ति से बांधकर॥

ॐ ह्रीं जीवाजीवाधिकरणमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(चउबोला छंद)

भाव सहित सिद्धों का अर्चन, भव-भव दुःख विनाशक है।
सिद्धदेशवासी की भक्ती, चिद्गुण पूर्ण विकासक है॥
अति निर्मल निज भाव बनाकर, सिद्धार्चन करने आया।
तीव्र पुण्य का उदय सु पाकर, पाई जिनशासन छाया॥

॥ इत्याशीर्वादः ॥

(अथ षष्टम-कोष्ठोपरि-दिव्य-मंगल-पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

षष्टम पूजन

स्थापना

(मधुमालती छंद) (तर्ज- शांतिनाथ जिनेन्द्र तेरे पद युगल...)

विधि बंध हो मिथ्यात्व से, आतम रुले भवताप से।
विधि मोह अरु अज्ञान से, पीड़ित सदा दुखधाम से।।
नशने करम शुभ भाव से, मैं पूजता जिन चाव से।
मम उरकमल पद तिष्ठिये, जिनवर बुलाता भाव से।।

(दोहा)

आह्वानन शिवराज का, करता चित्त विशेष।
भावों से जिन पूजकर, कर्म रहे ना शेष।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहित-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहित-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहित-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम्।

अष्टक

(मत्तसमक छंद)

(तर्ज-नहीं दोष अठारह हैं तुझमें.../ये देश है वीर....)

यह जल है निर्मल सरिता का, अघ धोवे भविजन ममता का।
जिनपद में शीश झुका करके , हम सीखें पाठ सु समता का।।

नित सिद्धों का अर्चन करके, शुभ रतन थाल जिनपद धरके।
भक्ती के भाव सजा लाए, आँखों में अश्रू जल भर के॥

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥1॥

मलयागिरि का शुभ चंदन है, शिव चरणों में नित वंदन है।
ये हरता सब दुख क्रंदन है, काटे कर्मों का बंधन है॥टेक॥

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

मुक्ता सम अक्षत लाया हूँ, अक्षय पद पर ललचाया हूँ।
उस अक्षय पद की महिमा ही, निज उर में आज बसाया हूँ॥टेक॥

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽक्षयपद-प्राप्तयेऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा॥3॥

सुमनों का सौरभ मन भावन, जिन पद धरके होऊँ पावन।
निज काम वासना नाशन को, पकड़ा है जिनवर का दामन॥टेक॥

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥4॥

षट्रस मिश्रित पकवान सभी, जिनपद आये कर भेंट अभी।
मैं क्षुधा मिटाने आया हूँ, ना भोगूँ मैं दुख रोग कभी॥टेक॥

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा॥5॥

मिथ्यातम दूर भगाने को, केवल ज्योती प्रगटाने को।
तेरे चरणों में आया हूँ, भक्ती का दीप जलाने को॥टेक॥

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥6॥

यह धूप अनल में खेकर के, आहूति कर्म की देकर के।
तव पद में मैं चिर वास करूँ, शुद्धात्म भावना लेकर के।।
नित सिद्धों का अर्चन करके, शुभ रतन थाल जिनपद धरके।
भक्ती के भाव सजा लाए, आँखों में अश्रू जल भर के।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

मनहर शुभ फल सुख दाता हैं, हरते ये दुःख असाता हैं।
जो भविजन इन्हें चढ़ाता है, जुड़ता सिद्धों से नाता है।।टेक।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महामोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

संपूर्ण कर्म का कर भेदन, करते आतम का शुभ वेदन।
शुद्धात्म गुणों का कर सेवन, निज वैभव पावें शिव सा बन।।टेक।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

सर्वकर्मरहित 148 अर्घ्य

(अनुकूल छंद) (तर्ज-चालीसा चाल)

नष्ट करी जो सब भव आशा, तो मतिज्ञानावरण विनाशा।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं मतिज्ञानावरण-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

जो श्रुतज्ञानावरण कुपाशा, अविचल ध्यानी तुम तस नाशा।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्रुतज्ञानावरण-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

कर्म ढके जो अवधि सु ज्ञानं, नाश हुए वो शिव अभिरामं।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं अवधिज्ञानावरण-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

ज्ञान मनः पर्यय शुभ ढाँका, नष्ट करि वो करमन राका।।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं मनःपर्ययज्ञानावरण-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

केवल ज्ञानावरण विनाशा, लोक अलोका सकलनि भासा।।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञानावरण-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

दर्शन चक्ष्वावरण नशाया, मोक्ष सुनेता तव गुण गाया।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं चक्षुदर्शनावरण-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

नष्ट अचक्ष्वावरण सुकीना, नाथ हुए आतमरसलीना।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं अचक्षुदर्शनावरण-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

ओहिय[1] दर्शावरण विनिष्टा, नाथ सुपाया शिवपद इष्टा।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

1. अवधि

ॐ ह्रीं अवधिदर्शनावरण-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

केवल दर्शावरण नशाए, आत्म रसास्वादन नित भाए।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं केवलदर्शनावरण-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

कर्मन निद्रा प्रकृति विनाशी, श्रीपति पाया पद अविनाशी।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं निद्रा-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।10।।

निद्रन-निद्रा करम खपाया, शाश्वत पायी शिव नभ छाया।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं निद्रा-निद्रा-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।11।।

शुभ ध्यानामृतमय हो स्वामी, वा प्रचला को क्षय करि नामी।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं प्रचला-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।12।।

भो! प्रचला वा प्रचलनि नाशी, सिद्ध जिनिंदा हुए तुम साँची।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं प्रचला-प्रचला-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।13।।

स्त्यान-सुगृद्धी करम नशाया, इंद्र गणादी गुणगण गाया।
सिद्ध प्रभो को नित नित ध्याऊँ, अल्पभवों में शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं स्त्यानगृद्धि-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।14।।

(चौपाई छंद)

मोहनि मिथ्या प्रकृति जिनिंदा, नाशनि पाए वसुगुण नंदा।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्व-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।15।।

मिश्र विनाशी सब अघनाशी, आप हुए श्रीजिन शिव साथी।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं सम्यग्मिथ्यात्व-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।16।।

ईश्वर सम्यक् प्रकृति विनाशी, नाथ हुए श्री शिवगृह वासी।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं सम्यक्-प्रकृति-कर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।17।।

अनंतानुबंधी अकुलायी, क्रोध प्रकृति प्रभु ने विनशायी।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं अनन्तानुबन्धि-क्रोध-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।18।।

अहंकार भव कारण माना, अनंतानुबंधी विनशाना।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं अनन्तानुबन्धि-मान-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।19।।

अनंतानुबंधी छल नाशा, शुक्ल ध्यान बल से निजवासा।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं अनन्तानुबन्धि-माया-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।20।।

लोभ कर्म देवे भव कष्टा, अनंतानुबंधी वह नष्टा।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं अनन्तानुबन्धि-लोभ-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।21।।

क्रोध अप्रत्याख्यान खपाया, मुक्ति रमा का संग सुपाया।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यान-क्रोध-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।22।।

रत्नत्रय असि खूब चलायी, मान अप्रत्याख्यान नशायी।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यान-मान-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।23।।

माया प्रकृति अप्रत्याख्याना, क्षय कर पहना मुक्ती बाना।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यान-माया-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।24।।

लोभ अप्रत्याख्यान नशाए, आतम के शाश्वत गुण पाए।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यान-लोभ-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।25।।

प्रत्याख्यान क्रोध कर डाला, ध्यानाग्नि में भस्म विशाला।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यान-क्रोध-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।26।।

ज्ञानध्यान शस्त्रास्त्र सजाए, प्रत्याख्यान मान विनशाए।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यान-मान-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।27।।

माया प्रत्याख्यान विनाशी, प्रकटि अनर्घ आत्मगुणराशी।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यान-माया-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।28।।

प्रत्याख्यान लोभ जिन नाशा, सिद्ध हुए क्षयकर भव आशा।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यान-लोभ-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।29।।

शुभ ध्यानानल में दहकाया, क्रोध संज्वलन शीघ्र नशाया।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं संज्वलन-क्रोध-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।30।।

मान संज्वलन प्रकृति नशाई, संयम की देखो प्रभुताई।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं संज्वलन-मान-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।31।।

नशी कषाय संज्वलन माया, तप से भव बंधन दहकाया।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं संज्वलन-माया-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।32।।

लोभ संज्वलन संयम बल से, नाश बने शिववर तप फल से।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं संज्वलन-लोभ-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।33।।

हँसना हास्य कषाय कहायी, नाश उसे पंचम गति पायी।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं हास्य-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।34।।

विषयराग रति नो कषाय है, नाश करें यह शिव उपाय है।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं रति-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।35।।

विषय द्वेष ये अरति कहाता, क्षयकर हुए जगत् विख्याता।
सिद्ध प्रभू को वंदन मेरा, शिवपुर में मम होय बसेरा।।

ॐ ह्रीं अरति-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।36।।

(प्रमानिका छंद) (तर्ज-सरागदेव..../नीर गंध अक्षतान्....)

कषाय शोक नाश के, हुए सुमोक्षवास के।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं शोक-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।37।।

कषाय जानते 'भया', विनाश होय निर्भया।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं भय-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।38।।

सुज्ञान अस्त्र ले कसा, कषाय ग्लानि को नशा।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं जुगुप्सा - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।39।।

नशा जु नारि वेद को, प्रणाम सिद्ध देव को।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं स्त्रीवेद - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।40।।

सुवेद पुं नशा तदा, स्वभाव ये नहीं कदा।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं पुरुषवेद - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।41।।

विनष्ट षंढ वेद को, किया सुखी निजात्म को।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं नपुंसकवेद - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।42।।

अहार आदि दान से, नशाय विघ्न ध्यान से।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं दानान्तराय - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।43।।

विनाश लाभ अंतराय, स्वात्मलीनता सुहाय।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं लाभान्तराय - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।44।।

सु ध्यान की कुठार ले, जु भोग विघ्न नाश दे।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं भोगान्तराय-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।45।।

न बार-बार भोग पा, निमित्त कर्म को नशा।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं उपभोगान्तराय-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।46।।

विनाश वीर्य विघ्न को, जु पाय सिद्ध सद्म[1] को।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं वीर्यान्तराय-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।47।।

नशाय सात-वेदनी, बसाय अष्ट मेदिनी।[2]
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं सातावेदनीय-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।48।।

असात-वेदनी क्षया, हुए अनंत अक्षया।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं असातावेदनीय-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।49।।

1. भवन 2. पृथ्वी/भूमि

नरायु छेद के शुभा, सु पायी स्वातमा प्रभा।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं मनुष्यायु - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।50।।

न देव आयु शेष है, अतः न दुःख लेश है।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं देवायु-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।51।।

कु नारकायु घात दी, सु सिद्ध बस्ति प्राप्त की।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं नरकायु - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।52।।

पशू सु आयु भी हनी, शिवात्मराम से बनी।
सुसिद्ध वंदना करें, निजात्म सौख्य से भरें।।

ॐ ह्रीं तिर्यंचायु - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।53।।

(द्रुमिल छंद) (तर्ज-केवल रवि किरणों....)

शुभ देवगती करमोदय से, जहँ देव चतुर्विध वास करें।
अरु ऋद्धि सुवैभव भोग महा, पुनि कर्मवशा भवरास करें।।
वह देवगती विनशा करके, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं देवगतिनाम - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।54।।

नर एक गती इन चौ गति में, शिव श्रेयस का शुभ कारण है।
बिन नष्ट करे नहि हो सकता, भव क्लेश अनादि निवारण है।।
सुमनुष्यगती विनशा करके, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।।

ॐ ह्रीं मनुष्यगतिनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।55।।

तिरयंच गती अप्रशस्त कही, पशु के दुख क्लेश अनंत दिखें।
इन दुःख सुखों कि सुप्राप्ति हितू, सब जीव स्वयं निज भाग्य लिखें।।
तिरयंच गती विनशा करके, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।।

ॐ ह्रीं तिर्यंचगतिनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।56।।

गति नर्क भयंकर क्लेश युता, दुख वर्णन में नहिं आ सकता।
पल की सुख शांति नहीं ह्व वहाँ, अपना कृत पाप भ्रमा सकता।।
वह नर्कगती विनशा करके, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।।

ॐ ह्रीं नरकगतिनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।57।।

इक इंद्रिय स्पर्शन मात्र कही, इक इंद्रिय दुःख महा सहता।
यह चेतन कर्मफला कहते, पुरुषार्थ नहीं कर ये सकता।।
इक इंद्रिय जाति नशा करके, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।।

ॐ ह्रीं एकेन्द्रिय-जातिनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।58।।

इन स्पर्शन औ रसना युत ही, यह द्वींद्रिय जीव कहा जिन ने।
तहँ होकर शंख लटादि सदा, फिर दुःख अनेक सहे उनने।।
द्वय इन्द्रिय जाति नशा करके, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं द्वीन्द्रिय-जातिनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।59।।

त्रय इंद्रिय घ्राणन स्पर्श रसा, युत जीव सदा त्रय जाति कहा।
फिर कुंथु पिपीलिक आदि बना, त्रस होकर भी नहिं सौख्य लहा।।
त्रय इंद्रिय जाति नशा करके, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं त्रीन्द्रिय-जातिनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।60।।

चउ इंद्रिय क्रमशः ले करके, चउ जातिज जीव बना जग में।
तितली भँवरा अरु कीट हुआ, नहिं बोध लहा भटका भव में।।
चउ इंद्रिय जाति नशा करके, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं चतुरिन्द्रिय-जातिनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।61।।

शुभ पंचम इंद्रिय युक्त सभी, सुर मानव नारक और पशू।
पुरुषार्थ शुभाशुभ हो सबका, गति प्राप्त करें सब भिन्न विभू।।
यह पंचम जाति विनष्ट करी, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं पंचेन्द्रिय-जातिनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।62।।

यह स्थूल शरीर रुके पर से, अरु रोक रहा पर को नित ही।
अउदारिक नाम कहा इसका, धरते पशु मानव जीव सभी।।
अउदारिक देह विनष्ट करी, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं औदारिक-शरीरनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।63।।

रुकता नहिं रोक सके पर को, यह विक्रिय देह कही प्रभु ने।
सुरनारक जीव धरें इसको, बहु ऋद्धि समाहित हैं इसमें।।
यह विक्रिय देह तजी जिनने, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं वैक्रियिक-शरीरनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।64।।

छठवें गुणथानक श्री मुनि के, इक हाथ प्रमाण सु मस्तक से।
पुतला निकले जिन वंदन को, सितवर्ण अहारक देह विषै।।
वह देह विनष्ट करी प्रभु ने, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं आहारक-शरीरनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।65।।

अउदारिक आदिक देह विषै, यह तैजस देह सु तेज भरे।
वपु तैजस से तज नेह प्रभो, तव आत्म सुतेज प्रकाश करे।।
यह तैजस देह तजी जिनने, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं तैजस-शरीरनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।66।।

दुठ अष्ट समूहनि कर्मन की, मिल देह बनी यह पंचम है।
सब जीवनि संग अनादि रही, प्रतिघात बिना वपु कार्मण है।।
वह कार्मण देह तजी प्रभु ने, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं कार्माण-शरीरनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।67।।

वसु अंग उपांग बने जिससे, अउदारिक अंग उपांग कहा।
वर ध्यान सु अग्नि जला करके, उसको तुमने जिन शीघ्र दहा।।
प्रभु आत्म विशुद्धि बढ़ा करके, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं औदारिक-अंगोपाङ्गनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।68।।

वपु विक्रिय की रचना करने, शुभ अंग उपांग गणेश कहें।
भव संसृति के सब कारण हैं, इन कर्म वशी सब दुःख सहें।।
वपु विक्रिय अंग उपांग नशा, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं वैक्रियिक-अंगोपाङ्ग-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।69।।

रचना जु अहारक देह कही, शुभ अंग उपांग अहारक हो।
शुभ निर्मल ध्यान सुपावक से, प्रभु कर्म सदा परिहारक हो।।
तुमने शुभ ध्यान तपो बल से, निज शाश्वत वैभव प्राप्त किया।
कर सिद्ध महा अरचा हमने, निज जीवन में सुप्रभात किया।।

ॐ ह्रीं आहारक-अंगोपाङ्गनाम-कर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।70।।

(नरेन्द्र छंद)

नियत थान व नियत प्रमाणी, देहांगों की रचना।
नाम कर्म निर्माण सुनिश्चय, कहते जिनवर वचना॥
कर्म नाशकर सिद्ध हुए वो, शिवगृह चिर विश्रामी।
उनको नमन करूँ मैं पाने, शाश्वत पद अविरामी॥

ॐ ह्रीं निर्माण-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥71॥

मोतीचूर के लड्डू जैसे, संश्लेषित पहचानो।
औदारिक बंधन से तन के, परमाणू जुड़ जानो॥टेक॥

ॐ ह्रीं औदारिकबंधन-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥72॥

विधि बंधन वैक्रियक अनोखा, तन प्रदेश आपस में।
जुड़ जाते विक्रिय बंधन से, भवि जानो तुम सच में॥टेक॥

ॐ ह्रीं वैक्रियिकबंधन-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥73॥

काष्ठ ढेर सम पृथक-पृथक ही, बंधन बिन तन रहता।
तन प्रदेश संश्लेष परस्पर, आहारक से होता॥टेक॥

ॐ ह्रीं आहारकबंधन-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥74॥

तैजस तन परदेश बंध का, ''तैजस बंधन'' कारण।
सिद्धों की अर्चा हम करते, करने कर्म निवारण॥टेक॥

ॐ ह्रीं तैजसबंधन-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥75॥

तन पुद्गल खंधों का बंधन, आपस में जो होता।
वह कार्माण बंध विधि क्षय कर, निश्चित भवि शिव होता।।
कर्म नाशकर सिद्ध हुए वो, शिवगृह चिर विश्रामी।
उनको नमन करूँ मैं पाने, शाश्वत पद अविरामी।।

ॐ ह्रीं कार्माणबंधन-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।76।।

औदारिक तन के परमाणू, छिद्र रहित हो जाना।
औदारिक संघात है हेतु, आगम से पहचाना।।टेक।।

ॐ ह्रीं औदारिकसंघात - नामकर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।77।।

देह वैक्रियक के परमाणू, छिद्र रहित हो मिलते।
विधि संघात वैक्रियक निश्चित, पूजा कर भवि ढलते।।टेक।।

ॐ ह्रीं वैक्रियिकसंघात-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।78।।

आहारक तन परमाणु मिल, छिद्र रहित हो जाते।
आहारक संघात उदय से, भविजन ऐसा पाते।।टेक।।

ॐ ह्रीं आहारकसंघात-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।79।।

अशुभ और शुभ तन तैजस के, परमाणु निश्छिद्रा।
विधि तैजस संघात सु होते, यूँ बतलाय मुनींद्रा।।टेक।।

ॐ ह्रीं तैजससंघात-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।80।।

नादी से कार्माण देह प्रत्येक जीव की लेखी।
छिद्र रहित होते परमाणू, तन के विधि यह देखी।।टेक।।

ॐ ह्रीं कार्माणसंघात-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।81।।

सामुद्रिक शास्त्रानुसार ही, तन की आकृति बनती।
''समचतुष्क संस्थान'' सु उत्तम, सिद्ध वंदना हनती।।
कर्म नाशकर सिद्ध हुए वो, शिवगृह चिर विश्रामी।
उनको नमन करूँ मैं पाने, शाश्वत पद अविरामी।।

ॐ ह्रीं समचतुरस्र-संस्थान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।82।।

नाभी से नीचे तन पतला, ऊपर मोटा जानो।
है ''न्यग्रोध परीमंडल'' ये, वह तरु सम पहचानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं न्यग्रोध-परिमण्डल-संस्थान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।83।।

नाभी से नीचे तन मोटा, ऊपर पतला मानो।
सर्प वामि या तरू शाल्मली, सम ये ''स्वाती' जानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं स्वाति-संस्थान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।84।।

जिस पापोदय से भव प्राणी, पाता कुबड़ी काया।
वह ''कुब्जक संस्थान'' सु निश्चित, जिन ने खूब भगाया।।टेक।।

ॐ ह्रीं कुब्जक-संस्थान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।85।।

अंग उपांग सर्व ही तन में, जिस कारण हों छोटे।
उस ''वामन संस्थान'' संग ही, कर्मनि नाशूँ खोटे।।टेक।।

ॐ ह्रीं वामन-संस्थान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।86।।

हुई बेडौल आकृति तन की, पाप उदय के कारण।
इस ''हुंडक संस्थान'' अशुभ का, अर्चन करे निवारण।।टेक।।

ॐ ह्रीं हुण्डक-संस्थान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।87।।

वज्र की अस्थि वृषभ वज्र का, अरु नाराच सुवज्रा।
''वज्रवृषभ नाराच'' संहनन, उत्तम तन ज्यों वज्रा।।
कर्म नाशकर सिद्ध हुए वो, शिवगृह चिर विश्रामी।
उनको नमन करूँ मैं पाने, शाश्वत पद अविरामी।।

ॐ ह्रीं वज्रवृषभनाराच-संहनन-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।88।।

वज्र अस्थि नाराच वज्र का, भविजन तुम पहचानो।
है ''नाराचवज्र'' ये निश्चित, दूज संहनन मानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं वज्रनाराच-संहनन-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।89।।

साधारण नाराच सु कीलित, अस्थि सन्धि पहचानो।
तीजा है ''नाराच संहनन'' आगम से भवि जानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं नाराच - संहनन - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।90।।

करता है नाराच अस्थियों, को कीलित इक तरफा।
नाश ''अर्द्धनाराच'' करें भवि, ले जिनभक्ति फरसा।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्द्धनाराच - संहनन - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।91।।

हो संस्पृष्ट हड्डियाँ कीलों, से तन की वह जानो।
कीलक अशुभ संहनन नाशा, निज स्वरूप में आनो।।टेक।।

ॐ ह्रीं कीलक - संहनन - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।92।।

पृथक-पृथक हड्डियों नसों से, जहँ हो बंधन युक्ता।
असंप्राप्त-सृपाटिका विधि से, जिनपूजक हो मुक्ता।।टेक।।

ॐ ह्रीं असंप्राप्तसृपाटिका - संहनन - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।93।।

(त्रोटक छंद) (तर्ज–जय केवलभानु..../अधरं मधुरं....)

तन पुद्‌गल की जब कर्कशता, वह ''कर्कश'' नाम सु कर्म कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं कर्कशस्पर्श–नामकर्म–रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।94।।

तन पुद्‌गल की जब हो मृदुता, वह ही ''मृदु नाम'' सु कर्म कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं मृदुत्वस्पर्श–नामकर्म–रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।95।।

तन पुदगल स्निग्ध हुए जिससे, यह स्निग्ध जु स्पर्शन कर्म कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं स्निग्धस्पर्श–नामकर्म–रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।96।।

तन पुद्‌गल रुक्ष हुए जिससे, उसको मुनि ''रुक्षनि कर्म'' कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं रुक्षस्पर्श–नामकर्म–रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।97।।

तन पुद्‌गल ही जब शीत दिखे, वह ''शीत'' सु नामक कर्म कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं शीतस्पर्श–नामकर्म–रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।98।।

तन पुद्‌गल के जब ऊषणता, तब ऊष्ण सुनाम हि कर्म कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं उष्णस्पर्श–नामकर्म–रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।99।।

तन पुद्‌गल के जब हो गुरुता, ''गुरु नाम'' सु कर्म जितेंद्र कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं गुरुस्पर्श - नामकर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।100।।

तन पुद्‌गल के जब हो लघुता, ''लघु नाम'' सु कर्म जिनेन्द्र कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं लघुस्पर्श-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।101।।

जिससे नर स्वाद सु तिक्त गहे, इस ''तिक्त'' सु नामनि कर्म कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं तिक्तरस-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।102।।

जिससे नर स्वाद लहे कड़वा, ''कटु'' नाम सु कर्मनि नित्य कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं कटुकरस-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।103।।

जिससे नर स्वाद कसाय लहे, रस कर्म ''कषाय'' जिनेन्द्र कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं कषायरस-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।104।।

जिससे नर स्वाद सुमिष्ट गहे, ''मधुरा रस कर्म'' जिनेन्द्र कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।
ॐ ह्रीं मधुररस-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।105।।

जिससे नर स्वाद सु आम्ल गहे, ''रस आम्ल'' सुकर्म जिनेन्द्र कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।

ॐ ह्रीं आम्लरस-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।106।।

जिससे यह जीव सुगंध लहे, जिननाथ ''सुगंधनि कर्म'' कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।

ॐ ह्रीं सुगन्ध-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।107।।

जिससे नर ये दुरगंध लहे, जिन ने ''दुरगंधनि कर्म'' कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।

ॐ ह्रीं दुर्गन्ध-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।108।।

जिससे नर श्वेत सुवर्ण गहे, वह ''श्वेत सुवर्णनि कर्म'' कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।

ॐ ह्रीं श्वेतवर्ण-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।109।।

जिससे नर नील सु वर्ण गहे, वह ''नील सुवर्णनि'' कर्म कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।

ॐ ह्रीं नीलवर्ण-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।110।।

जिससे नर कृष्ण सुवर्ण गहे, वह ''कृष्ण सुवर्णनि'' कर्म कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।

ॐ ह्रीं कृष्णवर्ण-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।111।।

जिससे नर रक्त सुवर्ण गहे, वह ''रक्त सुवर्णनि'' कर्म कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।

ॐ ह्रीं रक्तवर्ण-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।112।।

जिससे नर पीत सुवर्ण गहे, वह ''पीत सुवर्णनि'' कर्म कहा।
रतिकंत जयी जिन सिद्ध जजूँ, जिन ध्यान दवानल कर्म दहा।।

ॐ ह्रीं पीतवर्ण-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।113।।

(हरिगीतिका छंद) (तर्ज-मैं देव श्री अरिहंत....)

यह विधि ''नरक गत्यानुपूर्वी'', नरकगति सन्मुख करे।
आकृति रहे तब पूर्व तन की, ध्यान से जिन परिहरे।।
कर मोक्षलौ सिद्धार्चना नित, तव चरण शरणा गहूँ।
निज आत्म बंधक कर्म सब विध, नष्ट कर शिवपद लहूँ।।

ॐ ह्रीं नरकगत्यानुपूर्वी - नामकर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।114।।

विधि ''आनुपूर्वी देवगति'' की, सुरगती सन्मुख करे।
उसको विनाशा ध्यान असि से, बोध केवल शिव वरे।।टेक।।

ॐ ह्रीं देवगत्यानुर्वी-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।115।।

यह ''आनुपूर्वी मनुज गति'' की, मनुज सन्मुख लावती।
पूर्वाकृती विग्रहगती जिन, नाशते ना भावती।।टेक।।

ॐ ह्रीं मनुष्यगत्यानुपूर्वी-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।116।।

तिर्यंच योनी दुखद करि ''पशु-आनुपूर्वी'' सन्मुखा।
सम्यक्त्व से क्षयकर बने चैतन्यमय शाश्वत सुखा।।टेक।।

ॐ ह्रीं तिर्यग्गत्यानुपूर्वी - नामकर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।117।।

जब उदय होवे अगुरुलघु का, जीव अगुरु अलघु बने।
निज आत्म स्वातंत्रय सु पाने, अगुरुलघु जिन ने हने।।
कर मोक्षलौ सिद्धार्चना नित, तव चरण शरणा गहूँ।
निज आत्म बंधक कर्म सब विध, नष्ट कर शिवपद लहूँ।।

ॐ ह्रीं अगुरुलघुत्व-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।118।।

निज के सु अंग उपांग मनहर, घात निज तन का करें।
जिन नष्ट कर ''उपघात विधि'' को, ज्ञान अंगी तन धरें।।टेक।।

ॐ ह्रीं उपघात-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।119।।

निज अंग वा उप अंग जब पर घात करते हैं कहा।
''परघात अशुभ हु नाम'' विधि को, नाशकर लहि गुण सुधा।।टेक।।

ॐ ह्रीं परघात-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।120।।

निज मूल में शीतल रहें अरु, उष्ण हो जिनकी प्रभा।
रविग्रह के पृथ्विकायिकों के, होय वह ''आतप'' दहा।।टेक।।।

ॐ ह्रीं आतप-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।121।।

शीतल सुज्योति चन्द्रमा की, उभय शीतल कारका।
जिन नष्ट कर ''उद्योत विधि'' को, हुए भव उद्धारका।।टेक।।

ॐ ह्रीं उद्योत-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।122।।

है ''आनप्राण'' सु प्राण उत्तम, जीव का आधार है।
व्यवहार में ही प्राण ये नशि, शिव लहा खलु[1] सार है।।
कर मोक्षलौ सिद्धार्चना नित, तव चरण शरणा गहूँ।
निज आत्म बंधक कर्म सब विध, नष्ट कर शिव पद लहूँ।।

ॐ ह्रीं उच्छ्वासनि:स्वास-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।123।।

गति सुप्रशस्त विहाय क्षयकर, निज स्वरूपा हो गए।
है भव भ्रमण में हेतु ये भी, त्यागकर जिन शिव भए।।टेक।।

ॐ ह्रीं प्रशस्त-विहायोगति-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।124।।

ये ''अप्रशस्त विहायगति'' नित, ही कही दुखकारिका।
हुए नष्ट कर जिन वीतरागी, स्वपर भव उद्धारका।।टेक।।

ॐ ह्रीं अप्रशस्तविहायोगति-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।125।।

जो एक जीव शरीर धारी, एक इक ही काल में।
''प्रत्येक नाम करम'' विनाशा, आपने तत्काल में।।टेक।।

ॐ ह्रीं प्रत्येकशरीर-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।126।।

इक देह में हो जीव नंता, देह ''साधारण'' कही।
उस नाम विधि को नष्ट कर जिन, लही सिद्धों की मही।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधारणशरीर-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।127।।

जग द्वीन्द्रियादिक जीव ''त्रस'' इस, नाम से विख्यात हैं।
त्रसनाम विधि को नष्ट करके, आप शिववर आप्त हैं।।टेक।।

1. निश्चय से

ॐ ह्रीं त्रस-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥128॥

जलकायिकादी एक इन्द्रिय, नाम 'थावर' ये कहे।
थावर करम को नष्ट कर, शाश्वत गुणों को शिव लहे॥
कर मोक्षलौ सिद्धार्चना नित, तव चरण शरणा गहूँ।
निज आत्म बंधक कर्म सब विध, नष्ट कर शिव पद लहूँ॥

ॐ ह्रीं स्थावर-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥129॥

इस ''सुभग विधि'' के उदय बल से, अन्य जन प्रीती करें।
सौन्दर्य आतम प्राप्त करने, आप इस विधि को हरें॥टेक॥

ॐ ह्रीं सुभग-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥130॥

''दुर्भग करम'' के उदय बल से, पा उपेक्षा भाव को।
दुर्भग विनाशा श्रेष्ठ तप से, पा लिया चिद् भाव को॥टेक॥

ॐ ह्रीं दुर्भग-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥131॥

सुस्वर जगत् में कर्णहारी, प्रीति हित का हेतु है।
''सुस्वर करम'' को नाशकर जिन, ध्वनि-सुनो शिवसेतु है॥टेक॥

ॐ ह्रीं सुस्वर-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥132॥

अप्रिय वचन भासते ''दुःस्वर'' दुरित दुर्नाम है।
उसको विनाशा ध्यान असि से, पाया मुक्ति धाम है॥टेक॥

ॐ ह्रीं दुःस्वर - नामकर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥133॥

''शुभ नाम विधि'' के उदय बल से, जीव सुन्दर तन लहें।
तन ज्ञानमूर्ती वा अमूर्तिक, पाने विधि जिनवर दहें॥
कर मोक्षलौ सिद्धार्चना नित, तव चरण शरणा गहूँ।
निज आत्म बंधक कर्म सब विध, नष्ट कर शिव पद लहूँ॥

ॐ ह्रीं शुभ-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥134॥

जितनी अशुभ हैं वर्गणा सब, अशुभ देह निमित्त हैं।
उसको विनाशा स्वात्म बल से, पा जिनिंद निमित्त हैं॥टेक॥

ॐ ह्रीं अशुभ-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥135॥

सब घात अरु प्रतिघात से, निर्मुक्त ''सूक्ष्म शरीर'' है।
उसको विनाशा धर्म धनु से, पाय जिन भवतीर है॥टेक॥

ॐ ह्रीं सूक्ष्म-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥136॥

यह देह ''बादर'' नित्य ही, रोके रुके पर खंध से।
उसको विनाशा शुद्ध चिद् पा, मुक्त हो सब द्वंद से॥टेक॥

ॐ ह्रीं बादर-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥137॥

''पर्याप्त'' नामक करम का जब, उदय तब पर्याप्त हो।
भवि नष्ट कर उस कर्म को सत्यं शिवं शुभ आप्त हो॥टेक॥

ॐ ह्रीं पर्याप्त - नामकर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥138॥

अपर्याप्त नाम कर्म यह तन, पूर्ण ना करती कदा।
इस अशुभ विधि को नष्ट कर पूरण हुए शिववर सदा॥टेक॥

ॐ ह्रीं अपर्याप्त-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।139।।

''विधि स्थिर'' प्रकृति के उदय बल से, धातु सब संस्थिर रहें।
चैतन्य के गुण सर्व पाने, स्थिर प्रकृति को शिव दहें।।
कर मोक्षलौ सिद्धार्चना नित, तव चरण शरणा गहूँ।
निज आत्म बंधक कर्म सब विध, नष्ट कर शिव पद लहूँ।।

ॐ ह्रीं स्थिर-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।140।।

''अस्थिर'' सदा यह पाप प्रकृती, धातु अस्थिर ही करे।
शाश्वत किया निज संतुलन जिन, मुक्ति वामा शिव वरे।।टेक।।

ॐ ह्रीं अस्थिर-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।141।।

इस देह में शुभ कांति हर पल, दिव्य आकर्षक बली।
''आदेय कर्म'' विनाश करके, बन गए जिन शिवबली।।टेक।।

ॐ ह्रीं आदेय-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।142।।

अप्रीतिकर हो कांति तन की, अशुभ वा मंदी कदा।
''अप्रशस्त अनादेय'' नशकर, जिन लही चिद्द्युति सदा।।टेक।।

ॐ ह्रीं अनादेय-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।143।।

यश की शुभेच्छा भी जगत् में, कर्मबंधन हेतु है।
''यशकीर्ति'' है कन्या कुँवारी, त्यागना शिवसेतु है।।टेक।।

ॐ ह्रीं यश:कीर्ति-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।144।।

जब अयशकीर्ती करम का होता उदय जग में कभी।
बहु अयश फैले तब जगत् में, आपने नाशा तभी।।टेक।।

ॐ ह्रीं अयशःकीर्ति-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।145।।

गर्भादि पंच महा महोत्सव, पंच कल्याणक कहे।
सद्धर्मवर्तक तीर्थ जिनवर, विधि तजें अरु शिव लहें।।

ॐ ह्रीं तीर्थंकरप्रकृति-नामकर्म-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।146।।

(वनवासिका छंद) (तर्ज-चालीसा चाल)

लोकमान्य कुल जनम लिया है, उच्च गोत्र विधि निमित दिया है।
उच्चगोत्र क्षयकर अधिकारी, पहुँचे सिद्धालय सुखकारी।।

ॐ ह्रीं उच्चगोत्र - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।147।।

निज आतम शंसा पर निंदा, नीचगोत्र का अघकर फंदा।
ध्यान अस्त्र से जिनवर नाशा, पूज पाएँ हम भी शिववासा।।

ॐ ह्रीं नीचगोत्र - कर्म - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।148।।

महार्घ्य

(उल्लाला छंद)

अड़तालिसउत्तर एक शत, सब कर्म प्रकृति करि नाश।
सिद्धालय में प्रभु जा बसे, नित पूजें जिन अविनाश।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

शान्तये शान्तिधारा ।। दिव्य-पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

जाप्य– ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः ।।

जयमाला

(आंसू छन्द) (तर्ज–ऐ मेरे वतन.../उमरिया रह गई थोड़ी...)

सद्धर्म मूर्ति शिव स्वामी, निज लीन सु अंतर्यामी।
विधि नाशक जिन अविकारी, लोकत्रय नित्य सुनामी।।1।।

तुम शुक्ल ध्यान के द्वारा, नाशे सब कर्म बखानो।
पुदगल अनंत अणु जितने, सिद्धों के गुण पहचानो।।2।।

तप की प्रचण्ड दावानल, अघ दोष सभी नश डाले।
हो परम शुद्ध अविनाशी, जाकर के बसे शिवालै।।3।।

शुभ ध्यान नहीं भक्ती बिन, संभव न शिवपथचारी।
कर सिद्ध भक्ति भवि होता, इक दिन निश्चित अविकारी।।4।।

भव भोग देह वैरागी, सम्यक्त्वी गुण अनुरागी।
अब तीव्र लालसा होती, विधि नाश होऊँ गतरागी।।5।।

निःशब्द मात्र अनुभव की, भक्ति देती है मुक्ती।
भक्ती रस नंद अमर है, देती अनंत सुख शक्ती।।6।।

शुभ धर्म सुतप विधि हंता, लह ऋषि होवें भगवंता।
सर्वेच्छा नाश शिवालै, बसते चिद् होय गुणालै।।7।।

षट्पद सा लोभी तेरा, पाने मुक्तीपद आया।
संयम पथ को अपनाकर, तुमसा ही होने आया।।8।।

पूजा संस्तुति जिन अर्चन, वंदन कर निज अघ हाने।
पुनि द्वयविध शिवमग पाऊँ, आतम के गुण प्रगटाने।।9।।

नर सुख सुर सुख नहिं चाहूँ, हर पल जिन तुमको ध्याऊँ।
हो पंचगुरू की दृष्टी, मुझ पर फिर शिवपुर जाऊँ।।10।।

है नाम अनेक तिहारे, तुम रूप प्राकृतिक धारे।
आतम को शुद्ध किया जिन, सिद्धालय शीघ्र पधारे ।।11।।

शुद्धात्म द्रव्य अविनाशी, पर्याय शुद्ध उपभोगी।
आतम के शुद्ध गुणों के, हो नंत काल तक भोगी।।12।।

इक बार कर्म जो नाशे, ना हो फिर भव में आना।
इसलिए सिद्ध जिन तुम सम, मुझको भी शिवपद पाना।।13।।

सिद्धों की भक्ती निश्चित, भक्तों को सिद्ध बनाती।
हम भी हो पाएँगे शिव, जिनवाणी यही बताती।।14।।

तुम मुझसे और मैं तुमसे, बिल्कुल भी अलग नहीं हूँ।
वसु कर्म कालिमा मेटूँ, मैं भी फिर सिद्ध सही हूँ।।15।।

ॐ ह्रीं सर्वकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

(चउबोला छंद)

भाव सहित सिद्धों का अर्चन, भव भव दुःख विनाशक है।
सिद्ध देशवासी की भक्ती, चिद्गुण पूर्ण विकासक है।।
अति निर्मल निज भाव बनाकर, सिद्धार्चन करने आया।
तीव्र पुण्य का उदय सु पाकर, पाई जिनशासन छाया।।

इत्याशीर्वादः ।।

(अथ सप्तम-कोष्ठोपरि-दिव्य-मंगल-पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

सप्तम पूजन

स्थापना

(त्रिभंगी छंद)

शिव मुक्तीकंता, सिद्धमहंता, शिव भगवंता अविकारी।
सिद्धों का अर्चन, नितप्रति चर्चन, तव पद वंदन बलिहारी॥
जिन तुमे बुलाऊँ, तव गुण ध्याऊँ, पूज रचाऊँ हितकारी।
पर द्रव्य उदासी, शिवपुरवासी, स्वात्मनिवासी अघहारी॥

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम् ।

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्त-श्रीसिद्धचक्राधिपति! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणम्।

अष्टक

(सारंगी छंद) (तर्ज-चाँद सितारे फूल और....)

योगी के भावों जैसा ही, वारी चर्णों में लाए।
जन्मादी को नाशें स्वामी, स्वात्मा में भी हर्षाए॥
भावों की शुद्धी से पूजा, श्री सिद्धों की कीनी है।
भक्ती में डूबा जाता सिद्धों की छाया लीनी है॥

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥1॥

सौंधी सी फूलों की गंधों, से श्री पूजा को आया।
देहादी के संतापों को, नाशूँ ये चित् को भाया॥
भावों की शुद्धी से पूजा, श्री सिद्धों की कीनी है।
भक्ती में डूबा जाता सिद्धों की छाया लीनी है॥

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

गोरे गोरे मुक्ता जैसे, शुभ्रा शाली ले आया।
मैं सच्ची में सिद्धों सा हूँ, पाने वो ही हूँ आया॥टेक॥

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽक्षयपद-प्राप्तयेऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा॥3॥

फूले फूले फूलों की मैं, माला पूरी लाया हूँ।
निष्कामी हो आत्मा मेरी, यूँ भावों से आया हूँ॥ टेक॥

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥4॥

पक्वान्नं मिष्ठानं खाद्यं, संजोके मैं ले आया।
सिद्धों की पूजा से मेरा, चित् इंद्रों सा हर्षाया॥टेक॥

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा॥5॥

गौ घी के दीपों की पंक्ती, शोभा चित् को देती है।
पापों की काली छाया को, नाशे बुद्धी देती है॥टेक॥

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥6॥

पूर्णांगी धूपों की थाली, खेऊँ अग्नी पात्रों में।
कर्मों की होली बालूँ मैं, ज्योतिर् हो चिद् गात्रों में॥टेक॥

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

एला केला पुंगी काजू, द्राक्षा चीकू मौसंमी।
श्री जी की पूजा को लाया, आत्मा होवे निष्कर्मी।।
भावों की शुद्धी से पूजा, श्री सिद्धों की कीनी है।
भक्ती में डूबा जाता सिद्धों की छाया लीनी है।।

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः महामोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

तीनों लोकों के रत्नों का, अच्छा सा अर्घ्यं लाया।
मैं सिद्धों का हूँ दीवाना, श्री जी भक्ती को आया।।टेक।।

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमः अनर्घपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

परमगुणयुक्त 260 अर्घ्य

(पायत्ता छंद) (तर्ज-उमरिया रह गई थोड़ी....)

अरि है सबको दुखदायी, अरि जीत बनो जिनरायी।
अरिजेता अर्हत् स्वामी, हम पूज बनें निष्कामी।।

ॐ ह्रीं अर्हदरिजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

कर्मारि विजेता सिद्धा, संपूर्ण रूप परिशुद्धा।
संपूर्ण कर्म अरि नाशा, पाया शिव शाश्वत वासा।।

ॐ ह्रीं सिद्धारिजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

वसुकर्म कहे भवहेतू, सूरी भवि को शिवसेतू।
आचार पंच सुखदायी, पूजें सूरी गुरुरायी।।

ॐ ही सूर्यरिजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

शाश्वत शत्रू अज्ञाना, देता चित को दुख नाना।
पाठक अज्ञान नशाया, निज में प्रकाश गुण पाया।।

ॐ ह्रीं पाठकारिजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

मोहादि शत्रु अघकर्ता, स्वातम गुण का है हर्ता।
रत्नत्रय पाय नशाया, मुनि आतम वैभव पाया।।

ॐ ह्रीं साध्वरिजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

मंगलदायी सुविशेषा, अरिहंत देव परमेशा।
सब जग को मंगलदायी, हम पूजें मन हरषायी।।

ॐ ह्रीं अर्हन्मंगलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

वसुकर्म रहित अकलंका, श्री सिद्ध नाथ निकलंका।
सिद्धों की शरणा पाई, नित मंगल हो सुखदायी।।

ॐ ह्रीं सिद्धमंगलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

सूरी मंगल अति प्यारे, मम जीवन एक सहारे।
मंगलकारक सुखदायी, हम चरणनि धोक लगायी।।

ॐ ह्रीं सूरिमंगलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

सद्ज्ञानमूर्ति यति ध्यानी, निज चित धारें जिनवाणी।
मंगलकर पाप विनाशा, हम लहें चरण में वासा।।

ॐ ह्रीं पाठकमंगलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

साधू मंगल त्रैलोका, हम पूजें यति अवलोका।
मम[1] गल सुखकारक जानो, साधू मंगल पहचानो।।

ॐ ह्रीं साधुमंगलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।10।।

उत्तम नित जिनवर स्वामी, प्रभु निज पर अंतर्यामी।
लोकोत्तम नित्य जजूँ मैं, वसु द्रव्य चढ़ाय भजूँ मैं।।

ॐ ह्रीं अर्हतोत्तमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।11।।

जे सिद्ध शिखर पर राजे, वसुगुण युक्ता शिव साजे।
लोकोत्तम नित अघहारी, हम भक्ति करें तुम्हारी।।

ॐ ह्रीं सिद्धोत्तमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।12।।

आचार्य सदा निजध्यानी, तारें भव से भवि प्राणी।
शुभ पंचाचार सु पालें, भविजन का जन्म संभालें।।

ॐ ह्रीं सूर्युत्तमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।13।।

हैं उपाध्याय सुखकारी, अज्ञान तिमिर परिहारी।
उत्तम तिहुँ लोक बखाने, तव शुभ स्वरूप हम जानें।।

ॐ ह्रीं पाठकोत्तमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।14।।

---

1. पाप

साधू उत्तम गुणधीरा, हैं ज्ञान ध्यान गंभीरा।
तप करके कर्म खपाते, तव संस्तुति हम नित गाते।।

ॐ ही साधूत्तमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।15।।

अरिहंत शुभाश्रय दाता, तुम तीन लोक विख्याता।
तव पद शरणा हम पायी, अघ हरने धोक लगायी।।

ॐ ह्रीं अर्हच्छरणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।16।।

वसु कर्म हीन सब सिद्धा, भवि शरणभूत गुण वृद्धा।
सिद्धों की शरणा पावें, हम आठों कर्म नशावें।।

ॐ ह्रीं सिद्धशरणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।17।।

आचार्य लोक हितकारी, तव चरणनि में बलिहारी।
अघहारक शरण अनूपा, तव पद पूजें जगभूपा।।

ॐ ह्रीं सूरि-शरणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।18।।

श्रीपाठक अद्भुत ज्ञानी, वचनों में हो जिनवाणी।
श्री ज्ञान सूर्य शुभ शरणा, अज्ञान तिमिर अपहरणा।।

ॐ ह्रीं पाठक-शरणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।19।।

यति तीन रत्न के धारी, तिहुँ लोक मात्र सुखकारी।
भविजन तव शरणा पाते, अपना भव भ्रमण मिटाते।।

ॐ ह्रीं साधु-शरणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।20।।

श्री स्वात्म शरण अरिहंता, तुम तीन लोक भगवंता।
जिन नंत चतुष्टय राजे, दर्शन कर अघ सब भाजे।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-स्वात्मशरणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।21।।

वसुकर्म रहित शिव स्वामी, स्वात्मस्थित सिद्ध अकामी।
शिव रमणी कंत कहाए, तव गुण पर हम ललचाए।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-स्वात्मशरणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।22।।

स्वात्मस्थित सूरि गणेशा, भावी शिव पंथ जिनेशा।
निज आत्मलीन हो जाऊँ, तव पद का ध्यान लगाऊँ।।

ॐ ह्रीं सूरि-स्वात्मशरणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।23।।

तुम अंगपूर्व के धारी, श्रुत केवल ज्ञान पुजारी।
स्वात्मस्थ रहें यतिराजा, पाठक गुण में मन पागा।।

ॐ ह्रीं पाठक - स्वात्मशरणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।24।।

जय स्वत्वलीन अनगारी, अठवीस मूलगुण धारी।
उत्तरगुण चौंतिस पालें, तव शुभ दर्शन अघ टालें।।

ॐ ह्रीं साधु-स्वात्मशरणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।25।।

(प्रभव छंद) (तर्ज-मैं पंछी एक प्यासा....)

अर्हंत स्वात्मभोगी, चैतन्य अनुत्तर योगी।
आ जा शरण प्रभू की, जो नित्य स्वात्म उपयोगी।।

चेतन महासदन में, गुणराशि नित्य प्रकटायी।
रत्नत्रय पा उनने, शिववामा ही परिणायी।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-चैतन्यगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।26।।

सिद्धों कि शुद्ध आभा, मन को विशुद्ध करती है।
शिव पूजता भविक जो, वामा सुमुक्ति वरती है।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-चैतन्यगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।27।।

आचार्य हम तिहारे, द्वय चरणों के अनुरागी।
चैतन्य गुण सुपूरित, हो चित्त आत्म गुण पागी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-चैतन्यगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।28।।

पाठक सु ज्ञान आगर, प्रणमामि धर्म अधिनायक।
चैतन्य गुण प्रकाशी, गुरु देव नित्य श्रुत ज्ञायक।।टेक।।।

ॐ ही पाठक-चैतन्यगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।29।।

मौनी मुनी कहाते, सुज्ञान ध्यान तप लीना।
चेतन गुण को पाने, निज साधना में प्रवीना।।टेक।।

ॐ ही साधु-चैतन्यगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।30।।

अर्हंत कर्म हन के, क्षायिक सदर्श प्रकटाएँ।
केवल सुबोधि पाने, मुनिनाथ आप गुण गाएँ।।टेक।।

ॐ ही अर्हत्-सद्दर्शनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।31।।

सद्दर्श युक्त सिद्धा, सद्ज्ञान देही विदेही।
स्वात्मोपलब्धि हेतू, पूजूँ सदा मैं तुमे ही॥
चेतन महासदन में, गुणराशि नित्य प्रकटायी।
रत्नत्रय पा उनने, शिववामा ही परिणायी॥

ॐ ह्रीं सिद्ध-सद्दर्शनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥32॥

सद्दर्श सूरि भगवन्, शिष्यों के आप सहारे।
पाकर शरण सुपावन, भवि पाप कर्म सब हारे॥टेक॥

ॐ ह्रीं सूरि-सद्दर्शनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥33॥

पाठक सुदर्श नित-नित, ज्ञानांबुधि में अवगाहें।
है मोक्षमार्ग इक ही, संसार की नंत राहें॥टेक॥

ॐ ही पाठक-सद्दर्शनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥34॥

सद्दर्श साधु योगी, निज आतम गुण के भोगी।
पाके सुदृष्टि हम भी, हो जाएँ नित्य निरोगी॥टेक॥

ॐ ह्रीं साधु-सद्दर्शनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥35॥

अर्हंत स्वात्म वर्तन, करते सुगुणमया होके।
संसार में रहें भी, संसार से विलग होके॥टेक॥

ॐ ह्रीं अर्हत्-स्वात्मवर्तनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥36॥

सर्वज्ञ सिद्ध को तुम, व्यवहार से हि पहचानो।
करते निजात्म वर्तन, आत्मज्ञ निश्चया मानो॥टेक॥

ॐ ह्रीं सिद्ध-स्वात्मवर्तनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।37।।

आचार्य आत्मवर्तन, आचार पाल नित करते।
आतम विहारि भगवन्, तेरे चरण हुँ सिर धरते।।
चेतन महासदन में, गुणराशि नित्य प्रकटायी।
रत्नत्रय पा उनने, शिववामा ही परिणायी।।

ॐ ह्रीं सूरि-स्वात्मवर्तनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।38।।

पढ़ते पढाएँ पाठक, ज्ञानोपयोगि वर साधक।
जानें निजात्म गुण को, आगम सु श्रेष्ठ आराधक।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-स्वात्मवर्तनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।39।।

उपयोग पर हटाकर, निज आत्म में ही लगाते।
आतम विहार करके, आनंद श्रेष्ठ मुनि पाते।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-स्वात्मवर्तनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।40।।

अरिहंत घातिहीना, निज आत्म वैभव सुभोगी।
त्रैकाल शुद्ध मन से, नमूँ केवलि जिन सयोगी।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-स्वात्मविभवाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।41।।

निज आतमा विभव के, नृप आप हि हो जिनदेवा।
श्री सिद्ध देव पूजूँ, पाऊँ चरित्र शुभ मेवा।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-स्वात्मविभवाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।42।।

गणनायका प्रवीना, दक्षिण स्वभाव युत सूरी।
आतम विभव सुलीना, करूँ गुण प्रशंसा तव भूरी।।
चेतन महासदन में, गुणराशि नित्य प्रकटायी।
रत्नत्रय पा उनने, शिववामा ही परिणायी।।

ॐ ह्रीं सूरि–स्वात्मविभवाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।43।।

आगम पठन व पाठन, पाठक सदा ही कराते।
आतम विभव को पाने, गुरु आपको हि नित ध्याते।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक–स्वात्मविभवाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।44।।

यतिवर निजात्म ध्यानी, आतम निधि के तुम स्वामी।
दर्पण समान मन लें, तप धारते सु निष्कामी।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु–स्वात्मविभवाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।45।।

छ्यालीस मूलगुण से, अरिहंत देव अति शोभित।
शुभ भाव लेय पूजें, भवि जिन चरणों में मोहित।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हन्मूलगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।46।।

निर्मल निकल निरंजन, नित्या निरामया सिद्धा।
वसुमूलगुण सुयुक्ता, अर्चें सदा ही प्रबुद्धा।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध–मूलगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।47।।

छत्तीस मूलगुण युत, सूरी प्रभु का करि अर्चन।
तीर्थेश सम हि करते, कलियुग में धर्म प्रवर्तन।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-मूलगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।48।।

पाठक सुक्षेमकारी, पच्चीस मूलगुण पालें।
आओ सुचित्त करके, अघ नाश हेतु तिन ध्यालें।।
चेतन महासदन में, गुणराशि नित्य प्रकटायी।
रत्नत्रय पा उनने, शिववामा ही परिणायी।।

ॐ ह्रीं पाठकमूलगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।49।।

व्रत समिति अक्ष निरोध, आवश्य सप्तगुणधारी।
भवि बंधु तत्त्व चिंतक, मुनि मुक्तिदुर्ग अधिकारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-मूलगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।50।।

(विदित छंद) (तर्ज-जल फल वसु.../मेरी लागी गुरु...)

परमोत्तर गुण युत देव, अर्हत् नाम जपूँ।
जिन शासन नायक एव, मम जीवन अर्पूं।।
सद्ज्ञान गुणामृत सिंधु, भव दुख नाश करें।
नाशे चित पाप अनंत, शाश्वत शांति वरें।।

ॐ ह्रीं अर्हदुत्तरगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।51।।

उत्तर गुण युत सिद्धेश, सिद्धशिला वासी।
सिद्धार्चन करते आज, तव पद विश्वासी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्धोत्तरगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।52।।

कलिकाल कल्पतरु एक, सूरी भगवंता।
उत्तर गुण युत गुरुदेव, तिहुँ जग जयवंता।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूर्युत्तरगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।53।।

हैं पाठन पठन सुनीति-रीती परिपालक।
पाठक उत्तर गुण युक्त, निज पर अघहारक।।
सद्ज्ञान गुणामृत सिंधु, भव दुख नाश करें।
नाशे चित पाप अनंत, शाश्वत शांति वरें।।

ॐ ह्रीं पाठकोत्तरगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।54।।

बाईस परीषह संग, द्वादश तप मंगल।
चौंतिस उत्तर गुण युक्त, मुनि हनि विधि जंगल।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधूत्तरगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।55।।

अर्हंत देव निष्काम, काम विनाशी हैं।
हम पाएँ निज गुणधाम, जिन विश्वासी हैं।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-सज्ज्ञानगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।56।।

सिद्धों की साख अगम्य, भविजन क्या जाने।
ज्ञानादि गुणादि सुरम्य, निज गुण पहचाने।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-सज्ज्ञानगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।57।।

आचार्य देव भगवंत, ज्ञान-गुणाय नमूँ।
ते शाश्वत निजगुणवंत, आठों याम जजूँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-सज्ज्ञानगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।58।।

श्री उपाध्याय अविकार, धारा ज्ञान बहे।
करि पाप पंक प्रक्षाल, सम चित नित्य रहें॥
सद्ज्ञान गुणामृत सिंधु, भव दुख नाश करें।
नाशे चित पाप अनंत, शाश्वत शांति वरें॥

ॐ ह्रीं पाठक-सज्ज्ञानगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥59॥

साधू का ज्ञान उजास, लोक तिमिर नाशे।
शाश्वत चिद् लहें प्रकाश, शुद्धातम वासे॥टेक॥

ॐ ह्रीं साधु-सज्ज्ञानगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥60॥

जग बीच रहें अरिहंत, फिर भी जग न्यारे।
प्रभु निज स्वभाव तल्लीन, पूजूँ पद थारे॥टेक॥

ॐ ह्रीं अर्हत्-स्वभावयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥61॥

निज गुण अमरित रसपान, करते शिवनगरी।
तुम सम स्वभाव रस लेय, भर लूँ निज गगरी॥टेक॥

ॐ ह्रीं सिद्ध-स्वभावयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥62॥

स्वातम आराधक सूरि, कलियुग वृषवर्तक।
धरूँ पाने आत्म स्वभाव, चरणों में मस्तक॥टेक॥

ॐ ह्रीं सूरि-स्वभावयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥63॥

निर्द्वन्दी निःस्पृह शांत, शिवमग पुरुषार्थी।
पाने पाठक निज भाव, प्रतिपल ज्ञानार्थी॥टेक॥

ॐ ह्रीं पाठक - स्वभावयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।64।।

शिवमग में श्रम दिन रैन, श्रमण करें निश्चित।
पाने स्वभाव निज होय, आतम से परिचित।।
सद्ज्ञान गुणामृत सिंधु, भव दुख नाश करें।
नाशे चित पाप अनंत, शाश्वत शांति वरें।।

ॐ ह्रीं साधु-स्वभावयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।65।।

करि चार घातिया नाश, शुद्ध सुगुण प्रगटें।
पूजूँ अरिहंत जिनेश, संकट सबहि कटें।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-शुद्धगुण-प्रकटाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।66।।

घाती अघाति सब घात, सिद्धालय जाके।
आतम वैभव संयुक्त, गुण सब प्रगटाके।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-शुद्धगुण-प्रकटाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।67।।

आचार्य देव अविकार, शिष्यों के पालक।
आतम गुण युक्त विशेष, शुभ गुण संचालक।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-शुद्धगुण-प्रकटाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।68।।

सुज्ञान सिंधु मधि नित्य, पाठक आनंदें।
शुभ गुण प्रकटाने भव्य, तिन पद नित वंदें।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-शुद्धगुण-प्रकटाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।69।।

यतिवर साधक ये मौन, आतम गुण पाने।
निर्ग्रन्थ साधु सा कौन, तपसी यहँ माने।।
सद्ज्ञान गुणामृत सिंधु, भव दुख नाश करें।
नाशे चित पाप अनंत, शाश्वत शांति वरें।।

ॐ ह्रीं साधु-शुद्धगुण-प्रकटाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।70।।

भव भ्रमण निवारक देव, अर्हत् नित अर्चूं।
तुम सम बनना अतएव, भक्ती से चर्चूं।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हद्-भवभ्रमण-निवारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।71।।

भव कारण कर्म नशाय, सिद्धों बीच हुए।
भव भ्रमण नशाऊँ आज, कर्म न आत्म छुए।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-भवभ्रमण-निवारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।72।।

भव भ्रमण नशाने सूरि, शुद्धाचार लहें।
वंदूँ धरती के देव, सद् आचार गहें।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-भवभ्रमण-निवारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।73।।

पाठक श्रुत में तल्लीन, आत्म विशुद्धि बढ़े।
भव भ्रमण नाश हो सिद्ध, हम तिन चरण खड़े।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-भवभ्रमण-निवारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।74।।

रत्नत्रय निधि के नाथ, शिवमग श्रम करते।
भव भ्रमण नशा शिव साथ, होने तप करते।।टेक।।

ॐ ही साधु-भवभ्रमण-निवारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।75।।

(रोला छंद) (तर्ज-अहो जगत् गुरु....)

श्रीमत् वीर जिनेश, घाती कर्म विनाशी।
थिर अंतर नित देव, स्वातम भाव विलासी।।
चेतन शाश्वत रूप, चिन्मय गुण अविनाशी।
पंचमहागुरुदेव, भविजन स्वत्व विकासी।।

ॐ ह्रीं अर्हदंतरसुस्थिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।76।।

थित अंतर सिद्धेश, आतम गगन विहारी।
तुम सम होने देव, चरणों में बलिहारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्धांतरसुस्थिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।77।।

आचारज गुरुदेव, अंतर स्थित अविकारी।
अर्हत रूप अनूप, तेरा विश्व पुजारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूर्यंतरसुस्थिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।78।।

पाठक आगम सिंधु, अंतर स्थित सुज्ञाता।
कर दो भव से पार, देकर शिवपद दाता।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठकांतरसुस्थिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।79।।

यतिवर अंतर तिष्ठ, गुण चैतन्य निहारें।
आगम चक्षू साधु, आत्म भवन में विहारें।।टेक।।

ॐ ह्रीं साध्वंतरसुस्थिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।80।।

भव अन्तक अरिहंत, अंत किया जगनामी।
भव का करने अंत, देव सदा प्रणमामी।।
चेतन शाश्वत रूप, चिन्मय गुण अविनाशी।
पंचमहागुरुदेव, भविजन स्वत्व विकासी।।

ॐ ह्रीं अर्हद्-भवान्तकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।81।।

कर्मों का कर नाश, भव अंतक शिवगामी।
स्वामी हुए विदेह, ज्ञान शरीरी अकामी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-भवान्तकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।82।।

भव का करने अंत, पंचाचार सुपालें।
जय सूरी भगवंत, दर्शन अघ सब टालें।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-भवान्तकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।83।।

पाठक आगम सिंधु, स्वस्मै स्वस्य सुलीना।
करते भव का अंत, अंग व पूर्व प्रवीना।।टेक।।

ॐह्रीं पाठक-भवान्तकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।84।।

जिन मुद्रा को धार, करते नित पुरुषारथ।
वंदूँ श्रीमुनिराज, पाने पद परमारथ।।टेक।।

ॐ ही साधु-भवान्तकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।85।।

अर्हत् नाश कषाय, ध्यान धवल कर स्वामी।
नंत चतुष्टय धार, भोगें सुख अविरामी।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-कषाय-विगलिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।86।।

निज चैतन्य प्रदेश, मधि शिव नित्य विहारी।
हनी कषाय अशेष, प्रभु तव पद बलिहारी।।
चेतन शाश्वत रूप, चिन्मय गुण अविनाशी।
पंचमहागुरुदेव, भविजन स्वत्व विकासी।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-कषाय-विगलिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।87।।

कृश करते हुँ कषाय, सूरि प्रवर जग ख्याता।
संग्रह अनुग्रह नित्य, शिष्यों पर विख्याता।।

ॐ ह्रीं सूरि-कषाय-विगलिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।88।।

नशने सर्व कषाय, पाठक आतम ध्याएँ।
जिनवाणी की छाँव, रहकर मोह नशाएँ।।

ॐ ह्रीं पाठक-कषाय-विगलिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।89।।

साधू स्वसमय महान्, ग्रंथ तजी निर्ग्रन्था।
नाशें देव कषाय, गमन करें शिवपंथा।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-कषाय-विगलिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।90।।

मोहनि कर विध्वंस, अर्हत् नाथ सयोगी।
तव भक्ती से भव्य, होते कर्म वियोगी।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हद्-मोहध्वंसकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।91।।

चिद्रूपी सिद्धेश, मुक्त गगन के वासी।
मोह किया विध्वंस, होकर आत्म निवासी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-मोहध्वंसकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।92।।

करते मोह विनाश, आचारज अविकारी।
तव जिनमुद्रा देव, देवे पुण्य सुभारी।।
चेतन शाश्वत रूप, चिन्मय गुण अविनाशी।
पंचमहागुरुदेव, भविजन स्वत्व विकासी।।

ॐ ह्रीं सूरि-मोहध्वंसकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।93।।

पाठक मोह गलाय, सम्यग्ज्ञान प्रभा से।
निज आतम में लीन, गुरु अर्हत् सम भासे।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-मोहध्वंसकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।94।।

पंचमहाव्रत धारि, भविजन के उपकारक।
यतिवर मोह नशाय, निश्चय ही शिवकारक।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-मोहध्वंसकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।95।।

बिंबित लोकालोक, तुममें केवल ज्ञानी।
गाऊँ तव गुणगान, जिन निर्मल परिणामी।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हन्निर्मल-परिणामाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।96।।

अति निर्मल चिद्रूप, शिव निज आत्म विलासी।
तव चिंतन से पाय, भवि आतम गुण राशी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-निर्मल-परिणामाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।97।।

शुभ निर्मल परिणाम, युक्त सु अक्ष विजेता।
पंचम कालनि सूरि, निश्चित शिवमग नेता।।
चेतन शाश्वत रूप, चिन्मय गुण अविनाशी।
पंचमहागुरुदेव, भविजन स्वत्व विकासी।।

ॐ ह्रीं सूरि-निर्मल-परिणामाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।98।।

गुण पच्चिस अपनाय, पाठक श्रुत अनुरागी।
नित निर्मल परिणाम, रहते नित्य विरागी।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-निर्मल-परिणामाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।99।।

ज्ञान ध्यान से नित्य, अपना चित्त बुहारें।
प्रतिपल शुभ परिणाम, आतम गुण सम्हारें।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-निर्मल-परिणामाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।100।।

(दोहा छंद)

जीव भ्रमण जग में करे, मिथ्यात्वादिक हेतु।
अर्हन् जिन की शरण ले, भव नशि पा शिवसेतु।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-पंचपरावर्तनमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।101।।

सिद्ध शरण जग में बड़ी, भव परिवर्तन नाश।
पंचपरावर्तन नशूँ, करूँ स्वात्म नित वास।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-पंचपरावर्तनमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।102।।

आचारज जग पूज्य हैं, भव का भ्रमण मिटाय।
पंचाचार सुधी गहें, पणविध भ्रमण नशाय।।

ॐ ह्रीं सूरि-पंचपरावर्तनमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।103।।

उपाध्याय पाठक सुधी, ज्ञान बाण ले हाथ।
संयम धनु को धारकर, करें पंच भवनाश।।

ॐ ह्रीं पाठक-पंचपरावर्तनमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।104।।

साधू पंचानन समा, दमी पंच परकार।
पंच परावर्तन नशे, पा पंचम गति सार।।

ॐ ह्रीं साधु-पंचपरावर्तनविमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।105।।

पंच अक्ष के विषय सब, जीते श्री अरिहंत।
विषय मान विष सम भवी, करें भवोदधि अंत।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-पंचाक्ष-विषयजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।106।।

सिद्धालय के सिद्ध जिन, पंच अक्ष रिपु घात।
स्वात्म सदन में नित रमें, नित नित नव्य प्रभात।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-पंचाक्ष-विषयजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।107।।

पंच अक्ष आसन बना, सूरी तहँ पधराय।
पंचम गति को पा सकें, शुद्धातम नित ध्याय।।

ॐ ह्रीं सूरि-पंचाक्ष-विषयजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।108।।

पन विध सम्यक् ज्ञान से, पंच अक्ष को जीत।
पाठक नित शिव पंथ में, भवि के सच्चे मीत।।

ॐ ह्रीं पाठक-पंचाक्ष-विषयजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।109।।

पंच अक्ष के अश्व को, देते कठिन लगाम।
स्वातम गुण में लीन हों, पावें चिद् विश्राम।।

ॐ ह्रीं साधु-पंचाक्ष-विषयजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।110।।

आत्मशत्रु सब जीतकर, पाय चतुष्टय नंत।
स्वात्म जिनाय सदा भजूँ, बन जाऊँ गुणवंत।।

ॐ ह्रीं अर्हन्निजात्मजिनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।111।।

घाति अघाती कर्म सब, ले रत्नत्रय तीर।
प्राण शेष सब विधि किए, सिद्ध बने शिववीर।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-निजात्मजिनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।112।।

सूरि मुनीश्वर मोह को, बांधें संयम डोर।
ज्ञान ध्यान तप से हने, होय स्वात्म नित भोर।।

ॐ ह्रीं सूरि-निजात्मजिनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।113।।

मोह शत्रु की वाहिनी, दहते ज्ञान सु शस्त्र।
स्वात्म ज्ञान का कवच धरि, ले कर में तप अस्त्र।।

ॐ ह्रीं पाठक-निजात्मजिनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।114।।

मिथ्यात्रय भव हेतु है, सम्यक् शिव आधार।
यति मिथ्यात्रय नाशकर, हुए भवोदधि पार।।

ॐ ह्रीं साधु-निजात्मजिनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।115।।

नहि प्रभाव परचक्र का, व्यापे अर्हत् देव।
स्वात्म चक्र में नित रमें, तिन पद करता सेव।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-परचक्रप्रभावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।116।।

नित्य स्वात्म गुण चक्र को, पा तोड़ा भव चक्र।
सरल सहज शिव सदन पा, तज दीना भववक्र।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-परचक्रप्रभावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।117।।

परभावों पर चक्र से, रहित सूरि भगवान्।
स्वात्म रमण की सीख दें, अनुपम तव वरदान।।

ॐ ह्रीं सूरि-परचक्रप्रभावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।118।।

चक्र व्यूह को तोड़ने, पाठक विधी सिखाय।
स्वात्म कवच रक्षा महा, श्रुत दे नित पहनाय।।

ॐ ह्रीं पाठक-परचक्रप्रभावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।119।।

कनक कांता अरु कीर्ती, कुत्सित पथ दे कष्ट।
कर्म चक्र को नाशकर, साधू पद लें इष्ट।।

ॐ ह्रीं साधु-परचक्रप्रभावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।120।।

स्वत्व चतुष्टय राजते, अर्हत् श्री भगवान्।
परभावों को त्यागकर, लहें निजातम ज्ञान।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-स्वचतुष्टय-शोभिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।121।।

सिद्ध सदन में सिद्ध सब, स्वात्म भाव लवलीन।
द्रव्य भाव नो कर्म से, शाश्वत रहें विहीन॥

ॐ ह्रीं सिद्ध-स्वचतुष्टय-शोभिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥122॥

आचारज निज स्वत्व में, रहे पाल आचार।
निर्देशक शिव पंथ के, सदा सुखी अविकार॥

ॐ ह्रीं सूरि-स्वचतुष्टय-शोभिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥123॥

पाठक मर्यादा कहें, आत्म तत्त्व में डूब।
परमत का खंडन करें, ज्ञाननंद लें खूब॥

ॐ ह्रीं पाठक-स्वचतुष्टय-शोभिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥124॥

निज मर्यादा स्वत्व की, स्वत्व चतुष्टय जान।
मुनिवर जो नित निज रमें, नंत गुणों की खान॥

ॐ ह्रीं साधु-स्वचतुष्टय-शोभिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥125॥

(सोरठा छंद)

अविकारी अविनाश, स्वात्म नंद कारण प्रभो।
पाऊँ जिनपदवास, भव बंधन को तोड़कर॥

ॐ ह्रीं अर्हत्-स्वात्मानंदाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥126॥

स्वात्मनंद निःशेष, सिद्ध प्रभो निज चित् धरें।
शिव के हेतु विशेष, शिव अर्चें मुक्ती वरें॥

ॐ ह्रीं सिद्ध-स्वात्मानंदाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥127॥

स्वात्मनंद गुरुदेव, कारक जग में एक हैं।
करूँ नित्य पद सेव, धर विवेक उर में सदा।।

ॐ ह्रीं सूरि-स्वात्मानंदाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।128।।

पाठक नित गुणखान, स्वात्मनंद में रम रहे।
ज्ञानमूर्ति परधान, जो पूजें सो सुख लहे।।

ॐ ह्रीं पाठक-स्वात्मानंदाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।129।।

स्वात्मनंद रस कूप, अवगाहन यतिवर करें।
तिन चरणों नत भूप, पाप नशाने पूजते।।

ॐ ह्रीं साधु-स्वात्मानंदाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।130।।

मनो विजित भगवान, भवि के मन का मल हरें।
पूजक हो गुणवान, स्वात्मनंद का हेतु गहि।।

ॐ ह्रीं अर्हन्मनोविजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।131।।

मन गति से अति दूर, सिद्ध सदन में वास है।
चिदानंद भरपूर, नशि भववर्द्धक पाश है।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-मनोविजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।132।।

मनोविजेता सूरि, पंचेन्द्रिय नित वश करी।
लही प्रशंसा भूरि, निकट भव्य गुणवान से।।

ॐ ह्रीं सूरि-मनोविजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।133।।

मन अनीक को जीत, स्वात्म राज्य को पा लिया।
बनें भव्यजन मीत, पथदर्शक बनि जगत् में।।

ॐ ह्रीं पाठक-मनोविजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।134।।

योगत्रय कर शुद्ध, मन इंद्रिय जीते तभी।
हुए स्वात्म परिबुद्ध, मिथ्यात्रय को नाशकर।।

ॐ ह्रीं साधु-मनोविजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।135।।

आस्रव भव का हेतु, संवर द्वार निरोधकर।
अरिह बने शिव सेतु, संवर भावनि नित नमूँ।।

ॐह्रीं अर्हत्-परमसंवराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।136।।

सर्वास्रव का रोध, करि शोधन निज आतमा।
पाया नंत विबोध, सिद्धों की शरणा गहूँ।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-परमसंवराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।137।।

पालें पंचाचार, सूरी गुण संयम धरूँ।
संवर परम सँवार, भक्तित्रय युत मैं नमूँ।।

ॐ ह्रीं सूरि-परमसंवराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।138।।

उपाध्याय दें ज्ञान, तप से कर गुण वृद्धि नित।
जग में जे भगवान, भाव परम संवर गहो।।

ॐ ह्रीं पाठक-परमसंवराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।139।।

पंचमहाव्रत धार, भाव परम संवर लहौ।
ध्यान अग्नि है सार, विधि कानन जिससे दहौ।।

ॐ ह्रीं साधु-परमसंवराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।140।।

मह तप फल सुखदाय, सिद्धालय की गैल[1] यह।
चारों घाति नशाय, पाकर सम्यक् शील मह।।

ॐ ह्रीं अर्हन्महातपफलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।141।।

द्वादश तप का सार, सर्व कर्म निवृत्त हुए।
तप जीवन आधार, शुद्धातम का हेतु वर।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-महातपफलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।142।।

करि अभिलाष निरोध, आतम में नित वास करि।
तप दे स्वातम बोध, सूरी जग परधान शुभ।।

ॐ ह्रीं सूरि-महातपफलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।143।।

भोगाकांक्षा त्याग, ज्ञानामृत का स्वाद लें।
तप से करि अनुराग, स्वपर आत्म शोधन करें।।

ॐ ह्रीं पाठक-महातपफलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।144।।

इच्छेन्द्रिय को रोक, गमन करें शिवपंथ में।
अविरल आत्म विलोक, कर्मों से वे ना बंधें।।

ॐ ह्रीं साधु-महातपफलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।145।।

1. मार्ग

पाया केवलज्ञान, जरा जराकर ध्यान में।
बन अर्हत् भगवान, घात घातिया चार विध॥

ॐ ह्रीं अर्हत्-परमनिर्जराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥146॥

द्विविध निर्जरा सार, ताहि फल सिद्धनि लह्यौ।
हो जा तू अविकार, कर्म क्षीण शिवपथ गह्यौ॥

ॐ ह्रीं सिद्ध-परमनिर्जराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥147॥

काया जर्जर होय, ता पूरब तप वृद्धि कर।
निर्जर से सुख होय, सूरि स्वपर हित धारते॥

ॐ ह्रीं सूरि-परमनिर्जराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥148॥

निर्जर अग्नि जलाय, कर्म विपिन को दहन करि।
ज्ञान वह्नि उपजाय, मिथ्यात्रय का नाश करि॥

ॐ ह्रीं पाठक-परमनिर्जराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥149॥

अविपाकी व विपाक, द्विविध निर्जरा यति करें।
मनु[1] खग[2] के द्वय पाख[3], शिवपथ नभ में गति करें॥

ॐ ह्रीं साधु-परमनिर्जराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥150॥

(पद्धरि छंद) (तर्ज-रची नगरी छः मास....)

अर्हंत अखंड सुचिद्‌निकाय, भव सिंधु माँहि भवि तारकाय।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य॥

1. मानो, 2. पक्षी, 3. पंख

ॐ ह्रीं अर्हदखंडचिद्निकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।151।।

शिव सकल देह विरहित स्वलीन, चिद्गुण अखंड भोगें प्रवीन।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं सिद्धाखंडचिद्निकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।152।।

चिद् गुण अखंड ग्राहक गणेश, वंदें तिहुँ काल भविक हमेश।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं सूर्यखंडचिद्निकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।153।।

चिद् गुण अखंड तुम ज्ञान मूर्ति, चैतन्य गेह की करत पूर्ति।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं पाठकाखंडचिद्निकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।154।।

चिद् गुण अखंड साधू महान, इस युग में जंगम तीर्थ जान।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं साध्वखंडचिद्निकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।155।।

उत्कृष्ट भोग संयुत जिनेश, तव चरण धरें सिर सुर नरेश।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं अर्हदुत्कृष्ट-भोगसम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।156।।

उत्कृष्ट भोग सम्पन्न सिद्ध, लोकत्रय में शिवसुख प्रसिद्ध।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं सिद्धोत्कृष्ट-भोगसम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।157।।

उत्कृष्ट भोग संपन्न देव, आसन्न भव्य करि चरण सेव।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं सूर्युत्कृष्ट-भोगसम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।158।।

उत्कृष्ट भोग भोगे सुजान, निज पर आतम ज्ञायक प्रधान।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं पाठकोत्कृष्ट-भोगसम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।159।।

उत्कृष्ट भोग भोगे मुनीश, आसन्न धरें तव चरण शीश।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं साध्वुत्कृष्ट-भोगसम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।160।।

भव से परीत भगवन् जिनेन्द्र, शत इन्द्र नमें अरु सब नरेन्द्र।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-परीत-संसाराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।161।।

भव से सुदूर लोकाग्र वास, तव पाद पूजि हों अघ विनाश।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-परीत-संसाराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।162।।

भव से परीत सूरी महान, तीर्थंकरवत् उत्कृष्ट जान।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं सूरि-परीत-संसाराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।163।।

श्री धर्ममूर्ति पाठक गुणीश, भवनाश सु वांछक धरें शीश।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं पाठक-परीत-संसाराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।164।।

भव क्षय हेतू तपसी विशाल, निज शील लीन धरि सुगुणमाल।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं साधु-परीत-संसाराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।165।।

निजपरहितकर गतरागद्वेष, जय स्वात्मलीन अर्हत् जिनेश।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-स्वपर-हितंकराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।166।।

शिव स्वपरहितंकर कर्महीन, शाश्वत निजात्म गुण नित्य लीन।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-स्वपर-हितंकराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।167।।

मातैव[1] हितंकर सूरिदेव, तव जजत गुणी बनता स्वमेव।।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं सूरि-स्वपर-हितंकराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।168।।

निज पर हितैषि पाठक महान, श्रुतज्ञान विपुल चारित्र खान।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

1. माँ के समान

ॐ ह्रीं पाठक-स्वपर-हितंकराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।169।।

आरंभ विषय व कषाय हीन, निज पर हितैषि यति स्वात्मलीन।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं साधु-स्वपर-हितंकराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।170।।

जय अचल शील सम्मुख जिनाय, करि शुक्ल ध्यान निज भव नशाय।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं अर्हदचलशील-सम्मुखाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।171।।

शिव अचल शील शाश्वत सुलब्ध, गत परपरिणति विभाव अलब्ध।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं सिद्धाचलशील-सम्मुखाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।172।।

तुम अचल शील त्रय राग हीन[1], निज स्वात्मसुथिर अनुभव प्रवीन।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं सूर्यचलशील-सम्मुखाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।173।।

जय अचलशील सुज्ञान सिंधु, भवि पावें नित नित ज्ञान बिंदु।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

ॐ ह्रीं पाठकाचलशील-सम्मुखाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।174।।

वर अचल शील धारक ऋषीश, भवि पाय सुगुण धरि चरण शीश।
चैतन्य पूर्ण गुण नित्य वंद्य, सिद्धादि चक्र वंदूँ अनिंद्य।।

1.अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान चारित्रमोहनीय हीन

ॐ ह्रीं साध्वाचलशील-सम्मुखाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।175।।

(चौपाई छंद)

स्वपर हितंकर लब्धी दाता, अर्हत् जिन उर में बिठलाता।
सिद्ध अर्चना नित सुखदायी, सिद्धि हेतु हम पूज रचायी।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-स्वपरहितोपलब्धि-प्रदायकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।176।।

हितकर स्वपर लब्धि गुणभोगी, सिद्ध अमल वर शील नियोगी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-स्वपरहितोपलब्धि-प्रदायकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।177।।

स्वपर हितैषी गुरुवर ज्ञानी, सत्त्वमात्र को अभय प्रदानी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-स्वपरहितोपलब्धि-प्रदायकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।178।।

उपाध्याय गुरु ज्ञान प्रकाशा, स्वपर हितोपलब्धि गुण भासा।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-स्वपरहितोपलब्धि-प्रदायकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।179।।

मुनि निर्ग्रन्थ स्वपर हितकारी, स्वात्मलब्धि वा गुण अधिकारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-स्वपरहितोपलब्धि-प्रदायकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।180।।

सुगुणाक्षीण अप्रतीघाती, अर्हत् देव घाति विधि घाती।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हदक्षीणगुणाप्रतिघाताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।181।।

सिद्धाक्षीण सुगुण भंडारा, मोक्ष सदन का इक आधारा।
सिद्ध अर्चना नित सुखदायी, सिद्धि हेतु हम पूज रचायी।।

ॐ ह्रीं सिद्धाक्षीणगुणाप्रतिघाताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।182।।

सदाक्षीण गुण सूरी धारें, भवि को भवदधि पार उतारें।।टेक।।
ॐ ह्रीं सूर्यक्षीणगुणाप्रतिघाताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।183।।

पाठक नित्य गुणों के ज्ञाता, शुभ अक्षीणऋद्धि दे साता।।टेक।।
ॐ ह्रीं पाठकाक्षीणगुणाप्रतिघाताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।184।।

गुण अक्षीण साधु प्रगटावें, लब्धि अनंत सिद्धि सब पावें।।टेक।।
ॐ ह्रीं साध्वाक्षीणगुणाप्रतिघाताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।185।।

शुद्ध स्वभाव प्रवर्तक ईशा, भवदधि तारक पुण्य गिरीशा।।टेक।।
ॐ ह्रीं अर्हत्-शुद्धस्वभावप्रवृत्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।186।।

शुद्ध स्वभाव सदानिजलीना, पंक अशुद्ध भाव धो दीना।।टेक।।
ॐ ह्रीं सिद्ध-शुद्धस्वभावप्रवृत्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।187।।

शुद्ध स्वभाव सदा दृगचारी, सूरी अशुभ नशे अविकारी।।टेक।।
ॐ ह्रीं सूरि-शुद्धस्वभावप्रवृत्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।188।।

छोड़ अशुद्ध शुद्ध परिभोगी, पाठक शील प्रवर्तक योगी।।टेक।।
ॐ ह्रीं पाठक-शुद्धस्वभावप्रवृत्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।189।।

शुद्ध स्वभाव प्रवर्तक पंथी, गत विभाव वंदूँ निर्ग्रन्थी।
सिद्ध अर्चना नित सुखदायी, सिद्धि हेतु हम पूज रचायी।।

ॐ ह्रीं साधु-शुद्धस्वभावप्रवृत्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।190।।

विमुख सर्व पर द्रव्याकांक्षा, अर्हत् रहित सर्व आकांक्षा।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-परद्रव्याकांक्षा-विमुखाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।191।।

पर द्रव वांछा रहित नियोगी, सिद्ध समान न अन्य अयोगी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-परद्रव्याकांक्षा-विमुखाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।192।।

सूरि कभी ना परद्रव चाहें, स्वात्म तत्त्व में नित अवगाहें।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-परद्रव्याकांक्षा-विमुखाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।193।।

पाठक स्वपर द्रव्य उपदेशी, परद्रव वांछा से नित द्वेषी।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-परद्रव्याकांक्षा-विमुखाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।194।।

साधू परद्रवकंखविहीना, शुद्धातम गुण में लवलीना।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-परद्रव्याकांक्षा-विमुखाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।195।।

रहित पुनर्भवकांक्षा स्वामी, निश्चित अर्हन् जिन शिवगामी।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हदपुनर्भवकांक्षिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।196।।

कांक्ष पुनर्भव मूल विनाशी, सिद्ध गुणी नित शिवपुरवासी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्धापुनर्भवकांक्षिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।197।।

कांक्ष पुनर्भव सूरी त्यागें, प्रतिक्षण मोक्ष मार्ग में लागें।
सिद्ध अर्चना नित सुखदायी, सिद्धि हेतु हम पूज रचायी।।

ॐ ह्रीं सूर्यपुनर्भवकांक्षिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।198।।

भव में पुनर्जनम नहिं आशा, पाठक दें नित तत्त्व प्रकाशा।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठकापुनर्भवकांक्षिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।199।।

अपुर्नजन्म श्रमण अभिलाषी, मुक्ति सुंदरी बनती दासी।।टेक।।

ॐ ह्रीं साध्वपुनर्भवकांक्षिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।200।।

सर्व कुराग प्रभो हंतारी, अर्हत् पद के भव्य पुजारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हद्-विषयानुरागहंताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।201।।

सर्वरोग निःशेष सुकर्ता, तव चिंतन भवि का दुख हर्ता।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-विषयानुरागहंताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।202।।

सूरी विषय राग नित छोड़े, मुक्ति रमा से नाता जोड़े।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-विषयानुरागहंताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।203।।

विष सम विषय राग के त्यागी, पाठक चिन्मय सुगुण सुपागी।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-विषयानुरागहंताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।204।।

विषय राग की दाह अनोखी, मुनिवर धारें समता चोखी।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-विषयानुरागहंताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।205।।

(घत्ता छंद)

जिनदेह सुयुक्ता, तदपि विरक्ता, गुणअनुरक्ता प्रभुदेवा।
भवि देह नशाने, निज गृह पाने, करें चरण की नित सेवा।।

ॐ ह्रीं अर्हद्-देहे सति - देहातीतानुभूताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।206।।

जय मुक्तीकंता, शिवभगवंता, सिद्ध प्रभो को नित्य जजूँ।
शुभ वसु गुण पाने, कर्म नशाने, ज्ञानशरीरी सिद्ध जजूँ।।

ॐ ह्रीं सिद्ध - देहातीतानुभूताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।207।।

शुभ निकल सुवांछा, विदेह-कांक्षा, सूरी वंदन नित्य करें।
भव-भव का क्रंदन, कर्म विभंजन, निज गुण पा शिव वाम वरें।।

ॐ ह्रीं सूरि-देहे सति देहातीतानुभूताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।208।।

जय पाठक ज्ञानी, उत्तम ध्यानी, तन अभिलाषा नाश करें।
त्रय तिमिर नशाके, ज्ञान सुपाके, मुक्ति वधू की आस करें।।

ॐ ह्रीं पाठक-देहे सति देहातीतानुभूताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।209।।

मुनि देह विरक्ता, निकल सुरक्ता, ज्ञान शरीरी बन पावें।
जय संयम साधक, जिन आराधक, वसुविध नश वसु गुण पावें।।

ॐ ह्रीं साधु-देहे सति देहातीतानुभूताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।210।।

ये जीव नादि से, है प्रमाद से, स्वातम गुण विद्वेष करे।
तुम उसके नाशक, अर्हत् शासक, घाति नाश गुण नंत भरे।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-स्वात्मगुणविद्वेषविनाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।211।।

जय श्री सिद्धीश्वर, आत्म महीश्वर, स्वातम गुण प्रगटायक हो।
गुण द्वेष विनाशक, सिद्धी शासक, शाश्वत दृष्टा ज्ञायक हो॥

ॐ ह्रीं सिद्ध-स्वात्मगुणविद्वेषविनाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥212॥

यतिवर गणनायक, धर्मप्रदायक, स्वात्मगुणी नित अनुरागी।
गुण द्वेष विभंजक, कर्म प्रभंजक, पंचाचार सु नित पागी॥

ॐ ह्रीं सूरि-स्वात्मगुणविद्वेषविनाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥213॥

जिनमत उत्थापक, श्री जिन पाठक, तम अज्ञान विनाशक हो।
विद्वेष विनाशक, निजगुण वांछक, जिनमत भावी शासक हो॥

ॐ ह्रीं पाठक-स्वात्मगुणविद्वेषविनाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥214॥

अवगुण निर्मूला, निजगुण फूला, मुनि रत्नत्रय धारी हो।
निज आत्म विहारी, नित अविकारी, जिनमत नित्य प्रचारी हो॥

ॐ ह्रीं साधु-स्वात्मगुणविद्वेषविनाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥215॥

जिन अमूढ़ दृष्टा, शाश्वत सृष्टा विश्वमूढ़ता नित्य हरें।
श्री अर्हत् देवा, शक्र सुसेवा, इन्द्र चाकरी नित्य करें॥

ॐ ह्रीं अर्हत्-शाश्वत-अमूढदृष्टियुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥216॥

शाश्वत शुभ दृष्टी, अमूढ़ सृष्टी, सिद्ध सदा आनंदमयी।
अमूढ़ हो जावें, हम भी पावें, आत्मविभव चैतन्यमयी॥

ॐ ह्रीं सिद्ध-शाश्वत-अमूढदृष्टियुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥217।

सन्मार्ग प्रदर्शक, अमूढ़ दर्शक, शाश्वत गुण के अभिलाषी।
आचार सु पालें, सब अघ टालें, चेतन गुण के विश्वासी॥

ॐ ह्रीं सूरि-शाश्वत-अमूढदृष्टियुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥218॥

जय उपाध्याय यति, शुद्धमहामति, ज्ञानमूर्ति अविनाशक हो।
श्री अमूढ़ दृष्टी, संयम वृष्टी, भावी जिनमत शासक हो॥

ॐ ह्रीं पाठक-शाश्वत-अमूढदृष्टियुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥219॥

शुभ दृष्टी शाश्वत, अमूढ़ भास्वत, नित्य हिताहित ज्ञायक हो।
हितकर निर्ग्रन्थी, नित शिवपंथी, मुक्ति वधू के लायक हो॥

ॐ ह्रीं साधु-शाश्वत-अमूढदृष्टियुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥220॥

जय जिन निःशंकित, धर्मालंकृत, सर्वद्रव्य संशयहारी।
अरिहंत जिनेशा, योगि गणेशा, शुद्ध चेतना अविकारी॥

ॐ ह्रीं अर्हत्-परमनिःशंकित-भावधराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥221॥

शंका के हारक, भवदधि तारक, भवि उपकारक सिद्ध प्रभो।
जो भवि नित ध्यावे, निज सुख पावे, लहे निधि चैतन्य विभो॥

ॐ ह्रीं सिद्ध-परमनिःशंकित-भावधराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥222॥

शंकायें टालें, सम्यक् पालें, पंचाचार यतीश्वर हैं।
सूरीवर स्वामी, शिवपथ गामी, भव्य महीपति ईश्वर हैं॥

ॐ ह्रीं सूरि-परमनिःशंकित-भावधराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥223॥

शंका परिहारक, ज्ञान प्रचारक, ज्ञानसिंधु पाठक मानो।
शिवमारग प्रेरक, भव विच्छेदक, उत्तम उपकारक जानो।।

ॐ ह्रीं पाठक-परमनि:शंकित-भावधराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।224।।

श्रमणों की प्रतिमा, गुरुगुण गरिमा, महिमा शब्दातीत कही।
संशय विनशावे, सत् प्रकटावे, पावे केवलज्ञान मही।।

ॐ ह्रीं साधु-परमनि:शंकित-भावधराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।225।।

सब अशुभ विनाशक, शुद्ध प्रकाशक, दुर्लेश्या का अंत करें।
श्री जिनवर स्वामी, अंतर्यामी, भवि लख निर्मल भाव धरें।।

ॐ ह्रीं अर्हदशुभलेश्याभाव-विनाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।226।।

आतम का लेपन, कर्म विलेपन, दुर्भावों से नित होवे।
श्री शिवपुरवासी, चित्तविलासी, लेश्या भाव सदा धोवें।।

ॐ ह्रीं सिद्धाशुभलेश्याभाव-विनाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।227।।

सब लेश्या अशुभा, नश सूरिशा, शुभलेश्या अवगाह करें।
सब अशुभ विनाशें, तत्त्व प्रकाशें, मुक्ती संग विवाह करें।।

ॐ ह्रीं सूर्यशुभलेश्याभाव-विनाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।228।।

दुर्लेश्या नाशन, विधी[1] प्रकाशन, उपाध्याय गुरु नित्य करें।
भवि चरण वास कर, अशुभ नाश कर, संयम ले भवनीर तरें।।

ॐ ह्रीं पाठकाशुभलेश्याभाव-विनाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।229।।

1. Methods

दुर्लेश्या नाशी, आत्म प्रवासी, रत्नत्रय अवधारक हो।
उपयोग विशुद्धी, आतम शुद्धी, पाकर आत्म सुधारक हो।।

ॐ ह्रीं साध्वशुभलेश्याभाव-विनाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।230।।

(सारछंद) (तर्ज-पीछी रे पीछी....)

वेदवासना जीत आपने, कामदेव को मारा।
निज आतम का वैभव निज में, प्रकट किया है सारा।।
स्वातम वैभव पाने को हम, तव पद शीश झुकाएँ।
जिनपद पद्म पुष्प पर अलिवत्, नित्य नित्य मंडराएँ।।

ॐ ह्रीं अर्हद्-वेदत्रयाभिलाषा-जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।231।।

वेदत्रय का नाश किया तुम, आत्मवेद[1] के रागी।
भववर्द्धक स्वातम दाहक यह, काम दहे शिव रागी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-वेदत्रयाभिलाषा-जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।232।।

विषय वासना त्यागी मुनिवर, शीलवसन नित धारें।
स्वातम रस का अशन पान कर, मन्मथ को संहारे।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-वेदत्रयाभिलाषा-जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।233।।

पाठक यति ने मार मार[2] को, तीनों वेद पछाड़े।
संयम तरुवर को थिर करने, ज्ञान थंभ नित गाड़े।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-वेदत्रयाभिलाषा-जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।234।।

---

1. ज्ञान, 2. कामदेव

विष सम विषय वासना तज के, समता अमृत पीते।
साधु भक्ति की प्राणवायु ले, स्वस्थ जिन्दगी जीते।।
स्वातम वैभव पाने को हम, तव पद शीश झुकाएँ।
जिनपद पद्म पुष्प पर अलिवत्, नित्य नित्य मंडराएँ।।

ॐ ह्रीं साधु-वेदत्रयाभिलाषा-जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।235।।

दस मुंडन का मुंडन करके, मुंडक परम कहाए।
परम संयमी अरिह देव के, जग नित मंगल गाए।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-दसमुण्डन-मुण्डकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।236।।

सर्व कर्म का मुंडन करके, सिद्ध बने अविकारी।
त्रयविध विधि का मुंडन करके, बने स्वात्म गुणधारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-दसमुण्डन-मुण्डकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।237।।

स्वपर मुंड की विधी बतावें, पंचाचार सँभारें।
सूरी दमी संयमी साधक, हम सब नित्य निहारें।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-दसमुण्डन-मुण्डकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।238।।

इंद्रिय पगकर वच मन सिर का, मुंडन करते भारी।
निज मुंडन कर तुंड[1] तुंग रखि, तिनके हम आभारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-दसमुण्डन-मुण्डकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।239।।

दस मुंडन से युक्त साधु ही, दसों धर्म को पाते।
दस दिशि छोड़ स्वात्म गति पावें, भव सागर तिर जाते।।टेक।।

1. सिर

ॐ ह्रीं साधु-दसमुण्डन-मुण्डकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।240।।

सर्व परिग्रह वर्जित स्वामी, अर्हत् जीवन मुक्ता।
जिनके दर्शन वंदन से हो, रत्नत्रय संयुक्ता।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हत्-सर्वसङ्गविवर्जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।241।।

कर्म संग का संग छोड़कर, निःसंगी अविनाशी।
अचल अमल निष्कल शुभ चेतन, शाश्वत शिवपुरवासी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-सर्वसङ्गविवर्जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।242।।

द्वैविध संग[1] को छोड़ सूरि ने, संघ चतुर्विध पाया।
चउ आराधन का यह थानक[2], भव्यों के मन भाया।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-सर्वसङ्गविवर्जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।243।।

पुद्गल संग छोड़ निःसंगी, ज्ञान संग कर अंगी।
पाठक यतिवर शिक्षा देते, तजो मोह बहुरंगी।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-सर्वसङ्गविवर्जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।244।।

संग त्याग बिन साधू ना हो, श्रमण सु संगति कीजे।
संगासक्त त्यागकर भविजन, स्वातम रस नित पीजे।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-सर्वसङ्गविवर्जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।245।।

सर्व मृषा के मोचक जिनवर, सर्वज्ञा हितकारी।
तिनकी दिव्यध्वनी भविजन को, प्रतिपल हो सुखकारी।।टेक।।

---

1. परिग्रह, 2. स्थान

ॐ ह्रीं अर्हन्नवकोटिभिःसर्वमृषामोचकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।246।।

मृषा रूप संसार त्यागि जिन, मुक्ति सदन को पाया।
शाश्वत सत्य स्वात्म वैभव ही, सिद्ध प्रभो को भाया।।
स्वातम वैभव पाने को हम, तव पद शीश झुकाएँ।
जिनपद पद्म पुष्प पर अलिवत्, नित्य नित्य मंडराएँ।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-नवकोटिभिःसर्वमृषामोचकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।247।।

मृषावाद से दूर रहें नित, सन्मारग दिखलाते।
ऐसे सूरी गुरु चरणों में, भवि निज हित-हितु आते।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-नवकोटिभिःसर्वमृषामोचकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।248।।

सत्यमार्ग उपदेशक मुनिवर, पूर्ण मृषा के त्यागी।
ऐसे पाठक गुण सागर के, चरण शरण अनुरागी।।टेक।।

ॐ ही पाठक-नवकोटिभिःसर्वमृषामोचकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।249।।

मृषावाद से परे नित्य ही, अनुपम जिनका जीवन।
मृषा वृत्ति दुखखान कही जिन, तप में बीता यौवन।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-नवकोटिभिःसर्वमृषामोचकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।250।।

भव कानन में वर निर्देशक, जिनवर त्रिभुवन स्वामी।
निकट भव्य जिनभक्ती करके, बनते शिवपुर गामी।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हद्-भवकानने सर्वोत्कृष्ट-निर्देशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।251।।

भव कानन के पार पहुँचकर, शिव प्रासाद बनाया।
तव पथ पर भवि चलें निरंतर, जिनको तव पद भाया।।
स्वातम वैभव पाने को हम, तव पद शीश झुकाएँ।
जिनपद पद्म पुष्प पर अलिवत्, नित्य नित्य मंडराएँ।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-भवकानने सर्वोत्कृष्ट-निर्देशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।252।।

भव कानन में मार्ग प्रदर्शक सूरी गुरुवर प्यारे।
कलियुग में तीर्थंकर वत् ये, शाश्वत शरण हमारे।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-भवकानने सर्वोत्कृष्ट-निर्देशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।253।।

दुख में गहन विपिन में केवल, पाठक गुण अवलंबन।
दुख को सुख में परिणत करने, दे औषध संजीवन।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक - भवकानने सर्वोत्कृष्ट - निर्देशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतयेनमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।254।।

तमोच्छिन्न भव कानन में यति, दीप समा नित जलते।
शिवपथ पर नित बढ़े स्वयं भी, आश्रय पा भवि चलते।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-भवकानने सर्वोत्कृष्ट-निर्देशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।255।।

भववारिधि से नित उद्धारक, जिनमत नित्य प्रणेता।
तव पूजन से पूजक बनते, मोक्ष मार्ग के नेता।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हद्-भववारिधि-स्वपरोद्धारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।256।।

भव सागर उद्धारक निश्चय, सिद्ध मोक्षपुरवासी।
सिद्ध अर्चना सदा रचाते, चेतन गुण अभिलाषी।।टेक।।

ॐ ह्रीं सिद्ध-भववारिधि-स्वपरोद्धारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।257।।

आचार्यों का शुभाचार नित, निज पर भव उद्धारक।
धर्मदेशना है गुरुवर की, पाप ताप संहारक।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूरि-भववारिधि-स्वपरोद्धारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।258।।

उपाध्याय की वाणी देती, भवि को आतम तृप्ती।
इनकी चरण छाँव में होती, चेतन गुण अभिव्यक्ती।।टेक।।

ॐ ह्रीं पाठक-भववारिधि-स्वपरोद्धारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।259।।

भव सागर से श्रमण दिगंबर, स्वयं तिरें अरु तारें।
रत्नत्रय से जड़ित सर्वदा, गुरु निर्ग्रन्थ हमारे।।टेक।।

ॐ ह्रीं साधु-भववारिधि-स्वपरोद्धारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।260।।

(महार्घ्य)

(चौपाई छंद)

अर्हत् आदि पंचगुरु स्वामी, अंतर बसें जु अंतर्यामी।
पंचभ्रमण तज शिव सुख पाऊँ, तबलौं पन गुरु शीश झुकाऊँ।।

ॐ ह्रीं अनंतगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

शान्तये शान्तिधारा....।।

दिव्यपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

जाप्य– ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः।।

जयमाला

(दोहा)

अनुपम गुण सिद्धेश के, अनुपम मोक्ष सु मार्ग।
जयमाला गुण गूँथ रचि, त्यागूँ सकल कुमार्ग॥

(सवैया छंद) (तर्ज–भला किसी का....)

सिद्धालय के वासी भगवन्, सिद्धि वधू के कंत सुजान।
तीन लोक में परम शुद्ध जो, अविकारी अविचल सु महान॥
नोकर्मों को नाश आपने, ज्ञान रूप तन पा अविकार।
भाव कर्म को हुए नाशकर, राग द्वेष दलदल से पार॥1॥

द्रव्य कर्म के मूल भेद वसु, नाथ प्रभो पाया शिवराज।
बावन कम दो शत विधि प्रकृती, नाश चिदंबर श्री जिनराज॥
सिद्धानंत समूह मध्य में, शाश्वत आसन पा गुणवान।
तीन लोक के जीव मात्र में, निष्कल ज्येष्ठ सिद्ध भगवान॥2॥

द्रव्य कर्म की मूल व उत्तर, उत्तरोत्तर प्रकृति का नाश।
संख्यातासंख्यात नंत गुण, पाए निज चिद् किया निवास॥
परम शुद्ध है नियति भव्य की, आए उसको करने प्राप्त।
भाव भक्ति वश सिद्धार्चन की, अरु गुणमाला होने आप्त॥3॥

सिद्धों जैसा रूप हमारा, ढाके हुए मोह अज्ञान।
तम अज्ञान व मोह नाशकर, स्वात्म द्रव्य को अब पहचान॥
शंकादिक दोषों से विरहित, शुभ सम्यक्त्व सदन अविकार।
नंत ज्ञान को पाने हेतू, ज्ञान ज्योति निज चित में बार॥4॥

सकल आवरण नशकर स्वामी, युगपत् ज्ञान दरश प्रगटाय।
केवल बुध को पाने हेतू, संयम निधि को भवि अपनाय॥

संयम बिन ना परम ओहि हो, मनःपर्यय ना संभव है।
घाति कर्म क्षय भी संयम से, संयम से ही मोक्षपथ है॥5॥

संयम से अविकल्प ध्यान भी, शुद्धोपयोग वा शुभ चारित।
नवकोटी से सर्वकर्म तज, निज में आतम हो वासित॥
श्रेष्ठ धर्म वा शुक्ल ध्यान भी, संयम तरु के फल पहचान।
संयम शुभ का हेतू प्रगटे, संयम की अभिसन्धी[1] जान॥6॥

(दोहा)

सिद्धों की शुभ अर्चना, आतम हित के काज।
तीव्र भक्तिवश मैं जजूँ, कृपा करो शिवराज॥

ॐ ह्रीं अनन्तगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(चउबोला छंद)

भाव सहित सिद्धों का अर्चन, भव भव दुःख विनाशक है।
सिद्ध देशवासी की भक्ती, चिद्गुण पूर्ण विकासक है॥
अति निर्मल निज भाव बनाकर, सिद्धार्चन करने आया।
तीव्र पुण्य का उदय सु पाकर, पाई जिनशासन छाया॥

॥ इत्याशीर्वादः ॥

★ **दुज्जणो पुण्णकज्ज-विमुहो।**

(*असोग-रोहिणी चरियं-10/77*)

दुर्जन पुण्य कार्य से विमुख होता है।

1. संकल्प

(अथ अष्टम-कोष्ठोपरि-दिव्य-मंगल-पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

अष्टम पूजन

स्थापना

(गीतिका छंद) (तर्ज-मैं देव श्री अरिहंत....)

सिद्ध भू लोकाग्र संस्थित, सर्व शिव निवसे जहाँ।
धरहि संयम भव्य योगी, कर्म हनि पहुँचे वहाँ।।
सिद्ध लोक रु भूमि सिद्धा, शिला सिद्धी हित जजें।
सदा आह्वानन करें हम, सिद्धिपति बनने भजें।।

(दोहा)

रजतमयी शुभ सिद्ध है, शाश्वत शिला पुनीत।
भव्य सिद्ध वंदन करें, करें इन्हीं से प्रीत।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्ध समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्ध समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्ध समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम्।

अष्टक

(विष्णु पद) (तर्ज-कहाँ गये चक्री....)

केवल मिहिर रश्मि सम अनुपम, पुष्कर हम लाए।
अंबुसार[1] से जज नित चाहें, रोग विनश जाए।।

---

1. जल,

सिद्धक्षेत्र सिद्धों से शोभित, शाश्वत गुणधारी।
स्वयं सिद्ध पद पाने को नित, पूजूँ अविकारी॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

नित्य निरंजन पद मैं चाहूँ, जिनवर अर्चन से।
चंदन ले सिद्धीश्वर पूजूँ, नित मन वच तन से॥ सिद्धक्षेत्र...॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्यः संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

अक्षत सम मम शील सुअक्षत, उसको नित भजता।
सिद्धशिला के सब सिद्धों को, शालि चढ़ा जजता॥सिद्धक्षेत्र...॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्योऽक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

सब ऋतु के शुभ कुसुम मनोहर, शिव अर्चन लाया।
निर्विकार मन्मथ जयि होने, तव पद सिर नाया॥ सिद्धक्षेत्र...॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

शुद्ध ब्रह्म के शुद्ध गुणों का, मैं नित भोग करूँ।
उत्तम षट्रस मिश्रित चरुवर, मुक्ति नारी वरूँ।।सिद्धक्षेत्र...॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्यो क्षुधाादिरोग-विनाशनाय नेवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

क्षायिक दर्शन ज्ञान दीप का, नित्य उजास भरे।
दीप चढ़ा शिवलोक जजूँ मैं, अघ सब नाश करे।।सिद्धक्षेत्र...॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्यो मोहान्धकार- विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

धूप दशांगी ले नित पूजूँ, सिद्ध शिला भायी।
वसुविधि नाशूँ गुण वसु पाने, पूजन सुखदायी।।
सिद्धक्षेत्र सिद्धों से शोभित, शाश्वत गुणधारी।
स्वयं सिद्ध पद पाने को नित, पूजूँ अविकारी।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्यो अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

जग के श्रेष्ठ सुखद फल लेकर, सिद्ध सभी वंदूँ।
सिद्ध क्षेत्र में हम भी निवसें, शाश्वत आनंदूँ।।सिद्धक्षेत्र...।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्यः महामोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

उत्तम रतन मिलाकर हमने, अर्घ्य बनाया है।
पद अनर्घ्य अरु सिद्धक्षेत्र मन, मेरे भाया है।।सिद्धक्षेत्र...।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्योऽनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

अर्घ्यावली 576 अर्घ्य

(श्रीनंदी छंद) (तर्ज-मीठो मीठो बोल....)

''सर्ववस्तु का अग्राहक'' गुण नाम, कर्म विहीन सदा पावें शिवधाम।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं सर्ववस्तु-अग्राहकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

''पाप पुण्य से रहित'' सदा सिद्धेश, सर्वसंग तज लहें स्वात्म शिव देश।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं अपापपुण्याय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

''परमविवेक''सुधारेंसिद्धजिनेश,तिनकेचरणनिनमूँत्रिकालविशेष।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।
ॐ ह्रीं परमविवेकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

''स्वपरप्रबोधक''वासकरेंशिवदेश,परपरिणतिकोत्यागगहूँजिनभेष।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।
ॐ ह्रीं स्वपरप्रबोधकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

परम''परमहित''साधकशिवअविकार,पूजकपूज्यबनेलेतवआधार।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।
ॐ ह्रीं परमहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

''गुणसंवर्द्धक''सिद्धप्रभूकानाम,वसुगुणपानेजपूँसिद्धवसुयाम।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।
ॐ ह्रीं गुणसंवर्द्धकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

सर्वजीतशिव''अजितेश्वर''अखिलेश,स्वात्मविभवदरशायकनित्यजिनेश।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।
ॐ ह्रीं अजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

तीनलोकसंभ्रान्तिककारककाम,नशेकामफिरहुएसिद्ध''निष्काम''।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।
ॐ ह्रीं निष्कामाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

योगत्रय से कंपरहित नित जान, सिद्ध ''अचल'' शिव अमृत सुख की खान।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं अचलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

उपमा रहित ''अनुपमेया'' जिन आप, नाम जपत ही मिट जाते सब पाप।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं अनुपमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।10।।

''पाप ताप संताप मिटा'' अभिशाप, तीन लोक में आप सरीखे आप।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं पापनिवारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।11।।

''गुण अभेद'' धारक शाश्वत परमेश, तव भक्ती कर पाएँ गुण सर्वेश।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं गुण-अभेदाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।12।।

हैं ''विभाव से वर्जित'' सिद्ध महंत, सिद्ध अर्चना करती भव का अंत।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं विभावपर्यायवर्जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।13।।

''शुद्ध स्वभाव भाव से नित संयुक्त'', विभाव परिणति क्षीण करें हों मुक्त।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं स्वभावपर्याययुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।14।।

''स्वात्मस्वतंत्ररमे''वर सिद्धीकंत, सिद्धगुणोंका ध्यानकरे अघअंत।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं स्वात्म-स्वतंत्र-रमणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।15।।

''परमज्ञानसद्ज्योति''रूप सिद्धेश, तदपि स्वात्म में लीन रहें मुक्तेश।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं ज्ञानज्योतिषे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।16।।

हो''अक्षोभ्य''भावकावर्द्धननित्य, क्षोभरहितचिद्परिणतिपाईसत्य।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं अक्षोभ्यभाववर्द्धकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।17।।

मुक्तिरमापति''सर्वदोषसेमुक्त'', परिणमतेप्रतिकालतदपिहैंशुद्ध।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं सर्वदोषविमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।18।।

''भवकारणउज्झितत''जिनशाश्वतलीन, प्रकटीशिवपरिणतिकरविधिप्रक्षीण।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं भवकारणोज्झोतिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।19।।

शुद्धसिद्धभगवान्''धर्मकीमूर्ति'', सिद्धध्यानबिननहींहोभविअमूर्त।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं धर्ममूर्तये श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।20।।

''जिनशासन के नित्य प्रभावक'' आप, नाममात्र भी हरता भवि के पाप।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं जिनशासन-प्रभावकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।21।।

अनुपम ''गुण मंडित'' स्वातमरस खान, जिन उर बसते वे भावी शिव जान।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं उत्तम-गुणमण्डिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।22।।

शुद्धातम से ''निःसृत निर्भरनंद'', सिद्ध प्रभु हैं शाश्वत आनंद कंद।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं स्वात्म-निःसृत-निर्भरानंदाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।23।।

''कारक स्वपर विबोध'' आप निष्काम, तव अर्चन से हो शिवपुर विश्राम।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं स्वपर-विबोधकारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।24।।

पूर्ण तत्त्व के वेत्ता जिनवर 'बुद्ध', पूजत तुमको होए भव्य प्रबुद्ध।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं बुद्धाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।25।।

किए सिद्ध सिद्धेश्वर सब पुरुषार्थ, कहलाए तत्क्षण ही जिन 'सिद्धार्थ'।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं सिद्धार्थाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।26।।

प्रमुख योगियों का है सुलक्ष्य ध्यान, ध्येय पूजकर पाऊँ केवल ज्ञान।
सिद्धों की अर्चा देती गुणधाम, सिद्ध अर्चना शिवपुर का पैगाम।।

ॐ ह्रीं योगीश्वराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।27।।

(मुकलोत्तर छंद) (तर्ज- मेरे यार सुदामा रे....)

''लब्धयथा गुण में संतुष्टी'', आत्म गुणों की हो नित पुष्टी।
दोष सकल मैं निशदिन नाशूँ, स्वपर ज्ञान विज्ञान प्रकाशूँ।।
नित मोद मनाऊँ रे ऽऽ, निज अशुभ भाव विनशाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं यथालब्धस्वकीय-गुणतुष्टाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।28।।

''स्वात्मोत्पन्न सुगुण'' नितधारी, कालत्रय में शिव अविकारी।
पूजा भक्ति भाव युत करते, सिद्ध प्रभो को नित उर धरते।।
नित हर्ष मनाओ रे ऽऽ, भव्यों करताल बजाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं स्वात्मोत्पन्नगुणयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।29।।

शुद्ध ''स्वभाव पुष्ट'' सिद्धीश्वर, स्वात्म महीश्वर अन्य न ईश्वर।
सिद्ध स्वात्म भोक्ता अविकारी, चरणों में नित बलि-बलिहारी।।
नित जिन गुण गाऊँ रे ऽऽ, गुण गौरव प्रभु का गाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं स्वभावपुष्टाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।30।।

विपुल ''स्वात्म वैभव'' सम्पन्ना, स्वात्म विभव में नहीं विपन्ना।
चेतन निधि भोक्ता अनियारे, सकल भव्य के एक सहारे।।
आतम निधि पाऊँ रे ऽऽ प्रभु चरणों में नित आके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं स्वात्मवैभव-सम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।31।।

''निर्मल स्वातम गुणधर'' योगी, ब्रह्म परम के प्रतिपल भोगी।
अबंभ[1] खार नीरवत् त्यागा, शुद्धुपयोग शुद्ध चिदि जागा।।
तुम सम बन जाऊँ रे ऽऽ, तुम सम शिव पथ अपनाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं अमल-गुणधारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।32।।

स्वात्म ''अमलगुणकारक'' देवा, भवकारक अघ के नित छेवा।
पुण्य सदन भव्यों के कारक, महादुखार्णव से उद्धारक।।
अतिशय पुण्य बढ़ाऊँ रे ऽऽ, जिन सदन में पूज रचाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं अमलगुणकारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।33।।

निर्मलतर ''निर्मलतम'' ईशा, संस्तुति करें जिनेंद्र गिरीशा।
भवि जो नाम मात्र उच्चारे, पाप समूह निमिष में टारे।।
निर्मल चित्त बनाऊँ रे ऽऽ, तव गुण सन्निधि को पाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं परमनिर्मलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।34।।

''नंत ज्योति'' पुंजा गुणधीरा, शुद्ध स्वभाव गुण्य गंभीरा।
पार अभव्य कभी ना पाते, कर्दम सम भवदधि रम जाते।।
गुण दीप जलाऊँ रे ऽऽ, तव चिद् प्रकाश में आके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

1. अब्रह्म

ॐ ह्रीं अनंतज्योतिषे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।35।।

एकअखण्डस्वभावसुधारक,है 'अभिन्न' विधिरिपुकेमारक।
भव सागर से हो उद्धारक, भव प्रत्यया सुनिश्चित हारक।।
भवदधि तर जाऊँ रे ऽऽ, सिद्धेश निकल गुण गाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं अभिन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।36।।

विधि स्याद्वाद प्रवर उन्नायक, मोक्ष मार्ग के शाश्वत नायक।
'भिन्नाभिन्न' अंश अरु अंशी, भव्य जीव नित हैं तव वंशी।।
पद तुम सा पाऊँ रे ऽऽ, द्वय पद को हृदय बसाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं भिन्नाभिन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।37।।

नित्य निरंजन आत्मविहारी, ''खेदतमः शिव रवि परिहारी''।
अचल प्रदेश चलाचल भावा, शाश्वत चिन्मय तव शुभ आभा।।
पद अचल सु पाऊँ रे ऽऽ, परमेश्वर शरणा पाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं अखेदाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।38।।

त्रैकालिक त्रय ''वेद विनाशी'', शाश्वत स्वात्म वेद अविनाशी।
ज्ञायक निश्चय इतर नयों कर, सकल स्वात्म गुण धारक श्रीवर।।
श्रीपति बन जाऊँ रे ऽऽ, जिनवर चरणों को ध्याके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं अवेदाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।39।।

''काय सकल हंता'' अविनाशी, स्वात्म गुणों के पूर्ण विकासी।
विश्वासी चिद्रूप स्वभावी, शिव वामा नित अविनाभावी।।
प्रभुमय हो जाऊँ रे ऽऽ, जिन शासन छाया पाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं अकायाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।40।।

इन्द्र समान ''इंद्रिय हीना'', स्वत्व लीन नित स्वात्म प्रवीना।
निज स्वभाव में पूर्ण विहारी, तदपि नित्य स्वातम अविकारी।।
अक्षजयी हो जाऊँ रे ऽऽ, तप से यह देह तपा के।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं अतीन्द्राय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।41।।

''योगत्रय निर्वृत्ती'' युक्ता, योगायोग नियोग विमुक्ता।
भोग रोग अरु शोक विनाशी, स्वात्म भोग के योग्य सुशासी।।
योगत्रय विनशाऊँ रे ऽऽ, योगीश शरण को पाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं योगनिवृत्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।42।।

भवकारक है योग नियामक, लेय प्रथम से तेरस ठानक।
''अयोग केवलि'' सदा विमुक्ता, सिद्ध सदैव योग परिमुक्ता।।
त्रय योग नशाऊँ रे ऽऽ, अविचल संयम को पा के।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं अयोगस्वरूपाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।43।।

''कषाय हेतु रहित'' शिवकंता, सिद्ध प्रभो शाश्वत भगवंता।
नादि भ्रमण अघ कर परिहंता, लहें स्वात्म गुण नित्य अनंता।।
गुण मैं भी पाऊँ रे ऽऽ, प्रभुवर यश को नित गाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं कषायहेतुरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।44।।

''नश्वर ज्ञान रहित'' विज्ञानी, ध्यान तुम्हीं ध्यातव्य ध्यानी।
ध्यान शब्द व्यवहार न आवे, ध्याता ध्यान लगा शिव पावे।।
शिवरमणी पाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों का ध्यान लगा के।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं नश्वरज्ञानरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।45।।

भोग राग रोगों का मूला, भव तन राग दुखद अनुकूला।
राग द्वेष सम मेरू चूला, सिद्ध ध्यान कर करि निर्मूला।।
विधि पंक नशाऊँ रे ऽऽ, मुक्तिपथ को अपनाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं रागद्वेषनिर्मूलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।46।।

''ज्ञानविपर्यय'' रहित सदा ही, अच्युत शुद्ध ज्ञान शिव माही।
प्रतिपल शुद्ध शील में राजें, सिद्ध समूह मध्य में साजे।।
निरुपम पद पाऊँ रे ऽऽ, द्वय पद की पूज रचाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं विपर्ययज्ञानरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।47।।

''मिथ्यात्रय के मूल विनाशक'', सम्यक्त्रय के पूर्ण प्रकाशक।
निज आतम के शाश्वत भासक, लोकत्रय के अनुपम शासक।।
शिव शरणा पाऊँ रे ऽऽ, जिनवर की अर्चा गाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्रयरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।48।।

''त्रयविध करम विहंता'' स्वामी, लोकत्रय में शिव अविरामी।
आप निरंतर अंतर्यामी, तव चरणों में नित्य नमामी।।
चिन्मय गुण पाऊँ रे ऽऽ, वसु विध सब कर्म नशा के।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं त्रिविधकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।49।।

जीव विपाकी सभी विनाशी, चिद् परिणति है नित अविनाशी।
मनु[1] पर्याय द्रव्य गुण दासी, हम नित रहें सिद्धपद वासी।।
नित मंगल गाऊँ रे ऽऽ, जिन मंगल शरणा पाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं जीवविपाकिकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।50।।

पुद्गल कर्म विपाकी जानो, ताको फल पुद्गल में मानो।
नाशे तिन अविनाश तभी हों, स्वात्म ध्यान से नाश सभी हों।।
निज सिद्धी पाऊँ रे ऽऽ, सिद्धी वामा गुण गाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

1. मानो

ॐ ह्रीं पुद्गलविपाकिकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।51।।

आनूपूर्वी ''क्षेत्र विपाकी'', विग्रह गति में हो परिपाकी।
जीव पर्याप्त कभी न भोगे, ऐसे शाश्वत कर्म नियोगे।।
सिद्धों को ध्याऊँ रे ऽऽ, सिद्धीश्वर महिमा गाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं क्षेत्रविपाकिकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।52।।

आयू कर्म नियत भव जानो, चउभव से संबंधित मानो।
तन में नियत समय तक रोके, मुक्ति पाय भव चउविधि खोके।।
भव भ्रमण नशाऊँ रे ऽऽ, शुभ पंचमहाव्रत पाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं भवविपाकिकर्मरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।53।।

शाश्वत ''परम विधी विज्ञायक'', मोक्ष-मार्ग शाश्वत प्रगटायक।
रत्नत्रय के नित्य प्रदायक, शाश्वत मौन छंद गुण गायक।।
शाश्वत रस पाऊँ रे ऽऽ, रत्नत्रय भाव सु भाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं परमविधिस्वरूपाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।54।।

''शाश्वत परम शुद्ध उपयोगी'', आत्म प्रदेशों में सुख भोगी।
भोक्ता भोग भोग्य अविकारी, कर्म हीन शिव पद अधिकारी।।
वसु वसुधा पाऊँ रे ऽऽ, वसु द्रव्य चरण चढ़ा के।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं शाश्वतशुद्धोपयोगाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।55।।

''सादि अनंत'' नंत गुणराशी, शाश्वत स्वात्म प्रदेश प्रवासी।
पंच परावर्तन के नाशक, लोकत्रय के अनुपम शासक।।
भवभ्रमण नशाऊँ रे ऽऽ, जिनवर गुणराशि पाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं सादि-अनंताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।56।।

''शुद्ध परिणमन रूप'' तिहारा, निर्मल रूप परम अविकारा।
अच्युत अमल अखण्ड अरूपा, शाश्वत परम शुद्ध निजरूपा।।
पद अच्युत पाऊँ रे ऽऽ, जिन सौरभ सुमन सु पाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं शुद्धपरिणमन-स्वरूपाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।57।।

विगत ''उदित अवसान'' नियोगी, योग वियोग रहित अनुयोगी।
वर्जित आमय[1] सर्व निरोगी, शाश्वत स्वातम गुण संयोगी।।
स्वातम गुण पाऊँ रे ऽऽ, निज अघ संताप नशाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं उदितावसान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।58।।

कलुषित भाव पूर्णतः नाशे, भाव ''अकलुषित'' स्वत्व प्रकाशे।
शाश्वत परम धवल अविकारी, चिन्मय रूप भविक बलिहारी।।
शाश्वत पद पाऊँ रे ऽऽ, शाश्वत प्रभु के गुण गाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

1. रोग

ॐ ह्रीं अकलुषिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।59।।

पुद्‌गल कृष्ण धवल भी होवे, शुद्धातम ना कलुषित होवे।
''परम धवलता'' रूप तिहारा, भव्यों को प्राणों से प्यारा।।
चिद् धवल बनाऊँ रे ऽऽ, सिद्धेश छवी को ध्याके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं परमधवलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।60।।

आतम ''टंकोत्कीर्ण'' सु जानो, शाश्वत स्वात्म प्रदेश समानो।
गुण प्रगटें फिर नष्ट न होते, कर्म कालिमा सारी धोते।।
क्षायिक गुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, तव चरण शरण को पाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं टंकोत्कीर्णाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।61।।

''सहज शुद्ध'' परिणाम तिहारा, नाशे चेतन का अघ सारा।
अमल धवल निर्मल शुभ ज्योती, सिद्धों में शाश्वत शुभ होती।।
चिद् ज्योति पाऊँ रे ऽऽ, शुभ निर्मल भाव बना के।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं सहजशुद्धाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।62।।

''अतिशय परम रूप'' के धारी, तदपि आप निश्चित अविकारी।
जन जन के नित नित मनहारी, नाशे सारे भाव विकारी।।
भव भाव नशाऊँ रे ऽऽ, भावन सोलह नित भाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं अतिशयरूपाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।63।।

''व्यक्त और अव्यक्त'' सु जानो, व्यक्ताव्यक्त रहित पहचानो।
सिद्धों का स्वरूप ये प्यारा, नाशे निश्चित करमनि कारा।।
भव पाश नशाऊँ रे ऽऽ, जिनवर से प्रीति बढ़ा के।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं व्यक्ताव्यक्तरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।64।।

''शाश्वत रूप निमग्ना'' स्वामी, शाश्वत गुण भोगी अविरामी।
अंतर जानें अंतर्यामी, तव भक्ती करती निष्कामी।।
निज काम नशाऊँ रे ऽऽ, निःकांक्षित भाव जगाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं शाश्वतरूपनिमग्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।65।।

''शुद्ध स्वरूपे स्थित'' जिनदेवा, कर्मविलीन सुगुण शिवदेवा।
गुणपुंजा अघनाशन हारे, भविक शरण जिन पाद तिहारे।।
जिन शरणा पाऊँ रे ऽऽ, सर्वोत्तम द्रव्य चढ़ाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं शुद्धस्वरूपस्थिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।66।।

'श्रीमान्' आत्मविहारी ध्येया, भव तन भोग रहित विज्ञेया।
निजगुण भाव ध्रौव्य शुभ रूपा, स्वातम सिद्ध परिणति स्वरूपा।।
शिवपरिणति पाऊँ रे ऽऽ, निज में निज को परिणाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं श्रीमते श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।67।।

''शाश्वत स्वत्व मंडिता'' धीरा, निज नित आतम गुण गंभीरा।
पहुँचे भवसागर के तीरा, तव पूजन को चित्त अधीरा।।
उभय भक्ति पाऊँ रे ऽऽ, जिनवर वचनों को पाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं शाश्वतस्वत्वमण्डिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।68।।

''स्वस्य चतुष्टय'' में नित राजे, सिद्ध क्षेत्र में सदा विराजे।
नंत गुणों से शाश्वत साजे, अध्वनि रूप स्वरूप सु गाजे।।
नंतचतुष्टय पाऊँ रे ऽऽ, चउ घाति विधी नशाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं स्वचतुष्टयराजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।69।।

हीन अधिक वर्जित शुभ ईशा, शाश्वत मौन स्वरूप गिरीशा।
लोकत्रय के नित्य अधीशा, शाश्वत नमते सिद्ध मुनीशा।।
स्मरजयी[1] हो जाऊँ रे ऽऽ, प्रभु की जयकार लगाके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं अहीनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।70।।

अधिक अधिक अधिकाधिक हीना, स्वस्य स्वत्व में सदा सुलीना।
जग पंडित तुम महाप्रवीना, शुद्ध सु परिणति नित्य नवीना।।
चिद् वैभव पाऊँ रे ऽऽ, शुभ शुक्ल ध्यान को ध्याके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

---

1. काम विजयी

ॐ ह्रीं अनधिकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।71।।

अशुभ समासम रहित नियंता, विषम विषमतर हीन जयंता।
कर्म विहीन सिद्ध भगवंता, बने निमित्त कर्म वसु हंता।।
पंचम गति पाऊँ रे ऽऽ, कर्मों का ठाठ जला के।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं समविषमरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।72।।

''गत उत्सर्ग'' अनुत्सर्गा हो, निज स्वरूप में नित अवगाहो।
पर तज नित्य स्वत्व गुणराधी[1], शाश्वत चिन्मय रस आस्वादी।।
चिद्‌रस मैं पाऊँ रे ऽऽ, भक्ति से तुम्हें रिझा के।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं गतोत्सर्ग-अनुत्सर्गाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।73।।

कल्प ''कल्पना रहित'' जु समता, सिद्ध प्रभो नित गुण भगवंता।
चिंतन परे अचिंत गुणाकर, मेरे उर तिष्ठो शिव नागर।।
सब कर्म खपाऊँ रे ऽऽ, जिनवर छवि चित्त बसा के।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं कल्पनातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।74।।

कल्पित शब्द अकल्पित भूती, सिद्धों की पावन अनुभूती।
लोकत्रय में वंदनीय शुभ, ''सिद्ध अकल्पित'' सिद्धीश्वर शुभ।।
गुण पूज रचाऊँ रे ऽऽ, जिन चैत्य सदन में आके।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

1. आत्मा

ॐ ह्रीं अकल्पनीयरूपाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।75।।

''छेदन भेदन'' रहित विकर्मा, शाश्वत धर्ममूर्ति जिनधर्मा।
पर परिणत अवशोषणहारी, स्वात्म गुणों के नित्य पुजारी।।
सुख निःश्रेयस पाऊँ रे ऽऽ, कर्मों का चक्र नशा के।
निजगुण प्रगटाऊँ रे ऽऽ, सिद्धों की पूज रचाके।।

ॐ ह्रीं अच्छेदनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।76।।

(तोमर छंद)

वसु कर्म का है पंक, अतएव शिव ''अकलंक''।
सिद्धेश जी अविकार, वंदन करो स्वीकार।।

ॐ ह्रीं अकलंकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।77।।

''गत निर्वाण क्रिया'' नाथ, नाशे करम के बाण।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं गतनिर्वाण-क्रिया श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।78।।

निज आत्म ईश ''चिदेश'', उत्कृष्ट हो परमेश।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं चिदेशाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।79।।

प्रभो सिद्ध जिन ''अमोघ'', कर चेतना का भोग।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं अमोघाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।80।।

शब्दों कि होवे सीम, ''गत शब्द'' आप असीम।
सिद्धेश जी अविकार, वंदन करो स्वीकार।।

ॐ ह्रीं अशब्दाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।81।।

''शिवसूर्य'' देव महेश, मैं भी चलूँ शिवदेश।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं शिवसूर्याय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।82।।

''गमन आगमन विमुक्त'', अद्भुत गुणों से युक्त।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं गमनागमनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।83।।

शिवराज ''कालातीत'', करुँ काल यहाँ व्यतीत।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं कालातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।84।।

''मंगल'' तुम्हीं प्रसिद्ध, अघ को गलाया सिद्ध।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं मंगलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।85।।

पापों से नित्य रिक्त, पूजें ''अनघ'' अतिरिक्त।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं अनघाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।86।।

किया पंच अक्ष दमन, ''दमी'' हो तुम्हें नमन।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं दमिने श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।87।।

ना क्लेश कोई शेष, पूजूँ सदा ''जितक्लेश''।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं जितक्लेशाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।88।।

निश्चय तथा व्यवहार, ''लोकज्ञ'' विज्ञ उदार।
सिद्धेश जी अविकार, वंदन करो स्वीकार।।

ॐ ह्रीं लोकज्ञाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।89।।

त्रय लोक के सरताज, शिव ''लोकगुरु'' विख्यात।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं लोकगुरवे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।90।।

देवों के हो ''अधिदेव'', पूजूँ सदा जिनदेव।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं देवाधिदेवाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।91।।

सुज्ञान लक्ष्मी नाथ, है नंत शिव के साथ।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं अनंतश्रीजुषे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।92।।

सब देव में हो ''श्रेष्ठ'', भवि को सदा परमेष्ट।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं देवश्रेष्ठाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।93।।

यति के ''परम आराध्य'', आसन्न भवि को साध्य।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं परमाराध्याय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।94।।

शिव वास तै शिवलोक ''अवलोक लोकालोक''।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं अवलोकलोकालोकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।95।।

निज गुण स्वयं प्रकटाय, ''स्वै बुद्ध'' जिन कहलाय।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं स्वयंबुद्धाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।96।।

है ज्ञान जिनवर नंत, नित ही दिपै शिव संत।
सिद्धेश जी अविकार, वंदन करो स्वीकार।।

ॐ ह्रीं सदाप्रकाशाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।97।।

बड़ा आपसे है को, ''महाज्येष्ठ'' जगपति हो।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं महाज्येष्ठाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।98।।

अंतर बाह्य परकार, द्वय ''श्रीपती'' सरकार।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं श्रीपतये श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।99।।

उत्कृष्ट पद पा आप, ''परआत्म'' हरते पाप।। सिद्धेश....।।

ॐ ह्रीं परात्माय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।100।।

तुम जो बसे शिवधाम, वह है ''परम'' अभिराम।
पूजा करूँ अष्टांग, बनने स्वयं भगवान।।

ॐ ह्रीं परमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।101।।

निज आत्म नंतानंद, हो भोग ''परमानंद''।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं परमानन्दाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।102।।

''अखिलार्थदर्शी'' ज्ञान, जग जानते विज्ञान।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं अखिलार्थदर्शिने श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।103।।

शिव स्वातमा का नंद, अविनष्ट ''नित्यानंद''।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं नित्यानंदाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।104।।

त्रैलोक में दें नंद, ‘‘शंकर’’ सदा जगवंद्य।।
पूजा करूँ अष्टांग, बनने स्वयं भगवान।।

ॐ ह्रीं शंकराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।105।।

शिव नंत सुख में लीन, ‘‘शंभव’’ निजात्म प्रवीन।।पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं शंभवाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।106।।

जिन ‘‘नंतदानी’’ आप, तुमको नमन निष्पाप।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं अनंतदानाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।107।।

जय ‘‘अनंतलब्धि धार’’, गुण रत्न के आगार।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं अनंतलब्धये श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।108।।

‘‘तेजस्वि’’ अति शिवराज, सिद्धार्चना मम काज।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं तेजस्विने श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।109।।

प्रभू परम पद में थित, ‘‘परमेष्ठी’’ सर्वाजित।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं परमेष्ठिने श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।110।।

ऋषियों के हो महेश, ‘‘परमर्षि’’ आप जिनेश।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं परमर्षये श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।111।।

प्रभु ‘‘योगियों के मुख्य’’, कहलाए जग परमुख।।पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं योगिनामधियोगिने श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।112।।

परम अर्थ के दृष्टा, ‘‘दृग परम’’ जगत् सृष्टा’’।।पूजा करूँ...।।

ॐ ह्रीं परमदृशे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।113।।

''संपूर्ण दोष विमुक्त'', भव बंधनों से मुक्त।।
पूजा करूँ अष्टांग, बनने स्वयं भगवान।।

ॐ ह्रीं गताशेषदोषाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।114।।

गुण आत्मवैभव धाम, है ''आत्मभू'' शुभ नाम।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं आत्मभुवे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।115।।

होवे कभी ना नाश, ''अक्षर'' करें निज वास।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं अक्षराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।116।।

ईश्वर का न हो ईश, ''अनीश्वर'' अतः यतीश।।पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं अनीश्वराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।117।।

करि कर्म शत्रू नाश, ''जिष्णू'' जजूँ अविनाश।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं जिष्णवे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।118।।

भवि के हितैषी आप, ''भविबन्धु'' करुँ तव जाप।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं भविबन्धवे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।119।।

नहीं कर्म का बंधन, ''अबंधन'' करूँ वंदन।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं अबन्धनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।120।।

पर से नहीं हो ज्ञेय, शुद्धात्म शिव 'अमेय'।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं अमेयाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।121।।

भव सत्व से ना चिन्त्य, प्रभो पूजते अचिन्त्य।।
पूजा करूँ अष्टांग, बनने स्वयं भगवान।।

ॐ ह्रीं अचिन्त्याय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।122।।

नहीं अक्ष गोचर हो, नमूँ ''सूक्ष्म'' जिन अमोह।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं सूक्ष्माय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।123।।

जग में सभी से श्रेष्ठ, ''परतर'' अतः जगज्येष्ठ।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं परतराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।124।।

ज्ञानादिक गुण समृद्ध, ''ब्रह्मा'' लहूँ निजनिद्ध।। पूजा करूँ....।।

ॐ ह्रीं ब्रह्माय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।125।।

(भुजंगप्रयात छंद) (तर्ज–नरेन्द्रं फणेन्द्रं....)

नहीं एक भी कर्म शत्रू बचा है, अतः ''पूर्ण नारीश्वरा'' वंदना है।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं पूर्णनारीश्वराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।126।।

व्ययाहीन श्री ''अव्यया'' नित्यरूपा, त्रिलोकाग्रवासी सुब्रह्मा स्वरूपा।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं अव्ययाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।127।।

प्रभो पूर्ण ''ब्रह्मेन्दवे'' नंदलीना, विभो ब्रह्मरूपी निजात्मा विलीना।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं पूर्णब्रह्मेन्दवे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।128।।

सभी कर्म नाशे हुए पूर्ण शुद्धा, नमामी सु ''शुद्धेश'' आत्म-प्रबुद्धा।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं शुद्धेशाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।129।।

स्वकल्याण कार्या हुए सर्व सिद्धा, अतः श्रेष्ठ ''सिद्धेश'' लोक-प्रसिद्धा।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं सिद्धेशाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।130।।

अघाती व घाती हुए कर्म हीना, प्रभो नित्य ''निष्कर्म'' आत्मप्रवीना।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं निष्कर्माय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।131।।

निजात्मस्थ ''ब्रह्मेश'' स्वामी कहाते, सदा ब्रह्म में लीन जैनेन्द्र ध्याते।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं ब्रह्मेशाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।132।।

''अजन्मेय'' ना जन्म होगा कदा भी, रहें शुद्ध पर्याय में ये सदा ही।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं अजन्मेयाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।133।।

निजात्मानुभूती करी सिद्ध देवा, ''स्वसंवेद्य'' स्वामी गही मुक्ति मेवा।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं संवेद्याय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।134।।

''सुपंचेन्द्रियातीत'' सिद्धा कहाए, गुणालीन सिद्धों कि पूजा रचाएँ।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं पञ्चेन्द्रियातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।135।।

किया नष्ट संसार के कारणों को, ''भवारी'' करें शुद्ध भव्या मनों को।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं भवारये श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।136।।

करी अंगना मुक्ति से जो सगाई, हुए ''मुक्तिवामापती'' आत्मरायी।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं मुक्तिवामापतये श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।137।।

निजात्मोपलब्धी लही सर्वसिद्धी, सु ''सिद्धीश्वरा'' पूज होवे प्रसिद्धी।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं सिद्धीश्वराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।138।।

हुए मुक्त सारे जगत् झंझटों से, जजें हो विमुक्ता भवी संकटों से।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं मुक्तात्मने श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।139।।

''वियोगा सुसंयोग मुक्ता'' प्रमाणी, बनूँ आप सा पूजता आत्मज्ञानी।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं वियोगसंयोगमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।140।।

गुणों की महाखान स्वामी अपूर्वा, जजूँ आपको आप सा ही बनूँ वा।।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं गुणाकराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।141।।

''स्वयंभू''स्वयं के हुए आप स्वामी, प्रभो अर्चना से भवी हो अकामी।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं स्वयंभुवे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।142।।

किया नंत संसार को नष्ट दाता, हुए ''नंतजित्'' आप स्वामी विधाता।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं अनंतजिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।143।।

त्रिलोके त्रिकाला हि अज्ञानहारी, नमूँ आपको नित्य विज्ञानधारी।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं विज्ञानधारकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।144।।

हुए सर्वदर्शी प्रभो ''विश्वदृष्टा'' नमूँ स्वात्मनेही शिवा आत्म सृष्टा।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं विश्वदृष्टे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।145।।

कृशे आतमा को कषायें नशायीं, ''महाक्षान्ति''ईशा नमूँ सौख्यदायी।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं महाक्षान्तये श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।146।।

''शमात्मा'' नमामी कषायें नशाऊँ, सु ज्ञानी प्रभो आप सी देह पाऊँ।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं शमात्मने श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।147।।

जु ''रत्यारती भाव'' दोनों नशाएँ, भवी शाश्वता कर्म से मुक्ति पाएँ।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं रत्यारतिभावमुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।148।।

सदा ''सर्व शक्तीयुता'' वंदना हो, नमूँ भक्ति से सिद्ध तो बंध ना हो।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं सर्वशक्तिमते श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।149।।

सदा देव उत्कृष्ट तप्तायमाना, लहें अर्चना से सदा ज्ञान बाना।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं चरमतप्तायमते श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।150।।

''अगम्या'' प्रभो नित्य छद्मस्थ द्वारा, प्रभो अर्चना से मिले मुक्तिद्वारा।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं अगम्याय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।151।।

''निरभ्रा'' सुचैतन्य भानू नमस्ते, तिहारी कृपा से चलें मुक्ति रस्ते।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।

ॐ ह्रीं निरभ्रचैतन्यभानवे श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।152।।

विभावों कि उत्पत्ति ना हो कदाचित्, रमे आप में मोक्ष लौं भक्त का चित्।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं विभावोत्पादवर्जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।153।।

सभी प्राणियों के तुमी ईश प्यारे, भवी को सु ''सत्वेश'' जी हैं सहारे।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं सत्त्वेशाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।154।।

करें भक्ति निश्चै सु ''प्राणेन्द्र'' शंस्या, प्रभो भक्त होवे त्रिलोके प्रशंस्या।
करूँ अर्चना सिद्धचक्रादि स्वामी, लहूँ स्वात्म सिद्धी बनूँ मैं अकामी।।
ॐ ह्रीं प्राणेन्द्राय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।155।।

(पादाकुलक छंद) (तर्ज–फूलों सा चमकता...)

मृत्यु को जीत जिन अमर हुए, 'मृत्युंजय' देव सदा वंदूँ।
निज आत्म गुणों का सौरभ ले, तुम सम निज में नित आनंदूँ।।
ॐ ह्रीं मृत्युंजयाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।156।।

'शुद्धोपयोग फल संयुक्ता', निज हृदय धरूँ भव निर्मुक्ता।
आध्यात्मिक वैभव को पाने, सिद्धेश जजूँ श्रद्धा युक्ता।।
ॐ ह्रीं शुद्धोपयोगफलसंयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।157।।

उत्कृष्ट शांति के पुष्पों से, चैतन्य वाटिका सुरभित है।
पूजूँ 'प्रशान्त' जिन अविनाशी, तव गुण में चित अनुरंजित है।।

ॐ ह्रीं प्रशान्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।158।।

संपूर्ण मोह वाहिनी दुखद, ले शुक्ल ध्यान असि घात दिया।
श्री 'महावीर' परसिद्ध हुए, वंदूँ जिन शिवपद प्राप्त किया।।

ॐ ह्रीं महावीराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।159।।

जीते निज दोष व कर्म सभी, 'जिन सर्व' जजूँ हर्षा करके।
उपकार करें हम पर स्वामी, चैतन्य निधी बरसा करके।।

ॐ ह्रीं सर्वजिनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।160।।

अवगुण दोषों से ऊपर हो, 'उत्थान परम' शिव प्राप्त किया।
पूजूँ निजात्मगुणवासी को, जिनने निज भवनिधि शांत किया।।

ॐ ह्रीं परमोत्थानाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।161।।

तज देह 'विदेही' कहलाय, शिवपद अविनाशी स्वीकारा।
तव पूजन कर हम भी तोड़ें, निज नश्वर कर्मों की कारा।।

ॐ ह्रीं विदेहिने श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।162।।

ना भेद गुणी गुण में होता, तुम 'एकरूप' मम विश्वासी।
श्रद्धायुत अर्घ्य चढ़ाता हूँ, होने को मैं शिवपुरवासी।।

ॐ ह्रीं एकरूपाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।163।।

सिद्धालय थित इक आतम में, सद्धर्म अनेक बताते हैं।
ऐसे 'अनंतधर्मात्मक' को, श्रद्धा युत शीश झुकाते हैं।।

ॐ ह्रीं अनंतधर्मात्मकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।164।।

तिहुँ लोक सिद्ध वसुभूवासी, शिव पुनि भू पर ना आते हैं।
'भवकारण रहित' हुए जिससे, हम तेरी महिमा गाते हैं।।

ॐ ह्रीं भवकारणरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।165।।

परद्रव्यों से संबंध नहीं, स्वातम रस का आस्वाद करें।
'परमावगाह' जिन पूजन से, भवि पाप ताप विधि सर्व हरें।।

ॐ ह्रीं परमावगाहाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।166।।

'चैतन्य वारिधी' डूब- डूब, गुण रत्न पाय नित आनंदें।
अध्यात्म विभव स्वामी होने, निर्मल परिणामों से वंदें।।

ॐ ह्रीं चैतन्यवारिधये श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।167।।

तज सर्व ऋद्धियाँ सिद्ध हुए, चैतन्य सदन विश्राम मिला।
'सब ऋद्धि रहित' जिन की पूजन, करके मेरा मन पुष्प खिला।।

ॐ ह्रीं सर्वऋद्धिरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।168।।

जिन परमार्थिक उत्कृष्ट विधी, पाकर स्वभाव निज लीन हुए।
'लौकिक उपलब्धी विरहित' जिन, तव पूजन कर हम धन्य हुए।।

ॐ ह्रीं लौकिकोपलब्धिरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।169।।

पाकर निज आत्मशत्रु पर जय, लोकाग्र शिखर पर राज रहे।
निज अनुशासक त्रिभुवन शासक, 'त्रैलोक्यजयी' तव शरण गहें।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यजयिने श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।170।।

त्रिभुवन के सब गुण के आश्रय, शिव निजगुण से भरपूर हुए।
निःशेष गुणार्णव गुण पाने, पूजूँ उत्तम निज भाव लिए।।

ॐ ह्रीं निःशेषगुणार्णवाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।171।।

विधि क्षय कर तन तज ऋजु गति से, लोकाग्र शिखर तक जा पहुँचे।
'लोकाग्रवासि' जिन सिद्ध हुए, लेकर परिणाम शुभ्र ऊँचे।।

ॐ ह्रीं लोकाग्रवासिने श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।172।।

तीनों लोकों के स्वामी हो, 'त्रिभुवनपति' सिद्ध शरण आए।
अष्टांग अर्घ्य अर्पित करते, तुम जैसा पद हम भी पाएँ।।

ॐ ह्रीं त्रिभुवनपतये श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।173।।

तनुवात वलय लोकांत कहा, अग्रिम अलोक आकाश मिले।
'लोकांत सुसंस्थिर' सिद्ध प्रभू, पूजा कर कर्म अरण्य जले।।

ॐ ह्रीं लोकान्त-सुस्थिराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।174।।

इस शुद्ध सिद्ध पर्याय का, ना अंत कभी भी होता है।
शिव 'अंतातीत' अतः पूजें, पूजक अघमल निज धोता है।।

ॐ ह्रीं अन्तातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।175।।

ना नाता पर द्रव्यों से कुछ, निज आतम में संस्थिर रहते।
'स्वातम स्थिर' श्री जी पूजा से, विधि नशते श्री गणधर कहते।।

ॐ ह्रीं स्वात्मस्थिराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।176।।

'विश्वोत्तम' सर्व गुणों से युत, जिन परम गुणी अंतर्यामी।
वंदन करते योगत्रय से, बनने को तुम सम निष्कामी।।

ॐ ह्रीं विश्वोत्तमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।177।।

वश कर्मों के आतम अशुद्ध, विधि क्षयकर श्री जिन शुद्ध हुए।
'पर्याय शुद्ध' जिन सिद्ध नमूँ, जो सदा सदा आत्मस्थ हुए।।

ॐ ह्रीं शुद्धपर्याय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।178।।

अविनश्वर 'शुद्ध ध्रौव्य' नामी, दल सर्व दोष अविकार महा।
शुभ भक्ति राग से जिन पूजूँ, मम पुण्य उदय है आज अहा।।

ॐ ह्रीं शुद्धध्रौव्याय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।179।।

सब विधि हन सिद्ध शिला राजे, जिन सिद्ध क्षेत्र के अधिराजा।
गर सिद्ध स्वयं बनना चाहे, तो सिद्ध शरण में तू आजा।।

ॐ ह्रीं सिद्धक्षेत्रभूपतये श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।180।।

(मनोरमा छंद) (तर्ज–जीवन है पानी की....)

'अजर' सिद्ध शाश्वता सदा, जर विहीन चिन्मयी मुदा।
अमल रूप निश्चया नमूँ, तव सुपूज से गुणी बनूँ।।

ॐ ह्रीं अजराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।181।।

'अमर' स्वात्म में रमें अहा, शिव सुपूजते बने महा।
अमल रूप निश्चया नमूँ, तव सुपूज से गुणी बनूँ।।

ॐ ह्रीं अमराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।182।।

'जनम मृत्यु से विवर्जिता', करम नाश शाश्वता जिना।। अमल...

ॐ ह्रीं जन्ममृत्युविवर्जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।183।।

सकल आमया[1] हुए विदा, करम शत्रु को नशें सदा।। अमल...

ॐ ह्रीं सकलरोगरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।184।।

'निकल रूप संस्थिता' प्रभो, गतशरीर पूजता विभो।। अमल...

ॐ ह्रीं निकलरूपस्थिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।185।।

'दुख विमोचिता' निरंजना, शिखर लोक वासते जिना।। अमल...

ॐ ह्रीं दुःखविमोचिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।186।।

'विगतशोक' देह अंतका, निकल निश्चया दुखांतका।। अमल...

ॐ ह्रीं विगतशोकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।187।।

वर 'प्रमेय' आत्म ज्ञायका, विघन हंतका विनायका।। अमल...

ॐ ह्रीं प्रमेयाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।188।।

'कलविवर्जिता' भवांतका, नमन नित्य मोह हंतका।। अमल...

ॐ ह्रीं कलविवर्जिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।189।।

शिव 'अहेतुका' सु वंदिता, जगत में सदा अनिंदिता।
अमल रूप निश्चया नमूँ, तव सुपूज से गुणी बनूँ।।

1. रोग

ॐ ह्रीं अहेतुकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।190।।

'अकृत' जैनधर्मनायकः, सुखद मोक्षमार्ग दायकः।। अमल...
ॐ ह्रीं अकृताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।191।।

'सहज श्रेष्ठ' अच्युता जिना, विफल जन्म ये प्रभो बिना।। अमल...
ॐ ह्रीं सहजश्रेष्ठाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।192।।

'परम भेद' वंदना करें, भवभवादि-क्रंदना हरें।। अमल...
ॐ ह्रीं परमभेदाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।193।।

'भव सुशोषका' प्रसिद्ध हो, गुण सुआत्म से समृद्ध हो।। अमल...
ॐ ह्रीं भवसुशोषकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।194।।

'अचल' आत्म वैभवा सदा, नमन होय चित्त हो मुदा।। अमल...
ॐ ह्रीं अचलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।195।।

'अकल' देहहीन अर्थना, विमल आत्म होय प्रार्थना।। अमल...
ॐ ह्रीं अकलाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।196।।

प्रभु सु पूजता 'अनंतिमा', मम सुशीघ्र हो भवांतिमा।। अमल...
ॐ ह्रीं अनन्तिमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।197।।

जिन 'अमोह' पूर्ण ज्ञान दो, तुमहि लोक में प्रधान हो।। अमल...
ॐ ह्रीं अमोहाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।198।।

करम शत्रु से 'अजेय' जी, तुम हि ज्ञान और ज्ञेय जी।
अमल रूप निश्चया नमूँ, तव सुपूज से गुणी बनूँ॥

ॐ ह्रीं अजेयाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।199।।

जिन शिवत्व अंतहीन हैं, जिन 'अनंत' आत्मलीन हैं॥ अमल...

ॐ ह्रीं अनन्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।200।।

रस सुगंध वर्ण फास ना, जिन 'अमूर्त' हो न आवना॥ अमल...

ॐ ह्रीं अमूर्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।201।।

'नहिं किलेश' हो भवाब्धि में, सु अवगाहते गुणाब्धि में॥ अमल...

ॐ ह्रीं अक्लेशाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।202।।

सब कषाय योग निर्गता, जिन 'अलेश्य' हो जगत् पिता॥ अमल...

ॐ ह्रीं अलेश्याय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।203।।

छल न क्रोध मान लोभ ना, गत कषाय आत्मक्षोभ ना॥ अमल...

ॐ ह्रीं गतकषायाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।204।।

'परमव्यापका' जजूँ सदा, सकल कर्म हों तभी विदा॥ अमल...

ॐ ह्रीं परमव्यापकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।205।।

रहित अंत नित्य 'शाश्वता', नमन सिद्ध स्वातमा रता॥ अमल...

ॐ ह्रीं शाश्वताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।206।।

करम लेप से विहीन हो, जिन 'अलेप' सुप्रवीन हो।
अमल रूप निश्चया नमूँ, तव सुपूज से गुणी बनूँ॥

ॐ ह्रीं अलेपाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।207।।

करम द्रव्य भाव नो गता, जिन 'अकर्म' पूजता सदा॥ अमल...

ॐ ह्रीं अकर्माय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।208।।

सब प्रयोजना सुसिद्ध हैं, अकल 'सिद्ध' सुप्रसिद्ध हैं॥ अमल...

ॐ ह्रीं सिद्धाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।209।।

करम हीन शुद्धता लही, अमर 'शुद्ध' देवता यही॥ अमल...

ॐ ह्रीं शुद्धाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।210।।

'परम तत्त्व' शुद्ध आतमा, शिव शिला बसे शिवातमा॥ अमल...

ॐ ह्रीं परमतत्त्वाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।211।।

'गत उपद्रवा' दशा लही, निधि निजात्म शाश्वता गही॥ अमल...

ॐ ह्रीं गतोपद्रवाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।212।।

'परमवीर्य' प्रार्थना यही, जजत पाय आठवीं मही। अमल...

ॐ ह्रीं परमवीर्याय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।213।।

'गुण अनंत' गुण्य वंदता, सुगुण देख नित्य नंदिता॥ अमल...

ॐ ह्रीं अनंतगुणाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।214।।

त्रिजगतोपमा विहीन हो, 'निरुपमेश' स्वात्मलीन हो। अमल...

ॐ ह्रीं निरुपमेशाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।215।।

गति व आगती न शेष है, नमन सिद्ध जी विशेष है।
अमल रूप निश्चया नमूँ, तव सुपूज से गुणी बनूँ॥

ॐ ह्रीं गत्यागतिरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।216।।

करम सर्वदा निरोधका, 'स्वभवशोषका' प्रणायका॥ अमल...

ॐ ह्रीं स्वभवशोषकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।217।।

'परम कंचना' सु ज्ञायका, परम शुद्ध सौख्य दायका॥ अमल...

ॐ ह्रीं परमकंचनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।218।।

'विगतराग' पूजता महा, सकल राग मैं नशूँ अहा॥ अमल...

ॐ ह्रीं विरागाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।219।।

निज सुवास में सदा रता, गुण सुवास लें शिवामृता॥ अमल...

ॐ ह्रीं अमृताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।220।।

मरण मृत्यु का किया प्रभो, 'निधनहीन' हो गए विभो॥ अमल...

ॐ ह्रीं निधनहीनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।221।।

विगत द्वेष पूजता मुदा, निकल आप सा बनूँ सदा॥ अमल...

ॐ ह्रीं विगतद्वेषाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।222।।

शिव जिनं सदा नमाम्यहं, करूँ विनष्ट वंचना अहं॥ अमल...

ॐ ह्रीं शिवाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।223।।

फल प्रशस्त ध्यान संयुता, निज जिनत्व में रहें सदा।
अमल रूप निश्चया नमूँ, तव सुपूज से गुणी बनूँ॥

ॐ ह्रीं प्रशस्तध्यानफलसंयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।224।।

अशुभ ध्यान को दहा यथा, शिव सु वंश की यही प्रथा॥ अमल...

ॐ ह्रीं दुर्ध्यानविमोचिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।225।।

सकल द्रव्य क्षेत्र काल वा, भव व भाव वर्तना गता। अमल...

ॐ ह्रीं द्रव्यक्षेत्रकाल-भवभावपरावर्तन-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।226।।

रहित व्यक्त रूप शासका, नमन हो निजानुशासका। अमल...

ॐ ह्रीं अव्यक्तशासकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।227।।

विमुख दुःख पाप कर्म वा, नमन 'सुव्रता' सुधर्म वा॥अमल....

ॐ ह्रीं सुव्रताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।228।।

परम 'मुक्तिकंत' शर्मदा, परम सौख्य को जजूँ सदा॥ अमल...

ॐ ह्रीं मुक्तिकंताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।229।।

(राधिका छंद) (तर्ज-मेरी लगी प्रभू से प्रीत....)

अतिशय प्रिय हो जिनदेव, भव्य प्राणी को,
आराध्य मोक्षवर 'प्रेष्ठ', श्रेष्ठ ज्ञानी को।
हम पूजें नंतानंत, मोक्षवासी को,
वंदन करके शिवनाथ, स्वात्मवासी हों॥

ॐ ह्रीं प्रेष्ठाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।230।।

गुण में अत्यंत विशाल, जिनवर गुणराशि।
पूजूँ 'स्थविष्ठ' जिनराज, विश्व अवभासी।।टेक।।

ॐ ह्रीं स्थविष्ठाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।231।।

दर्शन सुख ज्ञान अनंत, नाथ गुणवृद्धा।
जिन 'स्थविर' भक्त नित होय, तव गुण समृद्धा।।टेक।।

ॐ ह्रीं स्थविराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।232।।

तुम श्रेष्ठ मती संपन्न, नंत ज्ञानी हो।
शुभधी 'वरिष्ठ' धी देय, मोक्षगामी हो।।टेक।।

ॐ ह्रीं वरिष्ठाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।233।।

अति सूक्ष्म 'अनिष्ठ' स्वामी, अतः कहलाए।
लेकर भक्ती अनुराग, नाथ गुण गाएँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं अनिष्ठाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।234।।

अत्यंत प्रभो 'स्थिर' रूप, सिद्ध गृह राजे।
संस्थिर हो आप स्वरूप, चित्त में साजे।।टेक।।

ॐ ह्रीं स्थिराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।235।।

चउगति भव किया विनष्ट, 'विश्व मुट्' जाने।
आए तव शरण जिनेश, आत्म निधि पाने।।टेक।।

ॐ ह्रीं विश्वमुट् श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।236।।

विषयों से होय विरक्त, 'विरत' निष्कामी।
तव गुण में हो अनुरक्त, निकट भवि स्वामी।।टेक।।

ॐ ह्रीं विरताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।237।।

तुम सिद्ध अनंतानंत, मध्य एकाकी।
जिन ''विविक्तात्म'' ना शेष, कर्म इक बाकी।।टेक।।

ॐ ह्रीं विविक्तात्मने श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।238।।

ईर्ष्यादि भाव से हीन, 'वीतमत्सर' हो।
हों अवगुण शीघ्र विनष्ट, पूज शिववर को।।टेक।।

ॐ ह्रीं वीतमत्सराय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।239।।

परिग्रह न कुछ भी लेश, नाथ 'निःसंगी'।
बनूँ नित्य वंदना कर, सिद्ध जिन संगी।।टेक।।

ॐ ह्रीं निःसंगाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।240।।

(उभय लाघव छंद) (तर्ज-चालीसा चाल)

जय श्री आत्म सिद्धि लहि शिववर, ''उपशम सम्यक् रहित'' जिनेश्वर।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।

ॐ ह्रीं औपशमिक-सम्यक्त्व-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।241।।

''उपशम चरित भाव से विरहित'', शुद्धातम में नित्य समन्वित।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।

ॐ ह्रीं औपशमिकचारित्र-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।242।।

'मति सुज्ञान भाव क्षयोपशम', सिद्ध प्रभो उससे वर्जित सम।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक॥
ॐ ह्रीं मतिज्ञानक्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।243।।

'सुश्रुत ज्ञान क्षयोपशम वर्जित', शाश्वत ज्ञान किया निज अर्जित।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक॥
ॐ ह्रीं श्रुतज्ञान-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।244।।

है प्रत्यक्ष देश इक अवधि, रहित क्षयोपशम ज्ञान निरवधि।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक॥
ॐ ह्रीं अवधिज्ञान-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।245।।

बुद्धि मनः पर्यय धरि मुनिवर, रहित क्षयुपशम केवलि जिनवर।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक॥
ॐ ह्रीं मन:पर्ययज्ञान-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।246।।

कुमती ज्ञान नंत भव कारण, नष्ट किया करि कर्म निवारण।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक॥
ॐ ह्रीं कुमतिज्ञान-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।247।।

कुश्रुत ज्ञान देवे नित कुगति, नशकर पायी नंत शुद्धमति।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक॥
ॐ ह्रीं कुश्रुतज्ञान-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।248।।

ज्ञानकुअवधि है दुखदायक, नश कर हुए हैं मुक्तिनायक।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं कुअवधिज्ञान-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।249।।

भाव क्षयोपशम चक्षु दर्शन, नश पाया तुम केवल दर्शन।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं चक्षुदर्शन-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।250।।

दर्श अचक्षु धरे त्रस थावर, नष्ट बने तुम मुक्ती के वर।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं अचक्षुदर्शन-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।251।।

भाव क्षयोपशम अवधि दर्शन, नाश किया तुम आतम स्पर्शन।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं अवधिदर्शन-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।252।।

दान लब्धि है भाव क्षयोपशम, क्षय कर क्षायिक दान लिया सम।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं दानलब्धि-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।253।।

लाभ क्षयुपशम आप विराधित, शाश्वत पाया जिन आराधित।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं लाभलब्धि-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।254।।

भोग क्षयुपशम निश्चित नश्वर, क्षायिक भोग लहे अविनश्वर।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं भोगलब्धि-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।255।।

है उपभोग क्षयुपशम वर्जित, क्षायिक भाव हुआ जिन अर्जित।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं उपभोगलब्धि-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।256।।

वीर्य क्षयुपशम नित्य नशाकर, पाया नंतवीर्य शिव ध्याकर।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं वीर्यलब्धि-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।257।।

रहित सिद्ध सम्यक्त्व क्षयुपशम, पाया क्षायिक कर मुक्ती श्रम।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।258।।

रहित क्षयुपशम भाव सु संयम, क्षायिक सुख पाया चिन्मय यम।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं क्षायोपशमिक-चारित्रभाव-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।259।।

रहित संयमासंयम स्वामी, स्वात्मलीन जिन अंतर्यामी।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं संयमासंयम-क्षायोपशमिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।260।।

अति दुखमय गति जानो नारक, नष्ट करी शिव हो भव तारक।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं नरकगति-औदयिकभाव-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।261।।

तिर्यग्गति दुख देय भयानक, नाश आप पहुँचे शिव थानक।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं तिर्यञ्चगति-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।262।।

पंचेन्द्रिय सुख दे गति सुरगति, नशकर बने आप मुक्ती पति।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं देवगति-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।263।।

गति मनुष्य है भव-शिव कारण, शिव निधि पाने किया निवारण।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं मनुष्यगति-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।264।।

स्वातम दाहक है क्रोधानल, नष्ट किया प्रगटा आतमबल।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं क्रोधकषाय-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।265।।

मान कषाय करे चिद् पत्थर, चूर-चूर कर दिया सिद्धिवर।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।
ॐ ह्रीं मानकषाय-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।266।।

माया नित्य भ्रमावे भववन, सिद्ध बने पा सिद्ध आयतन।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।

ॐ ह्रीं मायाकषाय-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।267।।

लोभ सदा स्वातम गुण दाहक, लोभ जलाय भये शिव वाहक।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।

ॐ ह्रीं लोभकषाय-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।268।।

तीव्र वासना वेद नपुंसक, नश कर पाया विभव सिद्धि तब।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।

ॐ ह्रीं नपुंसकवेद-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।269।।

नारी वेद करे गुण छादन, वेद पंक शिव करि प्रक्षालन।
विप्लव विकल विकार विनाशक, नमूँ स्वात्म निवसित अधिशासक।।

ॐ ह्रीं स्त्रीवेद-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।270।।

पुरुष वेद भव भोग दिवाकर, वेद रहित पाया गुण आकर।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं पुरुषवेद-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।271।।

भाव औदयिक मिथ्यादर्शन, करते सिद्ध नाहि संस्पर्शन।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं मिथ्यादर्शन-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।272।।

है अज्ञान दुःखमय आकर, नाश किया केवल बुध पाकर।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं अज्ञान-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।273।।

मोह उदय हो जीव असंयत, करि विनष्ट हो निज आतमरत।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं असंयम-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।274।।

भाव असिद्ध होय औदायिक, नष्ट किया बन सिद्धी नायक।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं असिद्ध-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।275।।

कृष्ण लेश्यमय भाव दुखदमय, नशकर तब हो गए चिदाजय।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं कृष्णलेश्या-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।276।।

भाव नील लेश्या औदायिक, नशकर आप लिया पद क्षायिक।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं नीललेश्या-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।277।।

भाव कपोती जान मलिनतम, ज्ञानी त्यागें सदा अनलसम।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं कापोतलेश्या-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।278।।

पीत लेश्य युत भाव मंद शुभ, जीत बने शिव लोकत्रय प्रभ।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं पीतलेश्या-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।279।।

पद्म भाव नित कहे शुभोत्तर, सिद्ध नाश बन गए सिद्धिवर।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं पद्मलेश्या-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।280।।

शुक्ल लेश्य युत भाव सुनिर्मल, सिद्धों ने त्यागा वह भी मल।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं शुक्ललेश्या-औदयिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।281।।

भव्य भाव मुक्ती का कारक, रहित हुए बन स्वपर सुतारक।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं भव्य-पारिणामिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।282।।

भाव अभव्य नित्य भव हेतुक, ताहि रहित पा विजय सुकेतुक।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं अभव्यपारिणामिक-भावरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।283।।

है जीवत्व पारिणामिक वा, सब जीवों में होय युक्ति वा।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं जीवत्वपारिणामिक-भावसहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।284।।

शाश्वत क्षायिक पाया दर्शन, प्रतिपल करें आत्म संस्पर्शन।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं क्षायिक-सम्यक्त्व-भावयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।285।।

मोह नशा चारित्र सु पाकर, जाय बसे जिन क्षेत्र शिवाकर।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं क्षायिक-चारित्र-भावयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।286।।

कर्म नशाकर उदित ज्ञान रवि, नंत ज्ञान में मौन महाकवि।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं क्षायिक-ज्ञान-भावयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।287।।

दर्शन आवरणी नशि करि जिन, अनंत दर्शी हुए देह बिन।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं क्षायिक-दर्शन-भावयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।288।।

क्षायिक दान लहा शुभ अविचल, विघ्न दान को किया रहित बल।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं क्षायिक-दान-भावयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।289।।

अक्षय लाभ स्वात्म प्रगटाकर, त्यागा भव सुख मोह भगाकर।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल।।

ॐ ह्रीं क्षायिक-लाभ-भावयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।290।।

शाश्वत नंत भोग मय चेतन, भोग विघ्न विधि जला निकेतन।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल॥
ॐ ह्रीं क्षायिक-भोगभाव-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥291॥

शाश्वत उपभोगामृत पीकर, सिद्ध जिए नित शुद्ध चित्त धर।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल॥
ॐ ह्रीं क्षायिक-उपभोगभाव-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥292॥

भव वर्धक सब भाव विवर्जित, शाश्वत चिन्मय निधि कर अर्जित।
नमूँ निरंजन नामी निष्कल, निज आतम निधिपति नित निर्मल॥
ॐ ह्रीं क्षायिक-वीर्यभाव-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥293॥

(शंभु छंद) (तर्ज-हे गुरुवर शाश्वत....)

मन योग विवर्जित सिद्ध प्रभो, चैतन्यमयी शाश्वत आभा।
मन दमन करें मन गुप्ती पा, यतिवर चरणों में सिर नावा॥
मैं नंत सिद्ध के शाश्वत अनुपम वैभव पर ललचाया हूँ।
निर्मल परिणाम बनाकर के, सिद्धार्चन करने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं मनोयोग-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥294॥

प्रत्येक त्रसक नाली में निश्चित वचन योग नित होता है।
जिन वचन सुने जिन थुति बोलें, भव सफल सारथक होता है॥टेक॥
ॐ ह्रीं वचनयोग-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥295॥

संसारी जीव सभी निश्चित, नित काय योग से युत होते।
तन योग विनाशक सिद्ध प्रभो के गुणचिंतन सब अघ धोते॥टेक॥

ॐ ह्रीं काययोग-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।296।।

उपयोगमयी चैतन्य सदा, निज शुद्ध चेतना का वाचक।
प्रभुनंत ज्ञानमय पूर्ण शिवंकर मैं उस गुण का हूँ याचक।।
मैं नंत सिद्ध के शाश्वत अनुपम वैभव पर ललचाया हूँ।
निर्मल परिणाम बनाकर के, सिद्धार्चन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानोपयोग-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।297।।

दर्शन सु शुद्ध चेतन जिनकी, सुज्ञानमयी अविनाभावी।
मैं शुद्ध स्वभाव लहूँ निज में, हो जाऊँ शाश्वत शिव भावी।।टेक।।

ॐ ह्रीं दर्शनोपयोग-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।298।।

तुम भाव असंयम का अधिपाधिप शाश्वत रूप विनष्ट किए।
निज शुद्ध चेतना शुद्ध गुणों, अरु भाव शुद्ध में नित्य जिए।।टेक।।

ॐ ह्रीं असंयम-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।299।।

जो संयम और असंयम से, युत भाव समन्वित देशव्रती।
जिन आप रहित शाश्वत उससे, है नितप्रति वंदन महायती।।टेक।।

ॐ ह्रीं संयमासंयम-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।300।।

वह सामायिक शुभ संयम निश्चित भव संहारक होता है।
धर भव्य जीव उसको जीवन में निज शिवत्व पद जीता है।।टेक।।

ॐ ह्रीं सामायिक-संयम-परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।301।।

जो छेद व पुनि पुनि संस्थापन, इक संयम का शुभ भेद कहा।
जिन आप त्याग कर बने सिद्धिवर पाया आतम विभव महा।।
मैं नंत सिद्ध के शाश्वत अनुपम वैभव पर ललचाया हूँ।
निर्मल परिणाम बनाकर के, सिद्धार्चन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं छेदोपस्थापना-संयम-परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।302।।

परिहार शुद्धि संयत भी जग में मुक्ति सहेली सम जानो।
छोड़ा जिनने वह भी संयम, परिहार कर्म कर शिव आनो।।टेक।।

ॐ ह्रीं परिहारविशुद्धि-संयम-परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।303।।

होती है सूक्ष्म कषाय जहाँ, वह चरित सूक्ष्मयुत हो जाता।
संपूर्ण कषाय नाशकर तब, भवि मुक्ति रमापति बन जाता।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूक्ष्मसाम्पराय-संयम-परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।304।।

जो यथाख्यात चारित जग में, वह शुद्धभावमय कहलाता।
जिन क्षीणमोह करने वाला, उसको भी तज शिवपद पाता।।टेक।।

ॐ ह्रीं यथाख्यातचारित्र-संयम-परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।305।।

सम्यक्त्व मार्गणा नित्य कही, षड् रूप युक्त श्रद्धा मानो।
मिथ्यात्व रहित सम्यक्त्व सदन के सिद्धप्रभो नायक जानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्व-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।306।।

सासादन में सम्यक्त्व सुगुण का आसादन करने वाला।
सिद्धों ने नश पाया निश्चित, शाश्वत अभिराम सुखद माला।।टेक।।

ॐ ह्रीं सासादन-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।307।।

जब मिश्र भाव में मिश्र भाव हों मिथ्या सम्यक् युत जानो।
शत्रूवत् भाव नशाकर वह, जिन सिद्ध चेतना शिव मानो।।
मैं नंत सिद्ध के शाश्वत अनुपम वैभव पर ललचाया हूँ।
निर्मल परिणाम बनाकर के, सिद्धार्चन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं सम्यक्-मिथ्यात्व रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।308।।

शुभ काल मुहूर्त प्रमाण मात्र, उपशम सम्यक्त्व सदा होवे।
वह त्याग प्रथम व द्वितीय उभय तुम कर्म कालिमा सब धोवे।।टेक।।

ॐ ह्रीं उपशम-सम्यक्त्व-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।309।।

क्षयकर विभाव सम्यक्त्व क्षयुपशम जिनवर तुमने टाला है।
जब सर्वकर्म का नाश किया, तब पाई चिद्गुण शाला है।।टेक।।

ॐ ह्रीं क्षयोपशम-सम्यक्त्व-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।310।।

मन संयुत जीव जगत् में निश्चित संज्ञी बनकर जीता है।
जब तक मन का ना नाश होय, वह मनः उदित रस पीता है।।टेक।।

ॐ ह्रीं संज्ञित्व-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।311।।

मन से विहीन जगतीतल पर, सब जीव असंज्ञी कहलाते।
जिन भाव असंज्ञी नाश करे, शिव मुक्ति वधू को परिणाते।।टेक।।

ॐ ह्रीं असंज्ञित्व-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।312।।

तुम सैनि-असैनी उभय भाव से हे शिववर! परिमुक्त रहे।
प्रभु शाश्वत चिद् में वास करें, अरु निज स्वभाव से युक्त रहें॥
मैं नंत सिद्ध के शाश्वत अनुपम वैभव पर ललचाया हूँ।
निर्मल परिणाम बनाकर के, सिद्धार्चन करने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं सैनि-असैनी-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥313॥

पहली अहार पर्याप्ति बिना, यह देह कभी ना बन सकती।
पर्याप्त भाव को नाश किया, पायी चेतन की शुभ शक्ती।।टेक॥

ॐ ह्रीं आहारपर्याप्ति-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥314॥

यह तन पर्याप्ति जिनागम में, भासी जिन देव यथारथ है।
पर्याप्ति शरीर विनष्ट किया, जिन पाया शिव परमारथ है।।टेक॥

ॐ ह्रीं शरीरपर्याप्ति-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥315॥

संसार सुवर्द्धक इंद्रिय जग में विष सम विषयनि रमण करें।
सब त्याग आप ही बने अतीन्द्रिय शिवरमणी का वरण करें।।टेक॥

ॐ ह्रीं इंद्रियपर्याप्ति-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥316॥

यह आनपान पर्याप्ती निश्चित आवश्यक मानी जाती।
इस बिना जीव ना पर्याप्तक हो किंतु जिनेश्वर वह घाती।।टेक॥

ॐ ह्रीं श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥317॥

इस भाषा की पर्याप्ति बिना, ना कोई भाषा बोल सके।
पुनि तिसको नाश किया शिववर ने विधि का बंधन खोल सकें।।टेक॥

ॐ ह्रीं भाषापर्याप्ति-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।318।।

इस मन का कार्य सदा निश्चित है मनः पर्याप्ति कारण है।
नशकर भववर्द्धक भाव प्रभो, तुम कीना कर्म निवारण है।।
मैं नंत सिद्ध के शाश्वत अनुपम वैभव पर ललचाया हूँ।
निर्मल परिणाम बनाकर के, सिद्धार्चन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं मनःपर्याप्ति-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।319।।

वसु कर्म सुयुक्त जीव ही जग में गुण थानक चढ़-चढ़ उतरे।
प्रभु आप अतीत होय गुण थानक निज चित में निज चित्त धरे।। टेक।।

ॐ ह्रीं गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।320।।

यह मिथ्यातम मिथ्यामय जग में शाश्वत भ्रमण कराता है।
जिसने भी इसका नाश किया, वो शाश्वत शिवपद पाता है।।टेक।।

ॐ ह्रीं मिथ्यात्व-गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।321।।

सासादन गुणथानक यात्रा, है पतितमयी निश्चित जानो।
करि सासादन का आसादन, तुम शाश्वत निज वैभव मानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं सासादन-गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।322।।

जहँ सम्यक् वा मिथ्यात्व युक्त, वह भाव मिश्र बन जाते हैं।
निश्चित भव कारक मिश्र भाव, नशकर जिन सिद्धी पाते हैं।।टेक।।

ॐ ह्रीं सम्यक्-मिथ्यात्व-गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।323।।

यह भाव असंयम सम्यक् युत, है फिर भी भव का कारक है।
तिन भावों को तुम नष्ट किया, जिन निश्चित भव उद्धारक हैं।।
मैं नंत सिद्ध के शाश्वत अनुपम वैभव पर ललचाया हूँ।
निर्मल परिणाम बनाकर के, सिद्धार्चन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं अविरत-सम्यक्त्व-गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।324।।

है संयम और असंयम का, यह मिश्र भाव शुभ गति हेतू।
नर पशु ही धारण कर पाते, वह नाश लिया जिन शिव सेतू।।टेक।।

ॐ ह्रीं देशविरत-गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।325।।

संयुत प्रमाद संयत मुनि का, षष्ठम गुणथानक शुभ जानो।
तुम नंतकाल तक कर विनष्ट, जिन लोक शिखर निज गुण आनो।। टेक।।

ॐ ह्रीं प्रमत्तविरत-गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।326।।

यह रहित प्रमाद सुसंयम भी, साक्षात नहीं है शिव हेतू।
तुम अप्रमत्त अतएव थान तज पाया सिद्धि विभव हेतू।।टेक।।

ॐ ह्रीं अप्रमत्तविरत-गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।327।।

वसुथान अपूर्वकरण अनुपम, यह शिव वसु गुण ना दे सकता।
अतएव तीर भव पाने को, श्री जिनवर ही शिव दे सकता।।टेक।।

ॐ ह्रीं अपूर्वकरण-गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।328।।

निर्वृत्ति परिणामों की जहाँ, ना होवे वो अनिवृत्तिकरण।
अनिवृत्ती की वृद्धी करने, किया प्रभु आपने मुक्तिवरण।।टेक।।

ॐ ह्रीं अनिवृत्तिकरण–गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।329।।

तुम विष सम सूक्ष्म कषाय जानकर दशम थान को छोड़ दिया।
आतम में आतम कर लीना, मुक्ति संग नाता जोड़ लिया।।
मैं नंत सिद्ध के शाश्वत अनुपम वैभव पर ललचाया हूँ।
निर्मल परिणाम बनाकर के, सिद्धार्चन करने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं सूक्ष्मसाम्पराय–गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।330।।

निज भव उपशांतकरण युत हो, प्रभु शांत करण अपने करते।
लेकिन सिद्धीश्वर जिन बनने, को त्याग मुक्ति वामा करते।।टेक।।

ॐ ह्रीं उपशान्त मोह–गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।331।।

जहँ क्षीण मोह में मोह क्षीण, है थानक द्वादशांग जानो।
भवि क्षीण मोह थानक सु त्याग, निज सिद्धि अंगना पहचानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं क्षीणमोह–गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।332।।

केवलि सयोग जिन योग सहित, प्रभु केवलज्ञानी कहलाते।
गुणथान त्रयोदशवां तजकर, प्रभु मुक्तिरमा को परिणाते।।टेक।।

ॐ ह्रीं सयोगकेवली–गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।333।।

केवलि अयोग त्रय योग रहित, निश्चित केवलज्ञानी होते।
अत्यल्प काल में शुक्ल ध्यान से, कर्मकालिमा सब धोते।।टेक।।

ॐ ह्रीं अयोगकेवली–गुणस्थानातीताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।334।।

(लावनी छंद) (तर्ज–धीरे–धीरे पग....)

एकादिक पन इंद्रिय विरहित, सिद्ध जीव नित अविकारी,
सिद्धों की शुभ अर्चन करके, बने स्वात्म गुण अधिकारी।
शुद्धातम का विभव सकल हम, जिन भक्ती से पा जाएँ,
कालत्रय में सिद्ध वंदना, करके नित शिव को ध्याएँ।।

ॐ ह्रीं इन्द्रिय–प्राण–रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।335।।

मन वच काय तीन बल प्राणा, रहित सिद्ध जिन भगवंता।
निश्चय प्राण मात्र से जीवें, निज भव का भवि कर अंता।।टेक।।

ॐ ह्रीं बल–प्राण–रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।336।।

आयू प्राण नियम से भव में, भव का कारण होता है।
आयुहीन शाश्वत पद पावे, पाप कर्म वो धोता है।।टेक।।

ॐ ह्रीं आयु–प्राण–रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।337।।

आनपान है प्राण सुदुर्लभ, जिस बिन जीवन ना शक्या।
चिन्मय शाश्वत प्राण वायु वा, सिद्ध बनें हम कर भक्त्या।।टेक।।

ॐ ह्रीं श्वासोच्छ्वास–प्राणरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।338।।

नित्य निगोद योनि सत लक्षा, रहित सिद्ध मंगलकर्ता।
सिद्ध गुणाकर चिन्तन कर भविजन का मोह तिमिर हर्ता।।टेक।।

ॐ ह्रीं नित्यनिगोदयोनि–रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।339।।

इतर निगोद योनि तुम जानो, सप्त लक्ष जिनवाणी से।
शाश्वत दुखपूरित तजकर भवि, सिद्ध बने भव प्राणी से।।टेक।।

ॐ ह्रीं इतरनिगोदयोनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।340।।

सप्त लक्ष पृथ्वीकायिक की, योनी जिनवर ने भाषी।
सिद्ध शरण में नित्य रहें वे, कर्म योनि बनती दासी।।
शुद्धातम का विभव सकल हम, जिन भक्ती से पा जाएँ,
कालत्रय में सिद्ध वंदना, करके नित शिव को ध्याएँ।।

ॐ ह्रीं पृथ्वीकायिक-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।341।।

जलकायिक की सप्त लक्ष हैं, योनी सर्व प्रकृष्टा हैं।
रत्नत्रय की करें साधना, बनते सिद्ध सुसृष्टा हैं।।टेक।।

ॐ ह्रीं जलकायिक-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।342।।

पावककायिक सात लाख हैं, योनि निश्चित दुखदायी।
योनि हेतु को तजकर बंदे, बन जा तू भी जिनरायी।।टेक।।

ॐ ह्रीं अग्निकायिक-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।343।।

वायुकायिकों की योनी जिन, सात लाख ही मानी है।
जो योनी विधि नाश करे तो, होता आतम ज्ञानी है।।टेक।।

ॐ ह्रीं वायुकायिक-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।344।।

योनी वनस्पतीकायिक की, वीर प्रभो दस लाख कहीं।
त्याग सदा आसक्ति सयाने, पा जा तू भी मोक्ष मही।।टेक।।

ॐ ह्रीं वनस्पतिकायिक-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।345।।

दो इन्द्रिय के योनि लाख दो, भव भव में नित दुखकारी।
योनि रहित हो सिद्ध बने जो, वे ही शाश्वत अविकारी॥
शुद्धातम का विभव सकल हम, जिन भक्ती से पा जाएँ,
कालत्रय में सिद्ध वंदना, करके नित शिव को ध्याएँ॥

ॐ ह्रीं द्वीन्द्रिय-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥346॥

तीनेन्द्रिय जीवों के निश्चित, योनि लाख दो समझायीं।
शिवपथ पर चलते यतिवर को, नहीं कभी योनी भायीं॥टेक॥

ॐ ह्रीं त्रीन्द्रिय-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥347॥

चतुरिन्द्रिय की दो हि लाख हैं, भव भव में दुख देती हैं।
जिन वच का जो पान करे नित, जिन माँ[1] दुःखहर लेती है॥टेक॥

ॐ ह्रीं चतुरिन्द्रिय-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥348॥

चार लाख नारक की योनी, कष्ट कलह की दाता है।
इक क्षण भी नारक प्राणी को, मिलती कभी न साता है॥टेक॥

ॐ ह्रीं नरक-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥349॥

चार लाख सुरवर की योनी, जो जाने सो ज्ञाता है।
आत्म ध्यान में लीन रहे नित, वह भवदधि तिर जाता है॥टेक॥

ॐ ह्रीं देव-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥350॥

पंचेन्द्रिय पशु की योनी भी, चार लाख ही बतलायी।
जिनको सिद्धि रमा अति प्यारी, योनी उनको कब भायी॥टेक॥

1. जिनवाणी

ॐ ह्रीं पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।351।।

चौदह लाख मनुज की योनी, जिनवाणी माँ ने गायी।
देहातीत कामना जिनकी, योनी उनको ना भायी।।
शुद्धातम का विभव सकल हम, जिन भक्ती से पा जाएँ,
कालत्रय में सिद्ध वंदना, करके नित शिव को ध्याएँ।।

ॐ ह्रीं मनुष्य-योनि-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।352।।

पृथ्वीकायिक की कुलकोटी, बाइस लाख प्रभो देखीं।
कुलकोटी से रहित आतमा, सिद्ध समा हमने लेखी।।टेक।।

ॐ ह्रीं पृथ्वीकायिक-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।353।।

सात लाख कोटी कुल वारी, जनम मरण बहु करवाए।
कुल कोटी को नाश किए बिन, को इस भव से बच पाए।।टेक।।

ॐ ह्रीं जलकायिक-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।354।।

तीन लाख कोटी पावक कुल, भव दुख कारण परधाना।
मोह व रागद्वेष के कारण, धरता रूप जीव नाना।।टेक।।

ॐ ह्रीं अग्निकायिक-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।355।।

पवन काय के सात लाख हैं, कुलकोटी निश्चित जानो।
देह धर्म को छोड़ सयाने, निज आतम गुण पहचानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं वायुकायिक-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।356।।

अष्टाविंशति लाख कोटि कुल, हरितकाय जिनवर भासी।
सिद्ध प्रभो ने निज गुण पाने, प्रकृति सर्व ही हैं नाशी।।
शुद्धातम का विभव सकल हम, जिन भक्ती से पा जाएँ,
कालत्रय में सिद्ध वंदना, करके नित शिव को ध्याएँ।।

ॐ ह्रीं वनस्पतिकायिक-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।357।।

दो इंद्रिय जीवों के श्रुत में, लाख कोटि सत कुल माने।
कुल कारण को पूर्ण नाशकर, जिन भक्ती कर पहचाने।।टेक।।

ॐ ह्रीं द्वीन्द्रिय-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।358।।

त्रीन्द्रिय जीवों की इस जग में, अष्ट कोटि लख कुल सीमा।
कुल कोटी को नाश किए बिन, कैसे हो सुख से जीना।।टेक।।

ॐ ह्रीं त्रीन्द्रिय-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।359।।

जीव चार इन्द्रिय हैं जग में, लाख कोटि नव कुल धारी।
जिन पूजा से नाश करूँ मैं, बनूँ स्वपर हित अघहारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं चतुरिन्द्रिय-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।360।।

साढ़े बारह लक्ष कोटि कुल, जलचर जीवों के जाने।
भाव सहित जिन भक्ती करके, आए कर्म सु विनशाने।।टेक।।

ॐ ह्रीं जलचर-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।361।।

थलचर जीव जगत् में तिर्यक्, लक्ष कोटि दस कुल गाए।
सिद्ध प्रभो ने स्वातम निधि पा, सर्व कर्म ही विनशाए।।टेक।।

ॐ ह्रीं थलचर-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।362।।

बारह लाख कोटि कुल नभचर, धरें जीव ही संसारी।
तप बल से जिन नाश किया है, बने वही शिव अधिकारी।।
शुद्धातम का विभव सकल हम, जिन भक्ती से पा जाएँ,
कालत्रय में सिद्ध वंदना, करके नित शिव को ध्याएँ।।

ॐ ह्रीं नभचर-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।363।।

कोटि लाख नौ कुल सब तिर्यक्, सरीसर्प दुख भोगी हैं।
योग साधना करके योगी, बनते सिद्ध नियोगी हैं।।टेक।।

ॐ ह्रीं सरीसर्पादि-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।364।।

लाख कोटि पच्चीस बताए, कुल नारक हैं अलबेले।
कर्म उदय से जीव जगत् में, जिन भक्ती बिन दुख झेले।।टेक।।

ॐ ह्रीं नारक-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।365।।

लाख कोटि छब्बीस सुरों के, कुल सब वर्णित जिन वाणी।
जिन देवों की पूजा करके, मुक्त होय हैं भव प्राणी।।टेक।।

ॐ ह्रीं देव-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।366।।

जिन आगम में कुल मानुष कुल, बारह वा चौदस भासे।
लक्ष कोटि परमाण सिद्ध हों, जिन ने तप से सब नाशे।।टेक।।

ॐ ह्रीं मनुष्य-कुलरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।367।।

पंच परावर्तन के पाँचों, प्रत्यय पन अघकारी हैं।
कर्म नाशकर पंचम गति को, पाय वरे शिवनारी हैं॥
शुद्धातम का विभव सकल हम, जिन भक्ती से पा जाएँ,
कालत्रय में सिद्ध वंदना, करके नित शिव को ध्याएँ॥

ॐ ह्रीं सर्वभवप्रत्यय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥368॥

जानो प्रथम प्रत्यय मिथ्यात्व, प्रथम थान जो देता है।
तद्विपरीत भाव सम्यक् है, भव दुख जो हर लेता है॥टेक॥

ॐ ह्रीं मिथ्यात्व-भवप्रत्यय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥369॥

अविरति विरत भाव से हीना, चारों गति में होती है।
अविरत आतम इन चउगति में, बीज पाप के बोती है॥टेक॥

ॐ ह्रीं अविरति-भवप्रत्यय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥370॥

युत प्रमाद से जीव प्रमत्ता, उन्मतवत् अघ को ढोवे।
सिद्धों ने निःशेष किया वह, क्यों न भक्ति कर अघ धोवे॥टेक॥

ॐ ह्रीं प्रमाद-भवप्रत्यय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥371॥

निज आतम को कसे कृशे वा, भाव कषाय दुक्खकारी।
सिद्ध प्रभो कहते भविजन को, नहि कदापि ये हितकारी॥टेक॥

ॐ ह्रीं कषाय-भवप्रत्यय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥372॥

योगत्रय की हो प्रवृत्ति युत, कर्मास्रव नित होता है।
योगहीन श्री सिद्ध महीश्वर, सर्वास्रव को खोता है॥टेक॥

ॐ ह्रीं योग-भवप्रत्यय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।373।।

यद्यपि विकथा भेद चार वा, पच्चिस अथवा ज्यादा हैं।
वे विकथा से रहित बने जिन, संयम युत चित साधा है।।
शुद्धातम का विभव सकल हम, जिन भक्ती से पा जाएँ,
कालत्रय में सिद्ध वंदना, करके नित शिव को ध्याएँ।।

ॐ ह्रीं विकथा-भवप्रत्यय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।374।।

प्रणय भाव है पतन का हेतु, भव सागर में ले डूबे।
भव तन भोग विरक्ती ले शिव पथिक बने जो रति ऊबे।।टेक।।

ॐ ह्रीं प्रणयभाव-भवप्रत्यय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।375।।

सोचे जीव भोग वो भोगे, किन्तु भोग नित भोग रहे।
भोग सु साधन इंद्रिय विजयी, अक्षरहित नित सिद्ध कहे।।टेक।।

ॐ ह्रीं इंद्रिय-भवप्रत्यय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।376।।

निद्रा प्रचला निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचल स्त्यानगृद्धी।
रहित सभी निद्रा से भगवन्, पाई शाश्वत शिव सिद्धी।।टेक।।

ॐ ह्रीं पंचनिद्रा - भवप्रत्यय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।377।।

बंध भाव बंधन का कारण, मुख्य चतुर्विध ये जानो।
प्रकृति बंध से रहित जिनेश्वर, शाश्वत प्रकृति रूप मानो।।टेक।।

ॐ ह्रीं प्रकृति-बंध-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।378।।

स्थिती बंध भव में थिति करता, विधि कषाय से बांधें क्यों।
थिति बंधन के नाश करन को, क्यों ना संयम साधै यों।।
शुद्धातम का विभव सकल हम, जिन भक्ती से पा जाएँ,
कालत्रय में सिद्ध वंदना, करके नित शिव को ध्याएँ।।

ॐ ह्रीं स्थिति-बंध-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।379।।

संसारी अनुभाग बंध तो, नित कषाय से करता है।
आत्मसिद्धि के बिना जगत् में, पल पल अति दुख भरता है।।टेक।।

ॐ ह्रीं अनुभाग-बंध-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।380।।

होय बंध परदेश योग से, किंतु बंध का मुखिया है।
बिना प्रदेश बंध के चेतन, होता शाश्वत सुखिया है।।टेक।।

ॐ ह्रीं प्रदेश-बंध-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।381।।

(द्रुतमध्य छंद) (तर्ज-चालीसा चाल....)

गुप्ती आस्रव उभय निरोधे, स्वातम दृष्टा आतम शोधे।
निज आतम शुभ वैभव पाया, संवर भाव सर्व विनशाया।।

ॐ ह्रीं गुप्ति-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।382।।

समिति पाँच संवर की माता, त्याग बने शिव वर निज ज्ञाता।
सकल कर्म की प्रकृति नशायी, विभाव सर्व परणति हटाई।।

ॐ ह्रीं पञ्चसमिति-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।383।।

निश्चय धार लिया निरग्रन्था, भेद धर्म भव शुभ शिवपंथा।
आए शिवपद भक्ति बढ़ाने, सिद्ध जिनेश्वर के गुण पाने।।

ॐ ह्रीं धर्म-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।384।।

अनुप्रेक्षा द्वादश कहलायीं, वैरागी को प्रतिपल भायीं।
तस फल पाके कर्म नशाया, शाश्वत चिन्मय विभव सुपाया।।

ॐ ह्रीं अनुप्रेक्षा-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।385।।

हुए दिगंबर बन निर्मोही, जीत परीषह तपकर योगी।
कर्म जीत पा सिद्ध विभूती, शाश्वत सकल लही अनुभूती।।

ॐ ह्रीं परीषहजय-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।386।।

अशुभ हारका शुद्ध प्रवृत्ती, शुभ चारित की ये अनुवृत्ती।
चारित का फल हो भव अंता, नादि भ्रमण भव कीना अंता।।

ॐ ह्रीं चारित्र-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।387।।

द्रव्य भाव संवर द्वय भेदा, निश्चित सब भव दुख को छेदा।
सिद्ध जिनेश्वर हीना संवर, पूज पाउँ मैं भी शुभ शिववर।।

ॐ ह्रीं द्रव्यभावसंवर-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।388।।

सकाम निर्जर सबके होवे, करम कालिमा नहिं यह धोवे।
समय पाय फल को दे जाती, फिर भी यह भवदुःख बढ़ाती।।

ॐ ह्रीं सकामनिर्जरा-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।389।।

अकाम निर्जर कहि अज्ञानी, रहित सिद्ध निज आतम ज्ञानी।
भववर्द्धक निश्चित ये मानो, किंचित् अघ हर पुण्य प्रधानो॥

ॐ ह्रीं अकामनिर्जरा-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥390॥

सम्यग्दृष्टी श्रेष्ठ संयमी, मोक्ष सु मारग पर बढ़े दमी।
क्षय से हो अविपाक निर्जरा, क्षय कर होवे नाथ शिववरा॥

ॐ ह्रीं अविपाक-निर्जरा-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥391॥

अथवा द्रव्य भाव द्वय भेदा, निर्जर शिव मारग शुभ मेवा।
मोक्ष महाफल पा सब छोड़ी, सिद्धिरमा से बनाइ जोड़ी॥

ॐ ह्रीं द्रव्यभावनिर्जरा-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥392॥

भव शिव हेतू हीन जिनिंद्रा, करमनाश फल लहा मुनिंद्रा।
शाश्वत सिद्ध क्षेत्र शुभ वासी, मम मति होवे शिवपद दासी॥

ॐ ह्रीं मोक्षपरमपद-स्थिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥393॥

बंध अबंध व्युच्छित्ति कारण, होय पंचभव भ्रमण निवारण।
जिनवर ने वे सभी नशायीं, शाश्वत चिन्मय निज निधि पायी॥

ॐ ह्रीं बंधाबंध-बंध-व्युच्छिन्न-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥394॥

कर्म उदय वा अनुदय भाई, उदय व्युच्छित्ति काम न आई।
कर्म काष्ठ की दहकर ज्वाला, निज का चिन्मय विभव सँभाला॥

ॐ ह्रीं उदयानुदयोदय-व्युच्छिन्न-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥395॥

सत्व असत्व व सत्व व्युच्छित्ति, लहने शिव पद करि निर्वृत्ती।
शाश्वत चेतन गुण भंडारा, शिव वधु संग विभव सम्हारा।।

ॐ ह्रीं सत्त्वासत्त्व-सत्त्व-व्युच्छिन्न-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।396।।

''आर्त ध्यान'' नित क्लेश दिलावे, नित नित दुर्गति में ले जावे।।
ध्यानालंबन अथक भगाया, सिद्धेश्वर शुभ शिव फल पाया।।

ॐ ह्रीं सर्वार्त्त-ध्यान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।397।।

''इष्ट वियोग'' सदा सुखहारी, मन क्लेशित करता अति भारी।
आर्त्त ध्यान परिहार हु सिद्धा, आत्म रसिक गुण रंजित विद्धा।।

ॐ ह्रीं इष्टवियोगजार्त्त-ध्यान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।398।।

''अनिष्ट संयोगज'' दुख कर्त्ता, निज वैभव निधियाँ जो हर्ता।
आर्त अनिष्ट सु दूर भगाकर, सिद्ध बने निज वैभव पाकर।।

ॐ ह्रीं अनिष्टसंयोगजार्त्तध्यान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।399।।

''पीड़ा चिंतन'' तन दुखकारी, सुगुणपुंज जिन नाशनहारी।
शिवप्रभु ने सब पीड़ा नाशी, बने नित्य ही शिवपुरवासी।।

ॐ ह्रीं पीड़ाचिन्तनार्त्तध्यान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।400।।

कांक्ष भोग ''निदान'' बतलाया, आरत भेद अशुभ कहलाया।
शाश्वत भोग पाय शिव कंता, नशे निदान जिनदेव महंता।।

ॐ ह्रीं निदानबन्ध-आर्त्तध्यान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।401।।

रौद्र भाव नित-नित्य बनावे, ‘‘रौद्र ध्यान’’ तब यह कहलावे।
निश्चित नरक आदि दुख हेतू, दुर्गति दुखद सदन का केतू।।

ॐ ह्रीं सर्वरौद्रध्यान - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।402।।

‘‘हिंसानंद’’ महा दुखकारी, रौद्र ध्यान नित नित सुखहारी।
क्रोध लोभ मद दुख युत नंता, क्षयकर नाश हुए भगवंता।।

ॐ ह्रीं हिंसानन्दिरौद्रध्यान - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।403।।

‘‘मृषावाद’’ कर नित आनंदी, रौद्र ध्यान मिथ्या वचनंदी।
तीव्र कषाय करे दुखदाता, नाश बने शिव स्वातम ज्ञाता।।

ॐ ह्रीं मृषानन्दिरौद्रध्यान - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।404।।

परग्राहक चोरी का कारण, चोरी तज भव करहु निवारण।
‘‘नंद चौर्य’’ अघ में बहु लेवे, रौद्र को तज क्यों न जिन सेवे।।

ॐ ह्रीं चौर्यानन्दिरौद्रध्यान - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।405।।

‘‘रौद्र ध्यान’’ दुख का अवतारी, विषय रक्षण परिग्रह धारी।
नाशा उभय संग जिन जीता, पाया शिवफल सुगढ़ सुमीता।।

ॐ ह्रीं परिग्रहानन्दिरौद्रध्यान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।406।।

‘‘दुर्ध्यानों से रहित’’ जिनेश्वर, स्वात्म विभव के आप महीश्वर।
दुर्ध्यानों को नित्य नशाकर, पाऊँ निजपद जिनगुण गाकर।।

ॐ ह्रीं सर्वाप्रशस्तध्यान-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।407।।

(राधिका छंद) (तर्ज–जल फल वसु सजि....)

चिंतन जिन ''आज्ञा'' नित्य, धर्म ध्यान कहे।
शुभ वर्द्धक नित्य महान, शीघ्र पाप दहे।।
है धर्म ध्यान आधार, मोक्ष साधक को।
पाथेय रूप भवि जान, जिनाराधक को।।

ॐ ह्रीं आज्ञाविचयधर्मध्यान–परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।408।।

सु ''अपाय विचय'' गुणखान, धर्म ध्यान परम।
रत्नत्रय साधक जान, नित्य सुगुण वरम्।।टेक।।

ॐ ह्रीं अपायविचय–धर्मध्यान–परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।409।।

सु ''उपाय विचय'' वृषध्यान, मोक्ष निर्देशक।
दुख मोचक श्रेष्ठ उपाय, स्वात्म गुण देशक।।टेक।।

ॐ ह्रीं उपायविचय–धर्मध्यान–परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।410।।

सु ''विपाक विचय'' वृष हेतु, स्वत्व अवभासक।
सब कर्म नाशकर सिद्ध, होय निजशासक।।टेक।।

ॐ ह्रीं विपाकविचय–धर्मध्यान–परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।411।।

शुभ जीव द्रव्य पर्याय, गुण्य शुभ चिंतक।
यह ''जीव विचय'' अविकार, स्वात्म गुण चिंतक।।टेक।।

ॐ ह्रीं जीवविचयधर्मध्यान–परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।412।।

है ''लोक विचय'' वृष ध्यान, भव्य शुभ कारण।
भवि जाने जिनवच धार, नित्य करि वारण।।
है धर्म ध्यान आधार, मोक्ष साधक को।
पाथेय रूप भवि जान, जिनाराधक को।।

ॐ ह्रीं लोकविचय-धर्मध्यान-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।413।।

सु ''विराग विचय'' वृष ध्यान, राग हनन करे।
वृष ध्यान मोक्ष का प्राण, कर्म दहन करे।।टेक।।

ॐ ह्रीं विरागविचय-धर्मध्यान-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।414।।

''भव विचय'' धर्म शुभ ध्यान, सौख्य दे भारी।
फल परम लहा जिन सिद्ध, देव अविकारी।।टेक।।

ॐ ह्रीं भवविचय-धर्मध्यान-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।415।।

इस ''अजीव'' सुमध्य जीव, शील ना छोड़े।
निज शील लीन निज चित्त, मुक्ति से जोड़े।।टेक।।

ॐ ह्रीं अजीवविचय-धर्मध्यान-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।416।।

शुभ हेतु रूप में जान, ''हेतु विचय'' केतु।
भव शिव कारण पहचान, पाएँ शिवसेतु।।टेक।।

ॐ ह्रीं हेतुविचय-धर्मध्यान-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।417।।

है धर्म रूप आधार, ''धर्म ध्यान'' कहो।
स्वातम स्वभाव पहचान, मोक्ष पंथ गहो।।टेक।।

ॐ ह्रीं सम्पूर्ण-धर्मध्यान-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।418।।

है ''पृथक्त्व वितर्क'' ध्यान, धवल भाव करे।
करता कषाय अति मंद, शुभ्र भाव धरे।।
है धर्म ध्यान आधार, मोक्ष साधक को।
पाथेय रूप भवि जान, जिनाराधक को।।

ॐ ह्रीं पृथक्त्ववितर्कवीचार-शुक्लध्यान-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।419।।

''एकत्व वितर्क'' सु ध्यान, क्षीण मोहनि में।
वीचार रहित परिणाम, श्रेष्ठ ध्यानी में।।टेक।।

ॐ ह्रीं एकत्ववितर्क-शुक्लध्यान-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।420।।

''सूक्षम किरिया प्रतिपाति'', अरिह जिन ध्याएँ।
केवल सयोगी अंतिम मुहुरत हि पाएँ।।टेक।।

ॐ ह्रीं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-शुक्लध्यान-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।421।।

''व्युपरत किरिया निवृत्ती'', जिन अयोगी के।
वर शुक्ल ध्यान फल श्रेष्ठ, होय शिवपुर के।।टेक।।

ॐ ह्रीं व्युपरतक्रियानिवृत्ती-शुक्लध्यान-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।422।।

अत्यंत हि मंद कषाय, ''शुक्ल ध्यान'' हेतु।
शुभ धवल होय परिणाम, चढ़ श्रेणि यति तू।।टेक।।

ॐ ह्रीं सम्पूर्ण-शुक्लध्यान-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।423।।

(वरवै छंद) (तर्ज–मीठो मीठो बोल....)

''संज्ञाहार विनाशक'' देव जिनेश, योगत्रय से वंदूँ सदा महेश।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं आहारसंज्ञा–नाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।424।।

''भय संज्ञा के नाशक'' हे सिद्धेश! निज भय नाशन वंदूँ सिद्ध हमेश।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं भयसंज्ञा–नाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।425।।

''मैथुन संज्ञा'' निश्चय दुख का द्वार, तुम हो प्रभुवर मार मार[1] अविकार।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं मैथुनसंज्ञा–नाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।426।।

परिग्रह संज्ञा जानो ''अघ आधार'', सिद्ध संगती से पा शुभ शिव द्वार।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं परिग्रहसंज्ञा – नाशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।427।।

संसारी सुख कारण करि पुरुषार्थ, शिव पुरुषार्थहीन जिन लहि परमार्थ।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं सर्वपुरुषार्थ–रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।428।।

प्रथम ''धर्म पुरुषारथ'' कहि जिन बैन, उससे हीन हुए शिव पायें चैन।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं धर्मपुरुषार्थ–परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।429।।

1. कामदेव

अर्थ ''अर्थ'' संसारी करि पुरुषार्थ, व्यर्थ हुआ शिव सन्मुख सब पुरुषार्थ।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं अर्थपुरुषार्थ-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।430।।

भववर्द्धक पुरुषारथ है 'ये काम', नशकर सिद्ध किया है चिद् विश्राम।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं कामपुरुषार्थ - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।431।।

करो ''मोक्ष पुरुषारथ'' भवि दिनरैन, मोक्ष प्राप्त कर पाओ शाश्वत चैन।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं मोक्षपुरुषार्थ-परमफलयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।432।।

आप प्रमाणिक जिन सब 'नय आधीन', पर को छोड़ हुए हैं जिन स्वाधीन।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं सर्वनयाधीनाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।433।।

अज्ञानी मद करता 'शब्द' सु पाय, रहता ज्ञानी निज में शिवपुर जाय।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं ज्ञानमद-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।434।।

''पूजा का मद'' लहते सुर चक्रेश, नश्वर जिनने जानी बने शिवेश।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं ऐश्वर्यमद-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।435।।

‘कुल का गर्व ’ करें अघ मूरख जीव , कुल नहि शाश्वत जाने सिद्ध सदीव।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश , पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं कुलगर्व-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।436।।

‘जाति ’ विनश्वर जान हु ज्ञानी छोड़ , सिद्ध जाति में शामिल हो वृष जोड़।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश , पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं जातिमद-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।437।।

मन वच तन धन सेवा ‘बल ’ है व्यर्थ , आत्मबली निष्कर्मी सदा समर्थ।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश , पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं बलमद-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।438।।

पुण्य उदय से भूपति पावें ‘ऋद्धि ’ , कर्म उभय नशकर जिन पायी सिद्धि।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश , पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं ऋद्धिमद-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।439।।

करें तपस्वी ‘तप मद ’ ना तिहुँ काल , शुद्ध तपस्वी निज में मालामाल।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश , पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं तपमद-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।440।।

करे मूर्ख अज्ञानी ‘तन का मान ’ , निश्चित ज्ञानी बन निज गुण पहचान।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश , पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।
ॐ ह्रीं शरीरमद-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।441।।

है भयभीत भयों से 'यह संसार', जान स्वात्म निज शक्ती हो भवपार।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।

ॐ ह्रीं इहलोकभय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।442।।

श्रद्धा शिथिल रहे भय हो 'परलोक', स्वात्म शक्ति प्रगटाऊँ लखि शिवलोक।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।

ॐ ह्रीं परलोकभय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।443।।

'मरण भीति' से भीत मूढ तिहुँ काल, सिद्ध बने बनकर मृत्यु का काल।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।

ॐ ह्रीं मरणभय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।444।।

'तन पीड़ा' को चिन्मय जाने गूढ़, नाश कर्म सिद्धेश्वर हुए अमूढ़।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।

ॐ ह्रीं वेदनाभय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।445।।

'देह अरक्षा' भय तो है अज्ञान, शिव भय विजयी बनकर हो विद्वान।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।

ॐ ह्रीं अरक्षाभय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।446।।

'गुप्ति विहीन अरक्षा भय' संयुक्त, सर्व भयों से गत हो जीव विमुक्त।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश।।

ॐ ह्रीं अगुप्तिभय-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।447।।

'अकस्मात भय' माने भव का जीव, त्याग सर्व भय धर शिव सम शिव नींव।
सिद्ध बसें नित मेरे आत्म प्रदेश, पूज चलूँ मैं भी अब स्वातम देश॥

ॐ ह्रीं अकस्माद् - भयरहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥448॥

(वीर छंद) (आल्हा..../भला किसी का....)

''सर्वमूढ़ता विरहित'' जिनवर, स्वात्मलीन अविनाशी जान।
भव भय भंजक गुणसंवर्द्धक, चेतन पूर्ण विकासी जान॥
अभिनव सिद्ध चक्र अर्चन को, आया सिद्ध देव तव द्वार।
अर्घ चढ़ाऊँ शुद्ध भाव से, होवे मेरा भी उद्धार॥

ॐ ह्रीं सर्वमूढता-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥449॥

संसारी जन ''लोक मूढ़ता'', व्याप्त दुखद गति को नित धार।
स्वात्मशील से च्युत वे निश्चित, अमूढ़ सिद्ध पद नित नित वार।।टेक॥

ॐ ह्रीं लोकमूढता-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥450॥

''धर्म मूढ़ता'' नादि काल से, लोकत्रय व्यापी अविकार।
सिद्धों ने निर्मूल नष्ट कर, शाश्वत स्वात्म लखी शिवकार।।टेक॥

ॐ ह्रीं पाखंडमूढता-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥451॥

देव अदेव कुदेव सभी को, भविक पूजते देवहु जान।
''देव मूढ़ता'' व्याप्त जगत् में, शिवपथ बिन ना सिद्ध प्रमान।।टेक॥

ॐ ह्रीं देवमूढता-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥452॥

पाप हेतु हैं ''षट् अनायतन, रहित'' पूज्य मुक्तेश्वर आप।
शाश्वत सम्यक् पद को पाने, शिवपथ में अग्रेसर नाथ॥
अभिनव सिद्ध चक्र अर्चन को, आया सिद्ध देव तव द्वार।
अर्घ चढ़ाऊँ शुद्ध भाव से, होवे मेरा भी उद्धार॥

ॐ ह्रीं सर्वानायतन-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥453॥

''द्रव्य परावर्तन'' संसारी, जीव सदा करता है पाप।
शाश्वत स्वातम वैभव पाने, सिद्ध हुए निश्चय निष्पाप॥टेक॥

ॐ ह्रीं द्रव्यपरावर्तन-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥454॥

''क्षेत्र परावर्तन'' करते हैं, लोकत्रय में घूमें जीव।
सिद्धों ने सर्वस्व नाशकर, शाश्वत चिद्गुण पाए गुणीश॥टेक॥

ॐ ह्रीं क्षेत्रपरावर्तन-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥455॥

उत्सर्पिणी वा इतर रूप से, ''काल परीवर्तन'' दुख जाल।
स्वातम का निज वैभव पाने, शांत करी भव की दुख ज्वाल॥टेक॥

ॐ ह्रीं कालपरावर्तन-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥456॥

नंत काल के ''भाव'' जीव के, भव दुख के कारण ही मान।
सिद्धि का इक भाव है शाश्वत, शुद्ध चेतना में पहचान॥टेक॥

ॐ ह्रीं भावपरावर्तन - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥457॥

मिथ्यावश ''भवभ्रमण'' करे यह, जीव अनंत नंत दुख पाय।
भव परिवर्तन तजकर स्वामी, जगत पूज्य भगवन् कहलाय॥टेक॥

ॐ ह्रीं भवपरावर्तन-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।458।।

मोक्ष मार्ग का मूल सुहेतू, रत्नत्रय युत नित अविकार।
''सर्व अतीक्रम'' रहित जिनेश्वर, तव चरणों में हम बलिहार।।
अभिनव सिद्ध चक्र अर्चन को, आया सिद्ध देव तव द्वार।
अर्घ चढ़ाऊँ शुद्ध भाव से, होवे मेरा भी उद्धार।।

ॐ ह्रीं सर्वातिक्रम-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।459।।

''व्यतिक्रम'' आदिक दोष अनेकों, तप बल से कीने जिन नाश।
अतः स्वात्म सम्यक् निधि पाने, सिद्ध शिवालय में हो वास।।टेक।।

ॐ ह्रीं सर्वव्यतिक्रम-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।460।।

एक देश व्रत का खंडन जो, निश्चित कहलाता ''अतिचार''।
शुद्धातम जो लीन रहें शिव, निश्चय कर्म मानते हार।।टेक।।

ॐ ह्रीं सर्वातिचार-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।461।।

''अनाचार'' की मूल प्रवृत्ती, दीर्घ भविक में तुम दिखलाय।
सिद्धों ने सर्वस्व नाशकर, निज गुण देखे हे शिवदाय।।टेक।।

ॐ ह्रीं सर्वानाचार-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।462।।

''वर्द्धमान चारित्र'' सुधारक, हीयमान तुम किया विनाश।
मुक्तिरमा को परिणाते ही, नष्ट किया जिनवर भवपाश।।टेक।।

ॐ ह्रीं वर्धमानचारित्रधारक - हीयमानावस्था - रहिताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।463।।

परम शुद्ध है ज्ञान चेतना, अरु दर्शन है अविनाभाव।
शुद्ध प्राण से जीने वाले, शुद्ध निराकुल शिव गुणराग॥
अभिनव सिद्ध चक्र अर्चन को, आया सिद्ध देव तव द्वार।
अर्घ चढ़ाऊँ शुद्ध भाव से, होवे मेरा भी उद्धार॥

ॐ ह्रीं निश्चयप्राण-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।464।।

शंका स्वातम गुण शोषक है, ''अंग निशंकित पोषक'' मान।
स्वयं शंक से रहित जिनेश्वर, धर्म मूर्ति शिवघोषक जान।।टेक।।

ॐ ह्रीं शंकादोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।465।।

पर से तुष्ट भाव ही चित् में, ''कांक्षा'' को प्रगटाता नित्य।
स्वात्म तुष्ट वह सिद्धीश्वर को, किंचित् ना छू पाता सत्य।।टेक।।

ॐ ह्रीं कांक्षादोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।466।।

भाव ग्लानि का जो मन आता, हीन रूप पर को पहचान।
''गत विचिकित्सा'' श्री सिद्धेश्वर, गुण्य निरंजन अक्षय जान।।टेक।।

ॐ ह्रीं विचिकित्सादोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।467।।

मूढ़ ''मूढ़ता'' में रत होकर, चिन्मय आतम गुण कम मान।
सिद्धों की अर्चन भक्ती कर, स्वातम गुण वैभव पहचान।।टेक।।

ॐ ह्रीं मूढदृष्टिदोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।468।।

'पर के दोष' प्रगट करने का, रखता नित्य अधर्मी भाव।
धर्मलीन स्वातम योगी को, स्वात्म गुणों के रस का चाव।।टेक।।

ॐ ह्रीं अनुपगूहनदोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।469।।

जो असमर्थ जगत् में प्यारे, पर को ''थिर'' ना वे कर पाय।
स्वात्म लीन शाश्वत सुथंभ जो, सिद्ध समा भवि मन को भाय।।
अभिनव सिद्ध चक्र अर्चन को, आया सिद्ध देव तव द्वार।
अर्घ चढ़ाऊँ शुद्ध भाव से, होवे मेरा भी उद्धार।।

ॐ ह्रीं अस्थितिकरणदोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।470।।

''वत्सल भाव'' गुणों का कारक, सर्व घृणा का नाशक भव्य।
जीवमात्र पर नेह सुनिर्मल, बुद्धि बने जिनशासक नव्य।।टेक।।

ॐ ह्रीं अवात्सल्य-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।471।।

शुद्धातम की निर्मल आभा, शाश्वत जिन चित से प्रगटाय।
जिनशासन की हो ''प्रभावना'', भवि को मोक्ष पंथ ही भाय।।टेक।।

ॐ ह्रीं अप्रभावनादोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।472।।

पठन ''अदोष काल'' में करना, ज्ञान बोध निश्चित कहलाय।
शाश्वत ज्ञान कोष युत चिन्मय, नाता क्या उससे अब भाय।।टेक।।

ॐ ह्रीं अकालदोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।473।।

शब्द शुद्धि से रहित अध्ययन, ''शब्द दोष'' तू नित पहचान।
ज्ञान शब्द है चिन्मय शाश्वत, आगम में ऐसा है गान।।टेक।।

ॐ ह्रीं शब्द-दोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।474।।

अर्थ विसंगति श्रेष्ठ ज्ञान का, ''अर्थ दोष'' नित ही पहचान।
स्वात्म ज्ञान में लीन निरंतर, अर्थ दोष तज लह शिव ठान॥
अभिनव सिद्ध चक्र अर्चन को, आया सिद्ध देव तव द्वार।
अर्घ चढ़ाऊँ शुद्ध भाव से, होवे मेरा भी उद्धार॥

ॐ ह्रीं अर्थदोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।475।।

शब्द अर्थ की ''उभय'' विसंगति, बाधक है मधि सम्यग्ज्ञान।
दोष रहित सिद्धों को ध्यायें, पूजि यथारथ है मतिमान।।टेक॥

ॐ ह्रीं शब्दार्थशुद्धिदोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।476।।

''विनय'' भाव बिन विद्या सम्यक्, को निज जीवन में लहि पाय।
जिनने मद मर्दन कर डाला, ज्ञान रूप हित श्रेष्ठ उपाय।।टेक॥

ॐ ह्रीं अविनयदोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।477।।

ज्ञान और ज्ञानी पुरुषों का, करते जो नित नित ''बहुमान''।
ज्ञानमूर्ति सिद्धों की पूजा, भक्ती से करते धीमान।।टेक॥

ॐ ह्रीं असम्मानदोष - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।478।।

पठन सुपूर्व नियम ना लेना, ''गत उपधान दोष'' कहलाय।
विनय भाव युत नियम धारकर, श्रुत अध्ययन नित्य शिवदाय।।टेक॥

ॐ ह्रीं अनुपधानदोष - रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।479।।

शास्त्र ग्रंथकर्त्ता के नाम को, गुप्त रखे निह्नव कहलाय।
''निह्नव दोष रहित'' सिद्धेश्वर, सिद्ध बने गुण सिंधू पाय।।टेक॥

ॐ ह्रीं निह्नवदोष-रहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।480।।

(सरसी छंद) (तर्ज–कहाँ गए चक्री.../तेरी छत्रछाया....)

सम्यग्दृष्टी स्वात्म गुणों में, रहे प्रथम उपलब्ध,
मिथ्यातम को नाश भावना, भाए ''दरश विशुद्ध''।
तीर्थंकर प्रकृति के कारण, सोलह भाव प्रधान,
पंचकल्याणक भोग विभूति, पहुँचे शिवपुर धाम।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धिभावनाया: परमफल–संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।481।।

हो सम्पन्न सु ''विनय भाव'' से, स्वात्म गुणों से नंद।
लोकत्रय के नायक बनते, शत इंद्रों से वंद्य।।टेक।।

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नता–भावनाया: परमफल–संयुक्ताय श्रीसिद्ध–चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।482।।

''अनतिचार व्रत शील'' सु पालें, शाश्वत सुख के हेतु।
नाश भाव अब्रह्म मूलत:, जीता मन्मथ केतु।।टेक।।

ॐ ह्रीं शीलव्रतेष्वनतिचार–भावनाया: परमफल–संयुक्ताय श्रीसिद्ध–चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।483।।

नित्य ''निरंतर ज्ञान रूप'' में, अवगाहें गुणवान।
स्वातम के संपूर्ण गुणों में, चिन्मय ज्ञान प्रधान।।टेक।।

ॐ ह्रीं अभीक्ष्ण – ज्ञानोपयोग – भावनाया: परमफल – संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।484।।

भा करके ''संवेग भावना'', नाशा भव का वेग।
सर्व वेग आवेग त्यागकर, लही सिद्धि निर्वेग।।टेक।।

ॐ ह्रीं संवेग–भावनाया: परमफल–संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।485।।

शक्तीवश विकृत भावों का, करते जो नित ''त्याग''।
मोहादिक सेना को नाशा, हुए आप गतराग।।
तीर्थंकर प्रकृति के कारण, सोलह भाव प्रधान,
पंचकल्याणक भोग विभूति, पहुँचे शिवपुर धाम।।

ॐ ह्रीं शक्तितस्त्याग-भावनाया: परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।486।।

''शक्ती वश तप'' करते तपसी, नशते सर्व विभाव।
कर्म नाश कर सिद्ध हुए जिन, पाया शुद्ध स्वभाव।।टेक।।

ॐ ह्रीं शक्तितस्तप-भावनाया: परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।487।।

''साधु समाधी'' में निमित्त जो, स्वातमहितकर जान।
बिना समाधी किसी जीव को, ना हो निश्चय ध्यान।।

ॐ ह्रीं साधुसमाधि-भावनाया: परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।488।।

संयम पथ में विघ्न हेतु की, व्यावृति ''वैयावृत्य''।
भव सागर तरणी सम जानो, सर्व कर्म निर्वृत्ति।।टेक।।

ॐ ह्रीं वैयावृत्य-भावनाया: परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।489।।

''अर्हत् भक्ती'' करने वाले, बन जाते हैं सिद्ध।
बिन अर्हत् भक्ती के जग से, ना हो कभी अबद्ध।।टेक।।

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्ति-भावनाया: परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।490।।

''आचार्यों'' का चरित विमल है, चारित सुख का बीज।
उस चारित से भव्य जीव होते भव से निर्बीज।।टेक।।

ॐ ह्रीं आचार्यभक्ति-भावनाया: परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।491।।

ज्ञानावरण विनाशक जग में, जानो ''बहुश्रुत भक्ति''।
श्रुत सु भक्ति से मुनि निर्ग्रन्था, पाते निश्चित मुक्ति।।
तीर्थंकर प्रकृति के कारण, सोलह भाव प्रधान,
पंचकल्याणक भोग विभूति, पहुँचे शिवपुर धाम।।

ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्ति-भावनाया: परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।492।।

''प्रवचन तीर्थ साधु की भक्ती'', करती आतम तीर्थ।
मिथ्यात्रय को नाश सिद्धि हितु, पा रत्नत्रय तीर्थ।।टेक।।

ॐ ह्रीं प्रवचनभक्ति - भावनाया: परमफल - संयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।493।।

''षट् आवश्यक'' धर्मनि कारण, नाशे सारे पाप।
शाश्वत शांति लहें वे शिववर, हनकर भव आताप।।टेक।।

ॐ ह्रीं आवश्यकपारिहाणि-भावनाया: परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।494।।

आत्म प्रभावित हो जहँ वृष से, वहँ ''प्रभावना'' धर्म।
उभय धर्म को पाकर मुनिवर, पाते शाश्वत शर्म।।टेक।।

ॐ ह्रीं मार्गप्रभावना-भावनाया: परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।495।।

''वत्सल भाव'' सुगुण अनुरागी, गुणवर्द्धक अघहान।
वत्सल युक्त भविक जन जग में, बनते वृष की खान।।टेक।।

ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्व-भावनाया: परमफल-संयुक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।496।।

''अनशन तप'' के फल प्रकृष्ट को, भोग बने जो सिद्ध।
स्वात्म गुणों में नित्य निरंतर, रहते जो अनविद्ध॥
सम्यक् तप कर कर्म खपाये, पहुँचे सिद्ध स्वदेश।
करते हैं सिद्धों का अर्चन, भावी सिद्ध जिनेश॥

ॐ ह्रीं अनशन-बाह्यतप-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।497।।

''अवमौदर्य'' सु उत्तम तप है, वर सुख करे प्रदान।
ऊनोदर तप का फल पाकर, बने सिद्ध भगवान॥टेक॥

ॐ ह्रीं अवमौदर्य-बाह्यतप-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।498।।

''वृत्ती सीमित'' कर चर्या की, करे असीमित ध्यान।
अनुभव नित्य करें स्वातम का, नहि उसका अनुमान॥टेक॥

ॐ ह्रीं वृत्तिपरिसंख्यान-बाह्यतप-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।499।।

सर्व ''रसों के त्यागी'' मुनिवर, अध्यातम रस लीन।
स्वात्म गुणों की मधुरिम वीणा, शब्द रहित वृष बीन॥टेक॥

ॐ ह्रीं रसपरित्याग-बाह्यतप-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।500।।

एकासन बहु आसन मांडे, तदपि चित्त एकाग्र।
निज शरीर को भिन्न आत्म से, मान गए लोकाग्र॥टेक॥

ॐ ह्रीं विविक्तशय्यासन-बाह्यतप-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।501।।

काय मोह संक्लेश हु कारण, त्याग किया तुम भग्न।
निज चेतन में तन्मय होकर, आत्म गुणों में मग्न॥टेक॥

ॐ ह्रीं कायक्लेश-बाह्यतप-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।502।।

प्रायश्चित शुद्धी का हेतू, कर्म विनाशक अस्त्र।
स्वात्म गुणों का रक्षक भी है, यही श्रेष्ठ शुभ अस्त्र।।
सम्यक् तप कर कर्म खपाये, पहुँचे सिद्ध स्वदेश।
करते हैं सिद्धों का अर्चन, भावी सिद्ध जिनेश।।

ॐ ह्रीं प्रायश्चितान्तरङ्गतप-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।503।।

''विनय'' मोक्ष की सखी बखानी, स्वात्मरक्षिका देवि।
मोह मान मत्सर अघ नाशक, जिन सम विनय को सेवि।।टेक।।

ॐ ह्रीं विनयान्तरङ्गतप - परमफल - युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।504।।

''वैय्यावृत्ति'' नित्य तप वर्द्धक, करता अघ निर्मूल।
वैय्यावृत्ति जिनभक्ति कर पा जा शिवपुर का चूल।।टेक।।

ॐ ह्रीं वैयावृत्यान्तरङ्गतप - परमफल - युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।505।।

स्वात्म हितार्थ स्वयं सु अध्ययन, आगम के आधार।
श्रेष्ठ सुतप ''स्वाध्याय'' कहा है, भवदधि तारणहार।।टेक।।

ॐ ह्रीं स्वाध्यायान्तरङ्गतप-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।506।।

देह आदि से तज ममत्व को, करते जो ''व्युत्सर्ग''।
निश्चित भव संहारक हैं ये, मोक्ष पंथ उत्सर्ग।।टेक।।

ॐ ह्रीं व्युत्सर्गान्तरङ्गतप - परमफल - युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।507।।

''ध्यान'' उभय शुभ है शिवकारक, भवसंहारक जान।
ध्यान अग्नि में कर्मेंधन दह, पाया पद निर्वाण॥
सम्यक् तप कर कर्म खपाये, पहुँचे सिद्ध स्वदेश।
करते हैं सिद्धों का अर्चन, भावी सिद्ध जिनेश॥

ॐ ह्रीं ध्यानान्तरङ्गतप-परमफल-युक्ताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥508॥

(मदन छंद) (कहाँ गए चक्री...)

अंग है ''आचार'' पहला, लोक में विख्यात,
पद अठारह सहज जाने, अरिह द्वारा ख्यात।
सिद्ध अर्चन वो करें जिन, सिद्ध प्रभु से प्रीत,
अभिनव शिवार्चन कर रहे, गाए भक्ती गीत॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षयाऽचाराङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥509॥

अंग ''सूत्र कृतांग'' देवा, विनय गुण सद्ज्ञान।
पद छत्तीस कहि इसमें, भव्य तू पहचान॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया सूत्रकृताङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥510॥

''स्थानांग'' आतम तत्त्व का, करे सद् परकाश।
पद सहस ब्यालीस कुल हैं, भवि को आए रास॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-स्थानाङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥511॥

अंग ''समवायांग'' देखें, सब पदारथ युक्त।
लख सहस चौसठ प्रमाने, जानकर हो मुक्त॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया - समवायाङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥512॥

''व्याख्या प्रज्ञप्ति'' सुहानी, कहता द्रव्य जीव।
सहस अट्ठाबीस लख दो, प्रश्न-उत्तर रीत॥
सिद्ध अर्चन वो करें जिन, सिद्ध प्रभु से प्रीत,
अभिनव शिवार्चन कर रहे, गाए भक्ती गीत॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥513॥

अंग ''ज्ञातृकथा'' सुनाती, महानर चारित्र।
सहस छप्पन लाख पण पद, लेय निज चित चित्र॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-ज्ञातृधर्मकथाङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥514॥

''अध्ययन उपासक'' अंगहु, व्रत सु श्रावक ख्यात।
सहस सत्तर लख इकादश, पद करें जिन ज्ञात॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षयोपासकाध्ययनाङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥515॥

''अंतःकृत केवलि दशांग'', आठवाँ शुभ अंग।
लाख तेइस अट्ठबीसा, सहस पद इस अंग॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षयान्तःकृद्दशाङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥516॥

''अनुत्तरोपपादिका'' ये, अंग शुभ विज्ञान।
सहस चउवालीस पद लख, बानवे में ज्ञान॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षयानुत्तरोपपादिकदशाङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥517॥

''प्रश्न व्याकरणं'' अनूपम, उत्तरों से युक्त।
लख तिरानव सोल सहसं, तत्त्व निज संयुक्त॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-प्रश्नव्याकरणाङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।518।।

''सूत्र विपाक'' सु अंग कर्म, है विपाक कि बात।
लख तिरानव सोल सहसं, नशि करम की रात।।
सिद्ध अर्चन वो करें जिन, सिद्ध प्रभु से प्रीत,
अभिनव शिवार्चन कर रहे, गाए भक्ती गीत।।

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-विपाकसूत्राङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।519।।

पंच भेद सु ''दृष्टिवाद'', अरब इक वसु कोटि।
लाख अड़सठ सहस छप्पन, पाँच पद श्रुत चोटि।।टेक।।

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-दृष्टिवादाङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।520।।

''द्वादशांग'' सुने जु न्यारा, भक्ति युत अविकार।
देशना अरिहंत जिन दे, हो गए शिवकार।।टेक।।

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-द्वादशांङ्गोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।521।।

(पीयूषवर्ष छंद) (तर्ज-सोलहकारण भाय....)

व्यय ''उत्पाद'' ध्रौव्य का व्याख्यान है।
कोटि पद युत पूर्व, शुभ उत्पाद है।।
देशना जिन देय, शिव नगरी बसे।
पूजते सिद्धेश भव में ना फँसें।।

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षयोत्पादपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।522।।

पद ''अग्रायणीय'' लाख छियानवे।
वर्णित हैं दोनों, नय विस्तारवें॥
देशना जिन देय, शिव नगरी बसे।
पूजते सिद्धेश भव में ना फँसें॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षयाग्रायणीपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।523।।

''वीर्यानुप्रवाद'', सत्तर लाख पद।
जीव शक्ति कहता, पूजूँ सिद्ध पद।।टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया वीर्यानुप्रवादपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।524।।

''अस्ति नास्ति प्रवाद'', पद लख साठ हैं।
शुद्ध जिन सिद्धेश, नशि विधि आठ हैं।।टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षयास्तिनास्तिप्रवाद-पूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।525।।

न्यून इक कोटि पद, ''ज्ञान प्रवाद'' है।
जिनवाणी नशती, वाद विवाद है।।टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-ज्ञानप्रवादपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।526।।

छह कोटी पद युक्त, ''सत्य प्रवाद'' है।
हेतु केवलज्ञान, का ये साँच है।।टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-सत्यप्रवादपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।527।।

''आत्मवाद'' कोटी, छब्बिस पद कहे।
आत्मभाव का कथन, पूरव में रहे।।टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षयाऽऽत्मप्रवादपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।528।।

इककोटिअस्सिलख ''कर्मप्रवाद'' में।
पद दस करण कहे, पूरव खास में॥
देशना जिन देय, शिव नगरी बसे।
पूजते सिद्धेश भव में ना फँसें॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-कर्मप्रवादपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥529॥

लख चौरासी पद, ''प्रत्याख्यान'' में।
मुनि चर्या गहि लीन, चिर विश्राम में॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया - प्रत्याख्यानपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥530॥

इक कोटि दस लाख, पद सु आवलियाँ।
दे ''विद्यानुवाद'', विद्या कि कलियाँ॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया - विद्यानुवादपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥531॥

''कल्याणानुवाद'' छब्बिस कोटि है।
गणितादि विज्ञान, विषयनि कोटि है॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-कल्याणानुवादपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥532॥

योगादि चिकित्सा, ''प्राणावाद'' में।
तेरह कोटी पद, कहे प्रमाण में॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-प्राणानुवादपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥533॥

''क्रिया विशालं'' नव, कोटी पद सदा।
नर-नारी लक्षण, सुनो होय मुदा॥टेक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–क्रियाविशालपूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्ध–चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।534।।

गणित आदि विषया, ''लोक बिन्दु'' कहे।
पद साढ़े बारह, कोटी ही रहे।।
देशना जिन देय, शिव नगरी बसे।
पूजते सिद्धेश भव में ना फँसें।।

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–लोकबिन्दुसार–पूर्वोपदेशकाय श्रीसिद्ध–चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।535।।

''जीव'' का व्याख्यान जिनवर कर रहे,
भवि चित्तों में ज्ञान प्रतिपल भर रहे।
जिन उपदेश भव्य मन को भा रहे,
सिद्धों की पूजन भक्ती गा रहे।।

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–जीवद्रव्योपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।536।।

देशना ''पुद्गल'' कि जिनवर ने कही।
मोह सेना नाश, पायी शिव मही।। जिन उपदेश...

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–पुद्गलद्रव्योपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।537।।

''धर्म'' है गति हेतु, पुद्गल जीव की।
जान श्रद्धा करहि, मुक्ती बीज की।। जिन उपदेश...

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–धर्मद्रव्योपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।538।।

ठहरने में द्रव्य, ये हि निमित्त है।
''अधर्म'' द्रव्य जान, पाना स्वत्व है।। जिन उपदेश...

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–अधर्मद्रव्योपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।539।।

दे ''आकाश'' द्रव्य अवगाहन सदा,
लोक अलोक भेद, भूलें ना कदा।
जिन उपदेश भव्य मन को भा रहे,
सिद्धों की पूजन भक्ती गा रहे॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षयाकाशद्रव्योपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।540।।

सब द्रव्य वर्तना हेतू काल है।
अस्ति है ना काय कहे त्रिकाल है॥ जिन उपदेश...

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-कालद्रव्योपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।541।।

(डिल्ला छंद) (तर्ज-चालीसा चाल)

नव पदार्थ में श्रेष्ठ पदारथ, ''जीव'' मुख्य यह जान यथारथ।
कर्म युता सब संसारी जन, कर्म रहित सिद्धों को वंदन॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-जीवपदार्थोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।542।।

द्रव्य ''अजीव'' भेद पन मानहि, पुद्गल धर्म इतर नभ कालहि।
कहा यही जिनमत उन्नायक, पूज बनूँ मैं भी शिवलायक॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-अजीवपदार्थोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।543।।

''आस्रव'' के सत्तावन प्रत्यय, जीव अभव्यों के ये अव्यय।
कर्मागम द्वय आस्रव का क्षय, करके पद पाया जिन अक्षय॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया-आस्रवपदार्थोपदेशकाय श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।544।।

प्रकृति आदि हैं बंध चतुर्विध, पुण्य पाप से मुक्त सदाशिव।
''बंध''सुतत्त्व किया परकाशित, निश्चय भव तरते तव आश्रित॥

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–बंधपदार्थोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।545।।

आस्रव रोध पाल लो ''संवर'', संयत बन पा लो मुक्ती वर।
सिद्ध चरण नित अर्घ चढ़ाकर, शिवपद पाऊँ जिनगुण गाकर।।

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–संवरपदार्थोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।546।।

कर्मजीव पद देखा ''निर्जर'', उभय रूप में कहते श्री वर।
सिद्ध चरण नित अर्घ चढ़ाकर, शिवपद पाऊँ जिनगुण गाकर।।

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–निर्जरापदार्थोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।547।।

जानो सिद्ध कर्म सब वर्जित, देव इंद्र असुरों से अर्चित।
सिद्ध हुए करि शक्ति प्रदर्शित, तव गुण गा हो शुभ विधि अर्जित।।

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–मोक्षपदार्थोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।548।।

''पुण्य'' बिना शिव पथ ना किंचित, पुण्य युक्त पावें शिव निश्चित।
इष्ट सु फल अरु पुण्य प्रदायक, पुण्य जोड़ बनना शिवनायक।।

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–पुण्यपदार्थोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।549।।

''पाप'' कर्म है अति दुखदायक, भवदु:खों का ये परिचायक।
पाप छोड़ करना शुभ कारज, मस्तक धारो सिद्ध प्रभो रज।।

ॐ ह्रीं भूतनैगमनयापेक्षया–पापपदार्थोपदेशकाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।550।।

(पुष्पिताग्रा छंद)

धरकर शुभ भाव है ''क्षमा'' का, स्मर विजयी बन कंत श्री रमा का।
अभिनव शिव अर्चना रचाएँ, जिनपद पूज निजात्म सिद्धि पाएँ।।

ॐ ह्रीं उत्तम-क्षमाधर्म-सम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।551।।

धरम सुगुण कोष है बखाना, मद तज ''मार्दव धर्म'' ही निभाना।
अभिनव शिव अर्चना रचाएँ, जिनपद पूज निजात्म सिद्धि पाएँ।।

ॐ ह्रीं उत्तम-मार्दवधर्म-सम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।552।।

कपट क्षय कर निजातमा से, सरल सु ''आर्जव'' होय स्वातमा से।
अभिनव शिव अर्चना रचाएँ, जिनपद पूज निजात्म सिद्धि पाएँ।।

ॐ ह्रीं उत्तम-आर्जवधर्म-सम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।553।।

हितकर भवि को प्रलोभ त्यागे, यति जन सदाहि ''शौच'' चित्त पागे।
अभिनव शिव अर्चना रचाएँ, जिनपद पूज निजात्म सिद्धि पाएँ।।

ॐ ह्रीं उत्तम-शौचधर्म-सम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।554।।

तजकर सब झूठ ''सत्य'' धारे, नित वृष धारक मोक्ष को पधारें।
अभिनव शिव अर्चना रचाएँ, जिनपद पूज निजात्म सिद्धि पाएँ।।

ॐ ह्रीं उत्तम-सत्यधर्म-सम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।555।।

यतिगण त्रयलोक है पुजारी, यमहर ''संयम'' नित्य सौख्यकारी।
अभिनव शिव अर्चना रचाएँ, जिनपद पूज निजात्म सिद्धि पाएँ।।

ॐ ह्रीं उत्तम-संयमधर्म-सम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।556।।

'सुतप' अनल कर्म है जलाए, तपकर भव्य सुमोक्षधाम जाए।
अभिनव शिव अर्चना रचाएँ, जिनपद पूज निजात्म सिद्धि पाएँ।।

ॐ ह्रीं उत्तम-तपधर्म-सम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।557।।

तजकर अपने विभाव सारे, शिवपद को शुभ ''त्याग'' से निहारे।
अभिनव शिव अर्चना रचाएँ, जिनपद पूज निजात्म सिद्धि पाएँ।।

ॐ ह्रीं उत्तम-त्यागधर्म-सम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।558।।

परिग्रह अणु मात्र भी दुखाता, धरम ''अकिंचन'' नित्य देय साता।
अभिनव शिव अर्चना रचाएँ, जिनपद पूज निजात्म सिद्धि पाएँ।।

ॐ ह्रीं उत्तम-अकिंचनधर्म-सम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।559।।

करि निजरति ''ब्रह्म'' भाव लीना, चरित स्वब्रह्म बने महाप्रवीना।
अभिनव शिव अर्चना रचाएँ, जिनपद पूज निजात्म सिद्धि पाएँ।।

ॐ ह्रीं उत्तम-ब्रह्मचर्यधर्म-सम्पन्नाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।560।।

(हरिगीतिका छंद) (तर्ज-मैं देव श्री अरिहंत पूजूँ....)

इस भव भ्रमण का मुख्य कारण, मोहनी जिनवर कहा।
श्री सिद्ध प्रभु ने मोह रिपु को, ध्यान पावक में दहा।।
प्रगटा जहाँ ''सम्यक्त्व क्षायिक'', आत्म सुख रस पीवते।
सम्यक्त्व पावे सिद्ध शाश्वत, शुद्ध चिन्मय जीवते।।

ॐ ह्रीं पूर्णसम्यक्त्वगुण-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।561।।

ज्ञानावरण की पाँच प्रकृती, क्षीण मोहे नाशकर।
शुभ पा लिया प्रभु ज्ञान केवल, आतमा में वासकर।।
मार्तण्ड केवल उदय चित में, सर्वगुण द्रव[1] झलकते।
पर्याय नंत सुयुक्त लोकालोक बुध में अलखते[2]।।

ॐ ह्रीं क्षायिक-ज्ञानगुण-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।562।।

---

1. द्रव्य, 2. दिखते हैं।

नश दर्श आवरणी प्रकृति नव, सर्वदर्शी जिन भये।
अरु सर्व गुण पर्याय द्रव शिव, सहज अवलोकन थये।।
''दर्शन सु क्षायिक'' सिद्ध पाया, नाहिं हो विकृत कभी।
जिन सिद्ध जो ध्याये सदा ही, शील पाते हैं सभी।।

ॐ ह्रीं क्षायिकदर्शनगुण-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।563।।

विधि अन्तराय की पाँच प्रकृति, क्षीण करि जिनदेव ने।
पाया सु ''वीर्य अनंत'' तब, सक्षम बने स्वयमेव में।।
वीरज अनंता सिद्ध सम हम, पा सकें जिन पूज कर।
सु पाय क्षयोपशम विघ्न नाशुँ, नाथ को निज चित्त धर।।

ॐ ह्रीं क्षायिकवीर्यगुण-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।564।।

सब द्रव्य इष्टानिष्ट दायक, वेदनी विख्यात है।
साता असाता रूप भविजन, भोगता दिन रात है।।
विधि वेदनी को नाश ''अव्याबाध'' गुण शिव पा लिया।
शाश्वत निराकुल सहज आविर्भूत गुण जिन भा लिया।।

ॐ ह्रीं अव्याबाधगुण - सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।565।।

तिर्यंच नर सुर नरक आयू, जीव को तन रोकते।
गुण पा लिया ''अवगाहनत्वा'', नाश आयु सु योगते।।
संसार कारा सम ये आयु, दुःख की ही मूल है।
जिन अर्चना कर शिव लहूँ अवगाह गुण अनुकूल है।।

ॐ ह्रीं अवगाहनत्वगुण-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।566।।

ज्यों चित्रकार सु चित्र करता, नेक विधि संसार में।
त्यों नाम विधि को भाषते श्री, जैन मुनि श्रुतसार[1] में।।
है तीन ऊपर प्रकृति नब्बे, नाश गुण ''सूक्षम'' लहा।
श्री सिद्धगुणगण अर्चना कर, पा सकूँ निजगुण महा।।

ॐ ह्रीं सूक्ष्मत्वगुण - सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।567।।

है गोत्र कर्म कुलाल सम कुल, नीच ऊँच सु देत है।
दुर्धर तपस्या कर विनाशा, गोत्र फिर शिव लेत है।।
निज शुभ ''अगुरुलघु'' गुण सु पाने, सिद्ध गुण मैं ध्यावता।
अगुरुलघु गुण पाने नित ही, भावना नित भावता।।

ॐ ह्रीं अगुरुलघुत्वगुण-सहिताय श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।568।।

(अडिल्ल छंद) (तर्ज-नेमी का सेहरा सुहाना....)

ढाइ द्वीप में भरत क्षेत्र पन जानिए,
शुक्ल ध्यान से कर्म नशें सच मानिए।
अशरीरी सिद्धों को सदा प्रणाम हो,
तव बस्ती ही मेरा शाश्वत धाम हो।।

ॐ ह्रीं अढाईद्वीपसम्बन्धि - पञ्चभरतक्षेत्रेभ्यो मोक्षगत - श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।569।।

ऐरावत हैं पाँच सुमानुष लोक में।
कर्म नाश कर पहुँचे जिन शिवलोक में।।टेक।।

ॐ ह्रीं अढाईद्वीपसम्बन्धि - पञ्चैरावतक्षेत्रेभ्यो मोक्षगत - श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।570।।

1. शास्त्र

पन विदेह शुभ कर्म भूमि नित ही कही,
कर्म नाश वैदेही पहुँचे शिव मही।
अशरीरी सिद्धों को सदा प्रणाम हो,
तव बस्ती ही मेरा शाश्वत धाम हो॥

ॐ ह्रीं अढाईद्वीपसम्बन्धि - पञ्चविदेहक्षेत्रेभ्यो मोक्षगत - श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥571॥

उत्तम भोग भूमि दस निश्चित जानते।
हुए वहाँ से भी शिव ऐसा मानते॥टेक॥

ॐ ह्रीं अढाईद्वीपसम्बन्धि - दशोत्तमभोगभूमिभ्यो मोक्षगत - श्रीसिद्ध - चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥572॥

मध्यम भोग भूमि दस ही परमानतें।
आत्मगुणों को पाया है उस स्थान से॥टेक॥

ॐ ह्रीं अढाईद्वीपसम्बन्धि-दशमध्यमभोगभूमिभ्यो मोक्षगत-श्रीसिद्ध - चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥573॥

दस जघन्य हैं भोग मही नरलोक में।
विधि तम हारे शुक्ल ध्यान आलोक में॥टेक॥

ॐ ह्रीं अढाईद्वीपसम्बन्धि-जघन्यभोगभूमिभ्यो मोक्षगत - श्रीसिद्ध-चक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥574॥

कूप नदी वापी सर सागर झील से,
कर्म हने जिन युक्त हुए निज शील से॥टेक॥

ॐ ह्रीं लवणसागरादि-जलस्थानेभ्यो मोक्षगत-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥575॥

कृत्रिम अकृत्रिम कूट पर्वत आदि से।
कर्म बंध तोड़े थे संग अनादि से॥टेक॥

ॐ ह्रीं मेर्वादिकृत्रिमाकृत्रिमपर्वतेभ्यो मोक्षगत-श्रीसिद्धचक्राधिपतये नमोऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥576॥

पूर्णार्घ्य

(श्रीनंदि छंद) (मीठो-मीठो बोल....)

नित्य निरंजन अचल अनघ सुखधाम,
शिव निष्कर्म नमन हो आतम राम।
चरिम देह से न्यून सु आत्मप्रदेश,
शिव पूजूँ अब चलूँ निजातम देश।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थ-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

शान्तये शान्तिधारा..।। दिव्यपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।।

जाप्य-ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नमः।।

जयमाला

(घत्ता)

जय देव अनंता, लोक महंता, करि विधि हंता, सिद्ध भए।
भवि तुमको ध्याके, पूज रचाके, गुण गण गा के, पूज्य भए।।

(अशोक पुष्प मञ्जरी छंद) (तर्ज-नीर गंध अक्षतान्....)

सिद्ध देव वंदनीय सिद्ध क्षेत्र वास होय,
लोक अग्रवासि सिद्ध देव को प्रणाम हो।
नंत-नंत राजते सु एक में अनेक होय,
दिव्य ज्योतिवान सिद्ध नंत को प्रणाम हो।।
आठ कर्म नाश कीन शाश्वता स्वभाव युक्त,
नित्य आत्मलीन सुप्रणाम हो प्रणाम हो।

आठवीं मही कही सु रूप्य आभवान होय,
श्री शिलासु सिद्ध को प्रणाम हो प्रणाम हो।।1।।
दक्षिणा उदीचि सात रज्जु सु प्रमाणि येह,
आठ योजनों हि मोटि ये शिला महान है।
एक रज्जु व्यास युक्त शुभ्र श्वेत कांतिवान,
आकृती शिला कि मान अर्द्धचंद्रवान है।।
होय मुक्त जीव नंतकाल के लिए यहाँ हि,
एक सिद्ध में अनंत सिद्ध विद्यमान हैं।
आत्म पुण्य कोष पाय कर्म सर्व ही नशाय,
सिद्ध देव नित्य ही अनंत सौख्यवान हैं।।2।।
स्पर्श रूप गंध हीन पाप पुण्य से विहीन,
सिद्ध है घनत्व रूप शुद्ध रूपवान हैं।
राग द्वेष मोह सर्व दोष आदि से विहीन,
शुद्ध बुद्ध विश्वनाथ पूर्ण ज्ञानवान हैं।।
बंध निर्जरा व आस्रवादि से विहीन होय,
सर्व ही विकारहीन थे स्वभाववान हैं।
रत्न तीन को लिए सु शुक्ल ध्यान अस्त्र से हि,
कर्मपाश पाय सु अनंत सौख्य धाम हैं।।3।।
न्यून अंत देह से निरंजना अजन्म ब्रह्म,
स्तुत्य आतमा विशुद्ध तीन रत्न मंडिता।
धर्म अस्तिकाय के अभाव में सु लोक अग्र,
जा विराजते अनंत ज्ञान युक्त पंडिता।।
कार्य कोई शेष नाहि आत्मा निमग्न नित्य,

वीर्य ज्ञान दर्श नंत युक्त ये अखंडिता।

ढाई द्वीप सागरों व काल लिंग आदि भेद,

भूत भावि वर्तमान सिद्ध नित्य वंदिता।।4।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थित-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

(चउबोला छंद)

भाव सहित सिद्धों का अर्चन, भव-भव दुःख विनाशक है।

सिद्ध देश वासी की भक्ति, चिद्‌गुण पूर्ण विकासक है।।

अति निर्मल निज भाव बनाकर, सिद्धार्चन करने आया,

तीव्र पुण्य का उदय सु पाकर, पाई जिन शासन छाया।।

।। इत्याशीर्वादः ।।

वृहद जयमाला

(नरेन्द्र छंद) (तर्ज-पीछी से पीछी..../रोम रोम....)

मिथ्यात्रय के वशीभूत हो, जीव लोक में भटका,

सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित को, धार कर्म को झटका।

शुभ शुभतर शुभतम व क्रमशः, शुद्ध भाव भवि करके,

नित्य निरंजन पंचम गति को, प्राप्त किया विधि हरके।।1।।

परद्रव्यन परिणमन न होता, ना अन्यत्व स्वरूपी,

बंध चलाचल रहित सिद्ध हैं, परम शान्त व अरूपी।

पर का कुछ संस्पर्श नहीं है, हैं अखण्ड अविकारी,

सिद्धशिला के अधिनायक शिव पद में धोक हमारी।।2।।

पर द्रव्यों भावों का आतम- शुद्ध नहीं है कर्त्ता,
निजभावों का कर्ता भोक्ता सिद्ध आत्मगुण वरता।
अप्रमत्त ना हैं प्रमत्त है सिद्ध भाव शुभ ज्ञायक,
त्रिविध कर्म के हारक होते, सिद्धशिला अधिनायक।।3।।
द्रव्य भाव नो कर्म विमुक्ता, सिद्ध आत्म गुण भोगी,
तुमको ध्या तुम सा बन जाता, होवे नित्य निरोगी।
स्वसंवेद्य अव्यय अक्षय, पर संयोग विहीना,
सर्वज्ञ अरु सर्वदर्शि शिव, पाप पुण्य से हीना।।4।।
लोकत्रय जानें देखें जिन, नय व्यवहार बताए,
निश्चय से निज आतम जानें, देखें आतम ध्याएँ।
ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता विकल्प से, रहित चिन्मयी आतम,
सिद्ध रूप से निज स्वरूप को, जान बनूँ परमातम।।5।।
'सिद्ध' 'सिद्ध' जो नाम रटें तो, कार्य सिद्ध हो जाते,
लौकिक की क्या बात कहें, परमार्थ मुक्ति को पाते।
चंदन से लिपटे अहि बंधन, मोर ध्वनी सुन ढीले,
त्यों विधि बंधन होते उसके, शिव गुण गाय सुरीले।।6।।
सिद्धों की महिमा अगम्य पर, योगीगम्य कहाते,
सोऽहं-सोऽहं जपकर ज्ञानी, शाश्वत निज पद पाते।
तुम हो मैं, मैं तुम अनुभूती, नंतानंद दिलाती,
सिद्ध अर्चना कर भेजी, मैंने सिद्धों को पाती।।7।।

अभिनव सिद्ध चक्र जो रचता, अतिशय पुण्य कमाए,
इक भव में क्या वही भव्य फिर, भवों भवों सुख पाए।
निश्चित धर्म ध्वजा की छाया, पाकर भ्रमण नशाए,
सिद्धालय में सिद्ध संग फिर, बैठ आत्म सुख पाए।।8।।
सिद्धचक्र अर्चन कर मैना ने पति कुष्ट मिटाया,
है प्रसिद्ध ग्रंथों में जिसने, जो मांगा वो पाया।
सिद्धों सा बनने हम भी अब, सिद्ध शरण में आए,
वसु वसुधा पाने वसुनंदी, सिद्धों के गुण गाए।।9।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यशिखरस्थित-सिद्धशिलोपरि-विराजमानानन्तानन्त-सिद्धेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

(चउबोला छंद)

भाव सहित सिद्धों का अर्चन, भव भव दु:खविनाशक है।
सिद्धदेशवासी की भक्ती, चिद्‌गुण पूर्ण विकासक है।।
अति निर्मल निज भाव बनाकर, सिद्धार्चन करने आया।
तीव्र पुण्य का उदय सु पाकर, पाई जिनशासन छाया।।

।। इत्याशीर्वाद: ।।

समुच्चय महार्घ्य

(छंद-हरिगीतिका)

मैं देव श्री अरहंत पूजूँ, सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ, साधु पूजूँ भाव सों॥
अरिहन्त भाषित बैन पूजूँ, द्वादशांग रचे गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरण शिव, हेत सब आशा हनी॥1॥
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि, दयामय पूजूँ सदा।
जजि भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहि कदा॥
त्रैलोक्य के कृत्रिम-अकृत्रिम, चैत्य-चैत्यालय जजूँ।
पनमेरु-नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूँ॥2॥
कैलाश श्री सम्मेदगिरि गिरनार मैं पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ सर्वदा॥
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ, बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस वसु जप, होय पति शिव गेह के॥3॥

दोहा

जल गंधाक्षत पुष्प चरु, दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहु विधि भक्ति बढ़ाय॥

ॐ ह्रीं भावपूजा - भाववन्दना - त्रिकालपूजा - त्रिकालवन्दना - कृत- कारितानुमोदनैः सहितं श्री अरिहन्त - सिद्ध -

आचार्य - उपाध्याय - सर्वसाधु- पञ्च परमेष्ठिभ्यो नमः। प्रथमानुयोग - करणानुयोग - चरणानुयोग - द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः। दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो नमः। उत्तमक्षमादि - दशलक्षण - धर्मेभ्यो नमः। सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्रेभ्यो नमः। जल - थल - आकाश - गुहा - पर्वत - नगरवर्ति - ऊर्ध्व - मध्य - अधोलोकेषु विराजमान - कृत्रिम - अकृत्रिम - जिन - चैत्यालय - जिनबिम्बेभ्यो नमः। विदेहक्षेत्रे विद्यमान - विंशतितीथङ्करेभ्यो नमः। पञ्च - भरत - पञ्च - ऐरावत - दशक्षेत्र - सम्बन्धि - त्रिंशत् - चतुर्विंशतिगत - विंशत - उत्तर - सप्तशत - जिनबिम्बेभ्यो नमः। नन्दीश्वरद्वीप - सम्बन्धि - द्वीपञ्चाशत् जिनचैत्यालयेभ्यो नमः। पञ्चमेरुसम्बन्धि - अशीति - जिनचैत्यालयेभ्यो नमः। सम्मेदशिखर - कैलाश - चम्पापुर - पावापुर - गिरनार - सोनागिरि - राजगृही - मथुरा - शत्रुञ्जय - तारङ्गा - कुण्डलपुर आदि - सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः। जैनबद्री - मूढ़बद्री - हस्तिनापुर - चन्देरी - पपौरा - अयोध्या - चमत्कारजी - महावीरजी - पद्मपुरी - तिजारा - आदि - अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः श्रीचारणऋद्धिधारी सप्तपरमर्षिभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपावतं श्रीवृषभादि-महावीरपर्यन्त-चतुर्विंशतितीर्थङ्करपरमदेवं आद्यानां जम्बूद्वीपे मेरु दक्षिण भागे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे....नमिन नगरे....मासानामुत्तमे...मासे... .पक्षे....तिथौ.....वासरे.... मुन्यार्यिका-श्रावक- श्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं अनर्घ्यपदप्राप्तये सम्पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांति-पाठ (भाषा)

चौपाई

शांतिनाथ मुख शशि-उनहारी, शील-गुण-व्रत-संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजैं।।1।।

पंचम चक्रवर्ति पद धारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्र-नरेन्द्र पूज्य जिन-नायक, नमो शांति-हित शांति विधायक।।2।।

दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामंडल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी।।3।।

शांति-जिनेश शांति सुखदाई, जगत पूज्य पूजौं शिर नाई।
परम शांति दीजे हम सबको, पढ़ैं तिन्हें पुनि चार संघ को।।4।।

वसन्ततिलका

पूजै जिन्हें मुकुट-हार-किरीट लाके,
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।
सो शांतिनाथ वर-वंश जगत प्रदीप,
मेरे लिए करहुँ शान्ति सदा अनूप।।5।।

इन्द्रवज्रा

संपूजकों को प्रतिपालकों को,
यतीनकों को यतिनायकों को।
राजा - प्रजा - राष्ट्र - सुदेश को ले,
कीजे सुखी हे जिन! शांति को दे।।6।।

स्रग्धरा

होवै सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो, धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समय पै, तिल भर न रहें, व्याधियों का अंदेशा।।
होवे चोरी न जारी, सुसमय वरते, हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारैं जिनवर-वृष को, जो सदा सौख्यकारी।।7।।

दोहा

घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज।
शांतिकरोसबजगतमें,वृषभादिकजिनराज।।8।।

मन्दाक्रान्ता

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगति का।
सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढाकूँ सभी का।।
बोलूँ प्यारे वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ।
तौ लौं सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौ लौं न पाऊँ।।9।।

आर्या छन्द

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहौं प्रभु, जब लौं पाया न मुक्ति-पद मैंने।।10।।

अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कुछ कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणाकरि पुनि छुड़ाहु भव दुख से।।11।।

हे जगबन्धु जिनेश्वर! पाऊँ तव चरण-शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी।।12।।

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

विसर्जन पाठ

क्षमापना

दोहा

बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसाद तैं परम गुरु, सो सब पूरन होय॥१॥
पूजन-विधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान्।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करहु भगवान॥२॥
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव॥३॥
आये जो जो देवगण, पूजैं भक्ति-प्रमाण।
ते अब जावहुँ कृपा कर, अपने-अपने धाम॥४॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः अ सि आ उ सा नमः श्रीअर्हतादि-परमेष्ठिनः पूजन-विर्सजनं करोम्यहं अपराध-क्षमाप्यं भवतु जः जः जः।

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

आत्मा का भोजन

पिवासियो जह जलेन, थिंपदि खलु भक्खिओ भोयणेणं।
अग्गी इंधणेणं च, तहा अप्पा सण्णाणेणं॥155॥

–(*विस्स पुज्जो दियंबरो, आ. वसुनंदी मुनि*)

जिस प्रकार प्यासा व्यक्ति जल से, भूख भोजन से और अग्नि ईंधन से संतुष्ट होती है उसी प्रकार आत्मा निश्चय से सम्यग्ज्ञान से संतुष्ट होती है॥

सिद्धचक्र आरती

–मुनि प्रज्ञानंद

सिद्धों का दरबार है, सर्व सौख्य आधार है।
जगमग रत्नन दीप जलाकर, आरती बारम्बार है।।टेक।।

द्रव्य भाव नोकर्म रहित जिन, सिद्धालय के वासी हो।
सिद्धचक्र की करो अर्चना, गर शिव-सुख अभिलाषी हो।।
कर देती उद्धार है, भक्ति मुक्ति दातार है।
जगमग रत्नन...।।1।।

अचल अकम्प अमल अविनाशी, अजर अमर अधिकारी हो।
पाप कर्म के नाशक भगवन्, भव शिव सुख दातारी हो।।
कर्मों की यहाँ हार है, तुमसे जोड़ा तार है।
जगमग रत्नन...।।2।।

फरस गंध रस वर्ण विवर्जित, शाश्वत चिन्मय मूरत हो।
आप अतीन्द्रिय गुण सम्पादक, स्वसंवेदन तीरथ हो।।
भक्तों की दरकार है, तव स्वरूप ही सार है।
जगमग रत्नन...।।3।।

सिद्ध रूप ही मम स्वरूप है, उसको निश्चित पाऊँगा।
सिद्धों का शुभ ध्यान लगाकर, सिद्ध रूप हो जाऊँगा।।
किये अनंतों पार हैं, आज हमारी बार है।
जगमग रत्नन...।।4।।

चरम देह से न्यून जिनेश्वर, नंत गुणामृत के धारी।
भावी सिद्ध करें आराधन, क्रम अनादि से ये जारी।।
पाना शिव का द्वार है, फिर ना ये संसार है।
जगमग रत्नन...।।5।।

''वसुनंदी सूरी'' कृत अभिनव, सिद्धार्चन जो करते हैं।
मुक्ति कंत बन नंत सिद्ध संग, शाश्वत वैभव वरते हैं।
लक्ष्य यही इस बार है, अब ना इन्तजार है।
जगमग रत्नन...।।6।।

हवन विधि

हवन के लिए किसी काफी लंबे-चौड़े स्थान में तीन कुण्ड बनावें। वे कुंड इस प्रकार हों-प्रथम तीर्थंकरकुंड एक अरत्नि (मुष्टि बंधे हाथ को अरत्नि कहते हैं) लंबा, इतना ही चौड़ा चौकोर हो और इतना ही गहरा हो, इसकी तीन कटनी हों, पहली 5 अंगुल की ऊँची, चौड़ी, दूसरी 4 अंगुल की, तीसरी 3 अंगुल की हो। इस कुंड के दक्षिण की ओर त्रिकोण कुंड उसी प्रमाण से लंबा, चौड़ा, गहरा हो तथा उत्तर की ओर गोल कुंड उतनी ही लंबाई, चौड़ाई, गहराई वाला हो। प्रत्येक कुंड का एक दूसरे से अन्तर चार-चार अंगुल का होना चाहिए। इन कुण्डों के चारों ओर कटनियों पर ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं लिखना चाहिए।

ये कुंड कच्ची ईंटों से एक दिन पहले तैयार करा लेने चाहिए और इन्हें अच्छे सुन्दर रंगों से रङ्ग देना चाहिए। भीतर का भाग पीली या सफेद मिट्टी से पोत देना चाहिए। कुंडों की तीनों कटनियों पर चार-चार पतली खूंटी गाढ़ें या छोटे-छोटे गिलास रखें जिनमें कलावा लपेटा जा सके। कलावा लपेटते समय यह मन्त्र बोलना चाहिए।

ॐ ह्रीं अर्हं पंचवर्णसूत्रेण त्रीन् वारान् वेष्टयामि।

इस प्रकार एक खूंटी से दूसरी खूँटी और दूसरी से तीसरी-चौथी खूंटी तक कलावा लपेटें।

कुण्डों के पास दक्षिण या पश्चिम में एक वेदी लगाएं जैसे पाठ के मांडले के पास लगाई थी, उसमें सिद्धयंत्र विराजमान करें। वेदी के पास एक चौकी रखें जिस पर मङ्गल कलश रखा जाए तथा एक बड़ी मंदली पर एक बड़ा और कुछ छोटे कलश (गिलास) जल से भरे रखकर मंत्र द्वारा जल शुद्ध करें।

जल शुद्धि मंत्र

हाथ में चंदन लेकर कलशों पर छिड़कें।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते पद्ममहापद्मतिगिञ्छ–केसरिपुण्डरीक – महापुण्डरीक – गंगा – सिन्धुरोहिद्रोहितास्या–हरिद्धरिकान्ता – सीतासीतोदा – नारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूला–रक्तारक्तोदापयोधिशुद्ध – जलसुवर्णघट – प्रक्षालितनव – रत्नगंधा–क्षतपुष्पा – चिंतमामोदकं पवित्रं कुरु कुरु झं झं झ्रौं झ्रौं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं सः स्वाहा।

इस मंत्र से जल शुद्धि करें।

वेदी के पास जो चौकी है उस पर अक्षत बिछाकर बड़ा मङ्गल कलश स्थापन करें तब यह श्लोक और मंत्र पढ़ें–

वेद्या मूले पंचरत्नोपशोभं, कंठे लंबान् माल्यमादर्शयुक्तं।
माणिक्याभं कांचनं पूगदर्भस्रक्वासोभं सद्घटं स्थापयेद् वै।।

ॐ ह्रीं अर्हं मङ्गलकलशस्थापनं करोमि स्वाहा।

अब चार छोटे कलश कुंडों पर स्थापन करें तब यह मंत्र पढ़ें–

ॐ ह्रीं स्वस्तये चतुःकलशान् संस्थापयामि स्वाहा।

फिर कुंडों पर चार चार दीपक जलाकर धरें तब यह मन्त्र पढ़ें–

ॐ ह्रीं अज्ञान तिमिरहरं दीपकं संस्थापयामि

फिर पूजा की सामग्री तथा हवन सामग्री शुद्ध करें तब यह मंत्र पढ़ें–

ॐ ह्रीं पवित्रतरजलेन शुद्धिं करोमि स्वाहा

फिर डाभ के पूले से हवन की भूमि को झाड़ें तब यह मन्त्र पढ़ें–

ॐ ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्नविनाशाय महीं पूतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा

फिर डाभ का पूला जल में भिगोकर पृथ्वी पर छिड़कें तब यह मंत्र पढ़ें–

ॐ ह्रीं मेघकुमाराय धरां प्रक्षालय प्रक्षालय
अं हं तं पं स्वं झं झं यं क्षः फट् स्वाहा

फिर यन्त्र का प्रक्षाल करें तब यह मंत्र पढ़ें–

ॐ भूर्भुवः स्वरिह एतद्विघ्नौघवारकं यन्त्रमहं परिषिंचयामि

फिर यन्त्र की पूजा करें। इसके बाद अग्निकुंड में सांथिये बनावें या ॐ लिखें। पीछे कुण्ड में कपूर और डाभ के पूले से अग्नि स्थापित करें तब यह मन्त्र पढ़ें–

ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्निं संस्थापयामि स्वाहा।

फिर कुण्डों में एक एक अर्घ्य दें।

प्रथम चतुष्कोण की पूजा

श्रीतीर्थनाथपरिनिर्वृतिपूज्यकाले,आगत्यवह्निसुरपामुकुटोल्लसद्भिः।
वह्निव्रजैर्जिनपदेऽहमुदारभक्त्या, देहुस्तदग्निमहमर्चयितुं दधामि।।

ॐ ह्रीं प्रथमे चतुरस्रे तीर्थकरण्डे गार्हपत्याग्नयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

गणाधिपानां शिवयातिकालेऽ मीन्द्रोत्तमाङ्गस्फुरदग्निरेषः।
संस्थाप्य पूज्यः स मयाह्वनीयो, विधानशान्तै विधिना हुताशः।।

ॐ ह्रीं द्वितीयेवृत्ते गणधरकुण्डे आह्वनीयाग्नयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीदक्षिणाग्निः परकेवलिस्व-, शरीरनिर्वाणनुताग्निदेव-।
किरीटसंस्फुर्यदसौ मयापि, संस्थाप्य पूज्यो हि विधानशान्त्यै।।

ॐ ह्रीं त्रिकोणे सामान्यकेवलिकुण्डे दक्षिणाग्नयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

इसके पश्चात् निम्नलिखित मंत्रों की आहुति देनी चाहिए।

पीठिका मन्त्र

ॐ सत्यजाताय नमः।।1।। ॐ अर्हज्जाताय नमः।।2।। ॐ परमजाताय नमः।।3।। ॐ अनुपमजाताय नमः।।4।। ॐ स्वप्रधानाय नमः।।5।। ॐ अचलाय नमः।।6।। ॐ अक्षयाय नमः।।7।। ॐ अव्याबाधाय नमः।।8।। ॐ अनन्तज्ञानाय नमः।।9।। ॐ अनन्तदर्शनाय नमः।।10।। ॐ अनन्तवीर्याय नमः।।11।। ॐ अनन्तसुखाय नमः।।12।। ॐ नीरजसे नमः।।13।। ॐ निर्मलाय नमः।।14।। ॐ अछेद्याय नमः।।15।। ॐ अभेद्याय नमः।।16।। ॐ अजराय नमः।।17।। ॐ अमराय नमः।।18।। ॐ अप्रमेयाय नमः।।19।। ॐ अगर्भवासाय नमः।।20।। ॐ अक्षोभाय नमः।।21।। ॐ अविलीनाय नमः।।22।। ॐ परमधनाय नमः।।23।। ॐ परमकाष्ठायोगरूपाय नमः।।24।। ॐ लोकाग्रवासिने नमो नमः।।25।। ॐ परमसिद्धेभ्यो नमोनमः।।26।। ॐ अर्हत्सिद्धेभ्यो नमोनमः।।27।। ॐ केवलिसिद्धेभ्यो नमोनमः।।28।। ॐ अंतकृत्सिद्धेभ्यो नमोनमः।।29।। ॐ परम्परासिद्धेभ्यो नमोनमः।।30।। ॐ अनादिपरम्परासिद्धेभ्यो नमोनमः।।31।। ॐ अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमोनमः।।32।। ॐ सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्य निर्वाणपूजार्ह अग्नींद्राय स्वाहा।।33।।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधि-मरणं भवतु स्वाहा।

जातिमन्त्र

ॐ सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्ये।।1।। ॐ अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्ये।।2।। ॐ अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्ये।।3।। ॐ अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्ये।।4।। ॐ अनादिगमनस्यशरणं प्रपद्ये ।।5।। ॐ अनुपमजन्मनः शरणं प्रपद्ये।।6।। ॐ रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्ये।।7।। ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे ज्ञानमूर्ते ज्ञानमूर्ते सरस्वति सरस्वति स्वाहा।।8।।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधि-मरणं भवतु स्वाहा।।

निस्तारकमन्त्र

ॐ सत्यजाताय स्वाहा।।1।। ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा।।2।। ॐ षट्कर्मणे स्वाहा।।3।। ॐ ग्रामपतये स्वाहा।।4।। ॐ अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा।।5।। ॐ स्नातकाय स्वाहा।।6।। ॐ श्रावकाय स्वाहा।।7।। ॐ देवब्राह्मणाय स्वाहा।।8।। ॐ सुब्राह्मणाय स्वाहा।।9।। ॐ अनुपमाय स्वाहा।।10।। ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा।।11।।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधि-मरणं भवतु स्वाहा।

ऋषिमन्त्र

ॐ सत्यजाताय नमः।।1।। ॐ अर्हज्जाताय नमः।।2।। ॐ निर्ग्रन्थाय नमः।।3।। ॐ वीतरागाय नमः।।4।। ॐ महाव्रताय नमः।।5।। ॐ त्रिगुप्ताय नमः।।6।। ॐ महायोगाय नमः।।7।। ॐ विविधयोगाय नमः।।8।। ॐ विविधर्द्धये नमः।।9।। ॐ अङ्गधराय नमः।।10।। ॐ पूर्वधराय नमः।।11।। ॐ गणधराय नमः।।12।। परमर्षिभ्यो नमो नमः।।13।। ॐ अनुपमजाताय नमो नमः।।14।। ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे भूपते भूपते नगरपते नगरपते कालश्रमण कालश्रमण स्वाहा।।15।।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधि-मरणं भवतु स्वाहा।

सुरेन्द्र मंत्र

ॐ सत्यजाताय स्वाहा।।1।। ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा।।2।। ॐ दिव्यजाताय स्वाहा।।3।। ॐ दिव्यार्चिजाताय स्वाहा।।4।। ॐ नेमिनाथाय स्वाहा।।5।। ॐ सौधर्माय स्वाहा।।6।। ॐ कल्पाधिपतये स्वाहा।।7।। ॐ अनुचराय स्वाहा।।8।। ॐ परंपरेन्द्राय स्वाहा।।9।।

ॐ अर्हमिन्द्राय स्वाहा।।10।। ॐ परमार्हताय स्वाहा।।11।। ॐ अनुपमाय स्वाहा।।12।। ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा।।13।।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधि-मरणं भवतु, स्वाहा।

परमराजादि मंत्र

ॐ सत्यजाताय स्वाहा।।1।। ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा।।2।। ॐ अनुपमेन्द्राय स्वाहा।।3।। ॐ विजयार्च्यजाताय स्वाहा।।4।। ॐ नेमिनाथाय स्वाहा।।5।। ॐ परमजाताय स्वाहा।।6।। ॐ परमार्हताय स्वाहा।।7।। ॐ अनुपमाय स्वाहा।।8।। ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे उग्रतेजः उग्रतेजः दिशांजन दिशांजन नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा।।9।।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधि-मरणं भवतु, स्वाहा।

परमेष्ठि मन्त्र

ॐ सत्यजाताय नमः।।1।। ॐ अर्हज्जाताय नमः।।2।। ॐ परमजाताय नमः।।3।। ॐ परमार्हताय नमः।।4।। ॐ परमरूपाय नमः।।5।। ॐ परमतेजसे नमः।।6।। ॐ परमगुणाय नमः।।7।। ॐ परमस्थानाय नमः।।8।। ॐ परमयोगिने नमः।।9।। ॐ परमभाग्याय नमः।।10।। ॐ परमर्द्धये नमः।।11।। ॐ परम प्रसादाय नमः।।12।। ॐ परमकांक्षिताय नमः।।13।। ॐ परमविजयाय नमः।।14।। ॐ परमविज्ञानाय नमः।।15।। ॐ परमदर्शनाय नमः।।16।। ॐ परमवीर्याय नमः।।17।। ॐ परमसुखाय नमः।।18।। ॐ परमसर्वज्ञाय नमः।।19।। ॐ अर्हते नमः।।20।। ॐ परमेष्ठिने नमः।।21।। ॐ परमनेत्रे नमो नमः।।22।। ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे त्रैलोक्यविजय त्रैलोक्यविजय धर्ममूर्ते धर्ममूर्ते धर्मनेमे धर्मनेमे स्वाहा।।23।।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधि-मरणं भवतु, स्वाहा।

धूपैः सन्धूपितानेक - कर्मभिर्धूपदायिनः।
अर्चयामि जिनाधीश-सदागमगुरून् गुरून्।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीमज्जिनश्रुतगुरुभ्यो नमः धूपम्।

सुरभीकृतदिग्व्रातै र्धूपधूमैर्जगत्प्रियैः।
यजामि जिनसिद्धेश - सूर्य्युपाध्यायसद्गुरून्।।2।।

ॐ ह्रीं पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः धूपम्।

मृद्वग्निसंगमसमुज्वलितोरुधूमैः, कृष्णागुरुप्रभृतिसुन्दरवस्तुधूपैः।
प्रीत्या नटद्भिरिव ताण्डवनृत्यमुच्चैः कर्मारिदारुदहनं जिनमर्चयामि।।3।।

ॐ ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिने नमः धूपम्।

गोत्रक्षयसंभवसततसंभव - सद्गुरुलघुतारूपपरम्।
सर्गमसर्गमपीतमनुक्षण - मुज्झितसर्गासर्गभरम्।।
कृष्णागुरुधूपैः सुरभितभूपैर्धूमैः स्पष्टरिद्रू पै-
र्यायज्मः सिद्धं सर्वविशुद्धं बुद्धमरुद्धं गुणरुद्धम्।।4।।

ॐ ही सिद्धपरमेष्ठिने नमः धूपम्।

हुत्वास्वमप्यगुरुभिः सुरभीकृताशै-रग्नौ समुच्छलितसंभृतवृन्दधूपैः।
संधूपयामि चरणं शरणं शरण्यं, पुण्यं भवभ्रमहरै र्गणिनां मुनीनाम्।।5।।

ॐ ह्रीं आचार्यपरमेष्ठिने नमः धूपम्।

संधूपिताखिलदिशो घनशङ्कयेह, बर्हिब्रजं स्वनटनादिव नर्तयद्भिः।
मृद्वग्निसंगतितताागुरुधूपधूमैः, श्रीपाठकं क्रमयुगं वयमाह्वयामः।।6।।

ॐ ह्रीं उपाध्याय परमेष्ठिने नमः धूपम्।

स्वमग्नौ विनिक्षिप्य दौर्गंध्यबंधम्, दशाशास्यमुच्चैः करोति त्रिसंध्यम्।
तदुद्दामकृष्णागुरुद्रव्यधूपैः, यजे साधुसंघं नटद्व्यक्तरूपैः।।7।।

ॐ ह्रीं साधुपरमेष्ठिने नमः धूपम्।

धूपैः संधूपितानेक - कर्मभिर्धूपदायिनः।
वृषभादिजिनाधीशान्, वर्द्धमानान्तकान्यजे।।8।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनेभ्यो नमः धूपम्।

इसके पश्चात् जिस मन्त्र की जितनी जाप की है उसके दशमांश उस मन्त्र की आहुति देनी चाहिए।

शान्तिधारा

आचार्य हाथ में कलश लेकर जल की धारा देता हुआ नीचे लिखा पुण्याहवाचन पढ़ें।

ॐ पुण्याहं पुण्याहं। लोकोद्योतनकरा अतीतकालसंजाता निर्वाणसागरमहासाधुविमलप्रभशुद्धाभश्रीधरसुदत्तामल-प्रभोद्धगग्नि-सन्मतिशिवकुसुमांजलिशिवगणोत्साहज्ञानेश्वरपरमेश्वर-विमलेश्वर-यशोधरकृष्णमतिज्ञानमतिशुद्धमतिश्रीभद्रकांताश्चेति चतुर्विंशतिभूत-परमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।।धारा।।1।।

ॐ संप्रतिकालश्रेयस्करस्वर्गावतरणजन्माभिषेकपरिनिष्क्रमण-केवलज्ञाननिर्वाणकल्याणविभूषितमहाभ्युदयाः श्रीवृषभाजित -शंभवाभिनंदन -सुमति-पद्मप्रभ-सुपार्श्व-चंद्रप्रभ-पुष्पदंत - शीतल-श्रेयोवासुपूज्य-विमलानंत-धर्मशांति-कुथ्वर-मल्लि- मुनिसुव्रत-नमि-नेमि-पार्श्ववर्द्धमानाश्चेति वर्तमानचतुर्विंशतिपरदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।।धारा।।2।।

ॐ भविष्यत्कालाभ्युदयप्रभवाः महापद्मसुरदेवसुप्रभस्वयंप्रभ-सर्वायुधजयदेवोदयदेवप्रभादेवोदङ्क देवप्रश्नकीर्तिजयकीर्तिपूर्णबुद्धनिः कषायविमलप्रभवहलनिर्मलचित्रगुप्तसमाधिगुप्तस्वयंभूकंदर्प-जयनाथ-विमलनाथदिव्यवागनंतवीर्याश्चेतिचतुर्विंशतिभविप्यत्परमदेवाश्च वः प्रीयंतां प्रीयन्ताम्।।धारा।।3।।

ॐ त्रिकालवर्तिपरमधर्माभ्युदयाः सीमंधरयुग्मंधरबाहु - सुबाहु - संजातक - स्वयंप्रभ - ऋषभेश्वरानंतवीर्य - सूरप्रभ - विशालकीर्ति-वज्रधरचंद्राननचंद्रबाहुभुजंगेश्वर- नेमिप्रभवीरसेनमहाभद्र - जयदेवा-जितवीर्याश्चेति पंचविदेहक्षेत्रविहरमाणा विंशतिपरमदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयंताम्।।धारा।।4।।

ॐ वृषभसेनादिगणधरदेवाः वः प्रीयंतां प्रीयन्ताम्।।धारा।।5।।

ॐ कोष्ठबीजपादानुसारिबुद्धिसंभिन्न-श्रोतृप्रज्ञा - श्रवणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।।धारा।।6।।

ॐ आमर्षक्ष्वेड - जल्लविद्युत्सर्गसर्वौषधिऋद्धयश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।।धारा।।7।।

ॐ जलफलजंघातन्तुपुष्पश्रेणिपत्राग्निशिखाकाशचारणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।।धारा।।8।।

ॐ आहाररसवदक्षीणमहानसालयाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।। धारा।।9।।

ॐ उग्रदीप्ततप्त - महाघोरानुपमतपसश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।। धारा।।10।।

ॐ मनोवाक्कायवलिनश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।।धारा।।11।।

ॐ क्रियाविक्रियाधारिणश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।।धारा।।12।।

ॐ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।। धारा।।13।।

ॐ अंगांगबाह्यज्ञानदिवाकराः कुन्दकुन्दाद्यनेकदिगंबरदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्।।धारा।।14।।

ॐ इह वाऽन्यनगरग्रामदेवतामनुजाः सर्वे गुरुभक्ताः जिनधर्म-परायणा भवंतु।।धारा।।15।।

ॐ दानतपोवीर्यानुष्ठानं नित्यमेवास्तु।।धारा।।16।।

मातृपितृभ्रातृपुत्रपौत्रकलत्रसुहृत्स्व - जनसंबंधि - सहितस्य अमुकस्य............ ते धनधान्यैश्वर्यबलद्युतियशःप्रमोदोत्सवाः............ प्रवर्द्धताम्।।धारा।।17।।

तुष्टिरस्तु। पुष्टिरस्तु। वृद्धिरस्तु। कल्याणमस्तु। अविघ्नमस्तु। आयुष्यमस्तु। आरोग्यमस्तु। कर्मसिद्धिरस्तु। इष्टसंपत्तिरस्तु। काममांगल्योत्सवाः सन्तु। पापानि शाम्यंतु। घोराणि शाम्यंतु। पुण्यं वर्द्धतां। धर्मो वर्द्धतां। श्रीर्वद्धतां। कुलंगोत्रं चाभिवर्धेतां। स्वस्ति भद्रं चास्तु झवीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा। श्रीमज्जिनेन्द्रचरणारविंदेष्वानन्द-भक्तिः सदास्तु।

।। इति हवनविधान समाप्त ।।

भजन

श्री सिद्धचक्र का पाठ करौ दिन आठ,
ठाठ से प्रानी, फल पायो मैना रानी।।टेक।।

मैना सुन्दरि इक नारी थी, कोढ़ी पति लखि दुखियारी थी,
नहिं पड़े चैन दिन रैन व्यथित अकुलानी।। फल पायो...

जो पति का कष्ट मिटाऊँगी, तो उभय लोक सुख पाऊँगी,
नहिं अजागलस्तनवत निष्फल जिंदगानी।। फल पायो...

इक दिवस गई जिन मन्दिर में, दर्शन करि अति हर्षी उर में,
फिर लखे साधु निर्ग्रन्थ दिगम्बर ज्ञानी।। फल पायो...

बैठी मुनि को करि नमस्कार, निज निन्दा करती बार बार,
भरि अश्रु नयन कही मुनि सों दुखद कहानी।। फल पायो...
बोले मुनि पुत्री धैर्य धरो, श्री सिद्धचक्र का पाठ करो,
नहिं रहे कुष्ठ की तन में नाम निशानी।। फल पायो...

सुनि साधु वचन हर्षी मैना, नहिं होंय झूठ मुनि के बैना,
करि के श्रद्धा श्री सिद्धचक्र की ठानी।। फल पायो...

जब पर्व अठाई आया है, उत्सवयुत पाठ कराया है,
सबके तन छिड़का यंत्र न्हवन का पानी।। फल पायो...

गंधोदक छिड़कत वसु दिन में, नहिं रहा कुष्ठ किंचित् तन में,
भई सात शतक की काया स्वर्ण समानी।। फल पायो...

भव भोग भोगि योगेश भये, श्रीपाल कर्म हनि मोक्ष गये,
दूजे भव मैना पावे शिव रजधानी।। फल पायो...

जो पाठ करैं मन वच तन से, वे छूटि जांय भव बंधन से,
मक्खन मत करौ विकल्प कहा जिनवानी।। फल पायो...

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

(प्राकृत साहित्य)

क्र.सं.	नाम	क्र.सं.	नाम
1.	प्राकृत वाणी भाग-1	2.	प्राकृत वाणी भाग-2
3.	प्राकृत वाणी भाग-3	4.	प्राकृत वाणी भाग-4
5.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)	6.	अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
7.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)	8.	जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
9.	जदि-किदि-कम्मं(यति कृतिकर्म)	10.	णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
11.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)	12.	तच्चसारो (तत्त्व सार)
13.	धम्म सुत्तं (धर्म सूत्र)	14.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
15.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)	16.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)
17.	विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)	18.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)
19.	अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)	20.	णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
21.	मूल-वण्णो (मूल वर्ण)	22.	मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)
23.	विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)	24.	विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)
25.	समवसरण सोहा (समवसरण शोभा)	26.	वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)
27.	अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)	28.	कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)
29.	को विवेगी (विवेकी कौन)	30.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)
31.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)	32.	रयणकंडो (सूक्ति कोश)
33.	धम्मस्स सुत्ति संगहो	34.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
35.	खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)	36.	सिरि सीयलणाह-चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)
37.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)	38.	समणायारो (श्रमणाचार)
39.	असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक रोहिणी चरित्र) (महाकाव्य)	40.	लोगुत्तरविट्टी (लोकोत्तर वृत्ति)
41.	समणभावो (श्रमण भाव)	42.	झाणसारो (ध्यानसार)
43.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)	44.	जिणवयणसारो (जिनवचनसार)
45.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)	46.	पसमभावो (प्रशम भाव)
47.	सम्मेदसिहर महप्पुरो (सम्मेदशिखर महात्म्य)	48.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त्त)
49.	विणयसारो (विनय सार)	50.	तव-सारो (तप सार)
51.	भाव-सारो (भाव सार)	52.	दाण-सारो (दान सार)
53.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)	54.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)
55.	णाण-सारो (ज्ञान सार)	56.	णीदि-सारो (नीति सार)

टीका ग्रंथ			
1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र (संस्कृत)

इंग्लिश साहित्य			
1.	Inspirational Tales Part& 1&2	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य			
1.	मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)	2.	बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3.	शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)	4.	स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)
5.	श्रावकधर्म-संहिता (रत्नकरण्ड श्रावकाचार)		

प्रवचन साहित्य			
1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दुःखदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दुःख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू
13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17
31.	चूको मत	32.	जय बजरंगबली
33.	जीवन का सहारा	34.	ठहरो! ऐसे चलो
35.	तैयारी जीत की	36.	दशामृत
37.	धर्म की महिमा	38.	ना मिटना बुरा है न पिटना
39.	नारी का धवल पक्ष	40.	शायद यही सच है
41.	श्रुत निर्झरी	42.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा
43.	सीप का मोती (महावीर जयंती)	44.	स्वाती की बूँद

हिंदी गद्य रचना

1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म
31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1.	अक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना

1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दुःखों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	श्री समवशरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान
11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान
17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान

21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी जी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)
27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)		
32.	वसुऋद्धि		
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

प्रथमानुयोग साहित्य

1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)

3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र
31.	रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बरैया)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान
   • नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)
2. श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3. श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक
4. शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान
   • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी)
   • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)

5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु संबुध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		